इस्लाम में परदा

और

नारी की हैसियत

सय्यद अबुल आला मौदूदी

मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी

दिल्ली - ११००२५

विषय सूची

दयावान, कृपाशील अल्लाह के नाम से

अपनी बात

परदे के विषय पर अब से चरा साल पहले मैंने एक लेख-माला शुरू की थी, जो 'तर्जुमानुल क़ुरआन' के कई अंकों में छपी थी उस वक़्त इसके बहुत से पहलू जान-बूझकर नज़रअंदाज़ कर दिये गये थे और कुछ को अधूरा छोड़ दिया गया था, क्योंकि पुस्तक लिखने के बजाए एक लेख ही लिखना हमारे सामने था। अब इन अंशों को इकट्ठा कर के ज़रूरी कमी-बेशी और व्याख्या के साथ यह किताब तैयार की गयी है। यद्यपि यह दावा अब भी नहीं किया जा सकता कि यह इस विषय पर आख़िरी पुस्तक है, लेकिन मैं कम-से-कम यह उम्मीद ज़रूर करता हूँ कि जो लोग इस समस्या को वाक़ई समझना चाहते हैं वे इस पुस्तक में बड़ी हद तक संतोषजनक सामग्री और दलीलें पायेंगे।

अबुल आला

२२ मुहर्रम १३५९ हि०

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम०

समस्या क्या है?

इंसानी सभ्यता की सब से अहम और सब से ज़्यादा पेचीदा समस्याएं दो हैं, जिनके सही और कामियाब हल पर इंसान की भलाई और तरक़्क़ी टिकी हुई है और जिनके हल करने में बहुत पुराने ज़मानों से लेकर आज तक दुनिया के सोचने-समझनेवाले और विद्वान लोग परेशान रहे हैं। पहली समस्या यह है कि सामूहिक जीवन में औरत और मर्द का ताल्लुक़ किस तरह क़ायम किया जाए, क्योंकि यही ताल्लुक़ असल में संस्कृति का बुनियादी पत्थर है और उसका हाल यह है कि अगर उसमें ज़रा-सी भी टेढ़ आ जाए, तो

''ता सुरय्या मी रवद दीवार कज'' (आसमान तक दीवार टेढ़ी चली जाए) और दूसरी समस्या व्यक्ति और समूह के ताल्लुक़ की है, जिस का सन्तुलन बनाने में अगर तनिक भर भी बे-एहतियाती हो जाए, तो सदियों तक इंसानी दुनिया को इसके कड़वे नतीजे भुगतने पड़ते हैं। एक ओर इन दोनों समस्याओं की अहमियत का यह हाल है, दूसरी ओर उनकी पेचीदगी इतनी बढ़ी हुई है कि जब तक प्रकृति की तमाम सच्चाइयों पर किसी की पूरी नज़र न हो, वह उनको हल नहीं कर सकता। सच कहा था, जिसने कहा था कि इंसान एक छोटी-सी दुनिया है। उसके जिस्म की बनावट, उसके भीतर की मशीन, उसकी ताक़तें, उसकी योग्यताएं, उसकी चाहतें और ज़रूरतें, उस की भावनाएं और अपने वजूद से बाहर की बहूत-सी चीज़ो के साथ उस के कार्य-प्रभाववाले ताल्लुक़ात, ये सब चीज़ें एक दुनिया-की-दुनिया अपने भीतर रखती हैं। इंसाचन को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता, जब तक कि उस दुनिया का एक-एक हिस्सा निगाह के सामने रोशन न हो जाए और इंसानी ज़िंदगी की बुनियादी समस्याएं हल नहीं की जा सकतीं, जब तक ख़ुद इंसान को पूरी तरह न समझ लिया जाए।

यही वह पेचीदगी है, जो बुद्धि व विवेक की सारी कुरेदों का मुक़ाबला शुरू से कर रही है और आज तक किये जा रही है, एक तो इस दुनिया की तमाम हक़ीक़तें अभी तक इंसान पर खुली ही नहीं, इंसानी साइंनी साइंसों में से कोई साइंस भी ऐसी नहीं है, जो कमाल के आख़िरी दर्जे पर पहुंच चुकी हो, यानी जिसके बारे में यह दावा किया जा सकता हो कि जितनी हक़ीक़तें ज्ञान के इस विभाग से ताल्लुक़ रखती हैं उन सबको उसने मालूम कर लिया है, पर जो

हक़ीक़तें रोशनी में आ चुकी हैं, उनके फैलाव और बारीकियों का भी यह हाल है कि किसी इंसान की, बल्कि इंसानों के किसी गिरोह की नज़र भी उन सब पर एक ही वक़्त में हावी नहीं होती, एक पहलू सामने आता है और दुसरा पहलू नज़रों से ओझल रह जाता है। कहीं नज़र कोताही करती है और कहीं किसी के निजी रुझान रुकावट बन जाते हैं। इस दोहरी कमज़ोरी की वजह से इंसान ख़ुद अपनी ज़िंदगी की उन समस्याओं को हल करने के जितने उपाय भी करता है, वे नाकाम होते हैं और तजुर्बा आख़िर में उन की कमज़ोरी को स्पष्ट कर देता है। सही हल सिर्फ़ उसी वक़्त मुम्किन है, जब कि न्याय-बिंदु को पा लिया जाए और न्याय-बिन्दु पाया नहीं जा सकता, जब तक कि तमाम हक़ीक़तें न सही, कम जानी-पहचानी हक़ीक़तों ही के सारे पहलू पूरी तौर पर निगाह के सामने न हों, पर जहाँ दृश्य का फैलाव अपने आप में इतना ज़्यादा हो कि निगाह उस पर छा न सके और इंसान के मन की चाहत, चाव और नफ़रत के झुकावों का यह ज़ोर हो कि जो चीज़ें साफ़ नज़र आती हों, उन की ओर से भी निगाह अपने आप फि जाए, वहाँ न्याय-बिन्दु किस तरह मिल सकता है? वहाँ तो जो हाल भी होगा, उस में ज़रूरत ही अतियाँ पायी जाएगी, या इस ओर की या उस ओर की। ऊपर जिन दो समस्याओं की बात की गयी है, उन में से सिर्फ़ पहली समस्या पर हम बहस करेंगे। इस सिलसिले में जब हम इतिहास पर निगाह डालते हैं, तो हम को अतियों की खींच-तान का अनोखा दृश्य दिखायी देता है। एक ओर हम देखते हैं कि वही औरत, जो माँ की हैसियत से आदमी को जन्म देती है और बीवी की हैसियत से ज़िंदगी की हर ऊँच-नीच में मर्द की साथी रहती है, नौकरानीय,ा बल्कि लौंडी के दर्जे में रख दी गयी है, उस को बेचा और ख़रीदा जाता है, उस को मिल्कियत और विरासत के तमाम हक़ों से महरूम रखा जाता है, उस को साक्षात पाप और ज़िल्लत समझा जाता हैं और उस के व्यक्तित्व को उभरने और तरक़्क़ी करने का कोई मौक़ा नहीं दिया जाता। दुसरी ओर हमें यह नज़र आता है कि वही औरत उठायी और उभारी जा रही है, मगर इस शान से कि उस के साथ बुराइयों का और बिखराव का एक तूफ़ान भी उठ रहा है, वह जानवरों जैसी ख्वाहिशों का खिलौना बनायी जाती है, उस को वाक़फई शैतान का एजेंट बना कर रख दिया जाता है और उस के उभरने के साथ मानवता के गिरने का सिलसिला शुरू हो जोता है।

ये दो अतियाँ हैं, जो सिर्फ सैद्धांतिक नहीं हैं, बल्कि तजुर्बे ने इनके बुरे नतीजों का पूरा-पूरा रिकार्ड हमारे सामने लाकर रख दिया है। इतिहास बताता है कि जब एक क़ौम जंगलीपन के दौर से निकल कर संस्कृति और सभ्यता की ओर बढ़ती है, तो उस की औरतें, लौंडियों और सेविकाओं की हैसियत से उस के मर्दों के साथ होती है। शुरू में असभ्य ताक़तों का ज़ोर उसे आगे बढ़ाये लिये जाता है, पर सभ्यता की एक ख़ास मंज़िल पर पहुंच कर उसे महसूस होता है कि अपनी आबादी के आधे हिस्से को पस्ती की हालत में रख कर वह आगे नहीं जा सकती। उस को अपनी तरक़्क़ी की रफ़्तार रुकती नज़र आती है और ज़रूरत का एहसास उसे मजबूर करता है कि उस के दूसरे-आधे को भी पहले-आधे के साथ चलने के क़ाबिल बनाये, पर जब वह इस कमी को पूरा करना शुरू करती है, तो इतना ही नहीं करती, बल्कि आगे बढ़ती चली जाती है, यहाँ तक कि औरत की अज़ादी से परिवारिक व्यवस्था (जो सभ्यता की बुनियाद है) टूटने-फूटने लगती है। औरतों और मर्दों के मेल से बेहयाई की बाढ़ आ जाती है, हवस की पूजा और ऐशपस्ती पूरी क़ौम के चरित्र को तबाह कर देती है और चरित्र की गिरावट के साथ मस्तिष्क, शरीर और शक्ति की गिरावट भी ज़रूर ही दिखायी पड़ने लगती है, जिस का आख़िरी अन्जाम हलाकत व बर्बादी के सिवा कुछ नहीं।

यहाँ इतनी गुंजाइश नहीं है कि इतिहास से इस की मिसालें पूरे विस्तार के साथ दी जा सकें, पर बात समझने के लिए दो-चार मिसालें ज़रूरी भी हैं।

यूनान

पुरानी क़ौमों में से जिस क़ौम की सभ्यता सब से ज़्यादा शानदार नज़र आती है, वह यूनानी है। इस क़ौम के शुरू के दौर में नैतिक दृष्टिकोण क़ानूनी हक़ और समाजी वर्ताव, हर एतबार से औरत की हैसियत बहुत गिरी हुई थी। (चूंहिश्रेसू) में एक काल्पनिक औरत पांडोरा (झरपवीर) को उसी तरह तमाम इंसानी मुसीबतों की वजह बता दिया गया था, जिस तरह यहूदी मिथकों में हज़रत हव्वा (अलैहस्सलाम) को हज़रत हव्वा के बारे में इस ग़लत कहानी की शोहरत ने औरत के बारे में यहूदी और ईसाई क़ौमों के रवैए पर जो ज़बरदस्त असर डाला है और क़ानून, रहन-सहन, चरित्र, हर चीज़ पर जिस तरह डाला है, वह किसी से छिपा नहीं है। क़रीब-क़रीब ऐसा ही असर पांडोरा के अंधविश्वास का यूनानी ज़ेहन पर भी हुआ था। उन की निगाह में औरत एक मामूली दर्जे की जीव थी।

रहन-सहन के हर पहलू में उस का रुत्बा गिरा रखा गया था और इज़्ज़त को मर्द के लिए ख़ास कर दिया गया था।

सभ्यता की तरक़्क़ी के शुरू के मरहलों में यह तरीक़ा थोड़े रद्दोबदल के साथ बाक़ी रहा। संकृति और ज्ञान की रोशनी का सिर्फ़ इतना असर हुआ कि औरत का क़ानूनी दर्जा तो ज्यों का त्यों रहा, हाँ, रहन-सहन के मामले में उस को कुछ और ऊँची हैसियत दे दी गई। वह यूनानी घर की मलिका थी, उस की ज़िम्मेदारियों का दायरा घर तक बंधा हुआ था और इन हदों में उसे पूरे अख़्तियार मिले हुए थे। उस की आबरू एक क़ीमती चीज़ थी, जिस को क़द्र और इज़्ज़त की निगाह से देखा जाता था। शरीफ़ यूनानियों के यहाँ परदे का रिवाज था। उनके घरों में ज़नानख़ाने मरदानख़ानों से अलग होते थे। उन की औरतें मिली-जुली महफ़िलों में शरीक न होती थीं, न खुलेआम सामने लाई जाती थीं। निकाह के ज़रिए किसी एक मर्द से जुड़ा रहना औरत के लिए शराफ़त की पहचान थी और उसी की इज़्ज़त थी। वेश्या बन कर रहना उस के लिए अपमानजनक समझा जाता था। यह उस ज़माने का हाल था जब यूनानी क़ौम ख़ूब ताक़तवर थी और पूरे ज़ोर के साथ तरक़्क़ी की सीढ़ियाँ तै कर रही थी। उस दौर में नैतिक दोष ज़रूर पाये जाते थे, पर एक हद के अन्दर थे। यूनानी औरतों से चरित्र की जिस सुथराई, शील और पाकादमनी की माँ की जाती थी, उस से मर्दों को अलग कर दिया गया था। उन से न सचरित्रता की मांग थी और न नैतिक दृष्टि से किसी मर्द से यह उम्मीद की जाती थी कि वह पाक ज़िंदगी बसर करेगा। वेश्याएं यूनानी समाज का अटूट हिस्सा थीं और उन से ताल्लुक़ रखना मर्दों के लिए किसी तरह भी कोई ऐब न समझा जाता था।

धीरे-धीरे यूनान वालों पर वासना और शहवत का ग़लबा शुरू हुआ। उस दौर में वेश्याओं को वह तरक़्क़ी मिली जिस की मिसाल पूरी इंसानी तारीख़ में नहीं मिलती। रंडी का कोठा यूनानी समाज के छोटों से लेकर बड़ों तक हर एक के पहुँचने का केन्द्र बना हुआ था। दार्शनिक, कवि, इतिहास के ज्ञाता, साहित्यकार और कला-विशेषज्ञ, मानों ये सब ग्रह थे तो उसी सूर्य के चारों ओर घूमते थे। वह न सिर्फ़ ज्ञान और साहित्य की महफ़िलों की जान थी, बल्कि बड़े-बड़े राजनीतिक मामले भी उसी के हुज़ूर में तै होते थे। क़ौम की ज़िंदगी व मौत का फ़ैसला जिन बातों से जुड़ा हुआ था, उनमें उस औरत की राय को अहमियत दी जाती थी, जिस की दो रातें भी किसी एक आदमी के साथ वफ़ादारी में बसर न

होती थीं। यूनानिया की हुस्नपरस्ती ने उन में वासना और शहवत की आग कचे और ज़्यादा भड़काया। वे अपनी इस रुचि कचे जिन मूर्तियों (या कला के नंगे नमूनों) में ज़ाहिर करते थे, वही उनकी कामवासना को और ज़्यादा भड़काती चली जाती थी, यहाँ तक कि उन के ज़ेहन से यह ख़्याल ही निकल गया था कि शहवतपरस्ती भी कोई नैतिक दोष है। उन का चरित्र-स्तर इतना बदल गया था कि बड़े-बड़े दार्शनिक और चरित्र की बात करने वाले भी व्यभिचार और बेहयाई में कोई दोष न पाते थे और न उसे निन्दा की कोई चीज़ समझते थे। आमतौर से यूनानी लोग निकाह के बिना औरत और मर्द का ताल्लुक़ बिल्कुल सही समझा जाता था, जिस को किसी से छिपाने की ज़रूरत न थी[१]। आख़िरकार उन के धर्म ने भी उन की हवस और वासना के आगे हथियार डाल दिये। कामदेवी (अहिीवळींश) की पूजा तमाम यूनान में फैल गई, जिस की दास्तान उन के मिथकों में से यह थी कि एक देवता की बीवी होते हुए उस ने तीन दूसरे देवताओं से आशनाई कर रखी थी और उन के अलावा एक नश्वर इंसान को भी उस के दरबार में जगह पाने का मौक़ा हासिल था। उसी के पेट से मुहब्बत का देवता क्यूपिड पैदा हुआ, जो उस देवी औ उस के ग़ैर-क़ानूनी दोस्तों की आपसी लगावट का नतीजा था। यह उस क़ौम की उपास्या थी और अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जो क़ौम ऐसे कैरेक्टर को न सिर्फ़ आइडियल बल्कि आराध्या बनाने तक का दर्जा दे दे, उस के नैतिक स्तर की गिरावट का क्या हाल होगा? यह नैतिक गिरावब का वह दर्जा है, जिसमें गिरने के बाद कोई क़ौम फिर कभी न उभर सकी। भारत में वाम मार्ग और ईरान में मज़्कियत गिरावट के ऐसे ही दौर में ज़ाहिर हुई। बाबिल्न (ईराक) में भी वेश्या-वृत्ति को धार्मिक पवित्रता बाबिल (इरलूश्रेप) का नाम पुराने दौर की कहानी के सिवा किसी दूसरी हैसियत से न सुना। यूनान में जब कामदेवी की पूजा शुरू हुई, तो वेश्यालय इबादतगाह में बदल गया। बेहया औरतें देवदासियाँ बन गयीं और ज़िना तरक़्क़ी करके एक पवित्र-प्रतिष्ठित मज़हबी काम के दर्जे तक पहुँच गयी।

इसी वासना और शह्वत-क्षरस्ती का एक दूसरा रूप यह था कि यूनानी क़ौम में समलिंगीय यौनाचार एक वबा की तरह फैला और धर्म और चरित्र ने इसका भी स्वागत किया। होमर और हस्यूड के ज़माने में इस काम का नाम व

---

1 AmYw{ZH$ `wJ _| `hr {ñW{V 'Live-in-Relations' H$s h¡ & àH$meH$

निशान तक नहीं मिलता, पर सभ्यता की तरक़्क़ी ने जब आर्ट और कला के सून्दर नामों से बेहयाई और वासना को सराहना शुरू किया तो कामोत्तोजना का भड़काव बढ़ते-बढ़ते इस हद तक पहुँच गया कि प्रकृति के रास्ते से आगे बढ़कर यूनानियों को अप्राकृतिक तरीक़े में तस्कीन पाने की खोज करनी पड़ी। आर्ट के माहिरों ने इस जज़्बे को मूर्तियों में उजागर किया, चरित्र की शिक्षा देने वालों ने इस को दो आदमियों के बीच 'दोस्ती का मज़बूत रिश्ता' क़रार दिया[२]। सब से पहले दो यूनानी इंसान, जो इस इज़्ज़त के हक़दार समझे गये कि उन के वतन के लोग उन की मूर्तियाँ बना कर उन की याद ताज़ा रखें, वे हरमूडियस और आरिस्टोगेटन थे, जिन के बीच अप्राकृतिक प्रेम का ताल्लुक़ था।

इतिहास गवाह है कि उस दौर के बाद यूनानी क़ौम को ज़िंदगी का कोई दूसरा दौर फिर न मिला।

रूम

यूनानियों के याद जिस क़ौम को दुनिया में तरक़्क़ी मिली, वे रूम के लोग थे। यहाँ फिर वही उतार-चढ़ाव की तस्वीर हमारे सामने आती है, जो ऊपर आप देख चुके हैं। रूमी असभ्यता के दौर से निकल कर जब इतिहास के रोशन दौर में दाख़िल होते हैं, तो उनके रहन-सहन की व्यवस्था का नक़्शा यह होता है कि मर्द अपने ख़ानदान का सरदार है, उसको अपनी बीवी-बच्चों पर पूरे मालिकाना क्क़ हासिल हैं, बल्कि कुछ हालतों में वह बीवी को क़त्ल भी कर सकता है।

जब जंगलीपन कम हुआ और सभ्यता और संस्कृति में रूमियों का क़दम आगे बढ़ा तो यद्यपि पुराना ख़ानदनी निज़ाम बाक़ायदा क़ायम रहा, पर अमल में उस की सख़्तियों में कुछ कमी हुई और वह एक हद तक बीच के रास्ते पर आता क्षया। रूमी लोकतंत्र की तरक़्क़ी के ज़माने में यूनान की तरह परदे का रिवाज तो न था, पर औरत और जवान नस्ल को ख़ानदानी व्यवस्था में कस कर रखा गया था। पाकदामनी, ख़ास तौर से औरत के मामले में एक क़ीमती चीज़ थी और उस

---

[2] A~ AmYw{ZH$ H$mb _| Bg bmZV H$s AmJ, nwéf-nwéf Ho$ ~rM "Jo' (Gay) Ho$ ê$n _| ... Am¡a gmW hr ...ñÌr-ñÌr Ho$ ~r "bpµÁ~`Z' (Lesbian) Ho$ ê$n _|, nmíMmË` Xoem| _| \¡$b H$a ^maV _| ^r \¡$bZo bJr h¡ & àH$meH$

को शराफ़त का मानदण्ड समझा जाता था। चरित्र का स्तर काफ़ी ऊँचा था। एक बार रूमी सीनेट एक मेम्बर ने अपनी बेटी के सामने अपनी बीवी का बोसा लिया, तो उस को राष्ट्रीय चरित्र की भारी तौहीन समझा गया और सीनेट में उसपर निन्दा का वोट पास किया गया। औरत और मर्द के ताल्लुक़ की जायज़ और शरीफ़ाना शक्ल निकाह के सिवा कोई दूसरी न थी। एक औरत उसी वक़्त इज़्ज़त की हक़दार हो सकती थी, जब कि वह एक ख़ानदान की माँ (चरींप) हो। वेश्याएँ अक्षरचे मौजूद थीं और मर्दों को एक हद तक इस वर्ग से ताल्लुक़ रखने की आज़ादी भी थी, पर आम रूमियों की निगाह में उस की हैसियत तुच्छ व घिनौनी थी और उससे ताल्लुक़ रखने वाले मर्दों को अच्छी नज़रों से न देखा जाता था।

सभ्यता और सस्कृति की तरक़्क़ी के साथ-साथ रूमवालों का नज़रिया औरत के बारे में बदलता चला गया और धीरे-धीरे निकाह व तलाक़ के क़ानून और ख़ानदानी निज़ाम की बनावट में इतनी तब्दीली हुई कि स्थिति पिछले हालात से बिल्कुल उलट गयी। निकाह सिर्फ़ एक क़ानूनी समझौता (उळींळश्र उेपींीरलीं) बन कर रह गया, जिस का क़ायम होना और ज़िंदा रहना दोनों फ़रीक़ों की रज़ामंदी चाहता था। मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ की ज़िम्मेदारियों को बहुत हल्का समझा जाने लगा। औरत को विरासत और माल की मिल्कियत के पूरे हक़ दे दिये गये और क़ानून ने उसको बाप और शौहर के चंगुल से बिल्कुल आज़ाद कर दिया। रूमी औरतें आर्थिक हैसियत से न सिर्फ़ आज़ाद हो गयीं, बल्कि क़ौमी दौलत का एक बड़ा हिस्सा धीरे-धीरे उन हे अधिकार में दे दिया गया। वे अपने शौहरों को भारी व्याज-दर पर क़र्ज़ देती थीं और मालदार औरतों के शौहर, अमली तौर पर उनके ग़ुलाम बन कर रह जाते थे। तलाक़ की आसानियाँ इतनी बढ़ी कि बात-बात पर जोड़ों का रिश्ता तोड़ा जाने लगा। मशहूर रूमी फ़िलासफ़र और हाकिम सनीका (सन् ०४ ई. पू.-०५६ ई.) रूमियों के ज़्यादा तलाक़ देने पर बहुत मातम करता है। वह कहता है कि अब रूम में तलाक़ कोई शर्मनाक बात नहीं रही। औरतें अपनी उम्र का हिसाब शौहरों की तायदाद से लगाती हैं। उस दौर में एक औरत एक के बाद एक कर के कई-कई शादियाँ करती चली जाती थी। मार्शल (सन् ३३ ई.-१०४ ई.) एक औरत का ज़िक्र करता है, जो दस शौहर कर चुकी है। जोदनेल (सन् ६० ई.-१०४ ई.) एक औरत के बारे में लिखता है कि उस ने पाँच साल में आठ शौहर बदले। सेंट

जरूम (३४० ई.-४२० ई.) उन सब से ज़्यादा एक कमाल वाली औरत का हाल लिखता है, जिस ने आख़िरी बार तेईसवाँ शौहर किया था और किया था और अपने शौहर की वह इक्कीसवीं बीवी थी।

उस दौर में औरत और मर्द के अवैवाहिक संबन्ध को ऐबदार समझने का ख़्याल भी दिलों से निक़लता चला गया, यहाँ तक कि नैतिकता के बड़े-बड़े शिक्षक भी व्यभिचार को एक मामूली चीज़ समझने लगे। 'काटो' (उरीं) जिस को सन् १८४ ई. पू. में रूम का 'अख़्लाक़ का निगराँ' मुक़र्रर किया गया था, सही तौर पर जवानी के आवारापन कचे सही ठहराता है । सिसरो जैसा आदमी नवजवानों के लिए अख़्लाक़ के बन्धन ढीले करने की सिफ़ारिश करता है, यहाँ तक कि एपिक्टेटस (एळिलींर्शीी), जो बहुत ही कड़े नैतिक नियमों का धारक समझा जाता था, अपने शिष्यों को हिदायत करता है कि जहाँ तक हो सके, शादी से पहले औरत की सोहबत से बचो, पर जो इस से बच न सके उसकी निन्दा भी न करो।

अख़्लाक़ और रहन-सहन के बन्धन जब इतने ढीले हो गये, तो रूम में वासना, नंगापन, गंदगी और बेहयाई की बाढ़ आ गयी। थियेटरों में बेहयाई रौर गंदगी की नुमाइश होने लगी। नंगी और बहुत ही गंदी तस्वीरें हर घर की ज़ीनत के लिए ज़रूरी हो गयीं। वेश्याओं के कारोबार को वह तरक़्क़ी हासिल हुई कि क़ैसर टाइब्रेस (सन् १४-३७ ई.) के दौर में शरीफ़ ख़ानदान की औरतों को पेशेवर वेश्या बनने से रोकने के लिए एक क़ानून लागू करने की ज़रूरत पेश आ गयी । फ़्लोरा (ऋश्रेीर) नामी एक खेल रूमियों में बहुत मशहुर हुआ, क्योंकि उस में नंगी औरतों की दौड़ हुआ करती थी। औरतों और मर्दों के खुले आम इकट्ठा नहाने का रिवाज भी उस दौर में आम था । रूमी साहित्य में बेहयाई की और गन्दगी की बातें बे-झिझक बयान की जाती थीं और आम और ख़ास लोगों में वही साहित्य पसन्द किया जाता था जिसमें यौन संबन्धी बातों को बयान करने में सांकेतिक शैली का परदा भी न रखा गया हो।

हैवान ख़्वाहिशों औ वासना भरी इच्छाओं में इस हद तक जकड़ जाने के बाद रूम की 'उच्चता' का महल इस तरह धरती पर ढहा कि फिर उसकी एक ईंट भी अपनी जगह पर क़ायम न रही।

ईसाई यूरोप

पच्छिमी दुनिया की इस गिरावट का इलाज का इलाज करने के लिए ईसाइयत पहुंची और शुरू में उस ने बड़ी अच्छी सेवाएं कीं, बेहायाई की रोक-थाम की, गन्दगी को ज़िंदगी के हर हिस्से से निकाला, वेश्याओं के पेशे को बन्द करने के उपाय किये, वेश्याओं, गाने वालियों और नाचने वालियों को उनके पेशे से तौबा करायी और पाक-साफ़ नैतिक विचार लोगों में पैदा किये। परऔरत और यौन-संबन्धों के बारे में ईसाइयों के बुज़ुर्ग जो विचार रखते थे, वे एक दूसरी इंतिहा (र्शुीशाश) पर थे, साथ ही यह इंसान के स्वभाव के ख़िलाफ़ लड़ाई का एलान भी था।

उन का शुरू का और बुनियानी नज़रिया यह था कि औरत गुनाह की माँ और बुराई की जड़ है, पाप का सोत और जहन्नम का दरवाज़ा है। तमाम इंसानी मुसीबतों की शुरूआत इसी से हुई है। उस का औरत होना ही उस के शर्मनाक होने के लिए काफ़ी है। उसको अपने हुस्न पर शरमाना चाहिए, क्योंकि वह शैतान का सबसे बड़ा हथियार है। उसको हमेशा ही इस का प्रायश्चित अदा करते रहना चाहिए, क्योंकि वह दुनिया और दुनिया वालों पर लानत और मुसीबत लायी है। तरतूलियान (ढशीींश्रश्रळरप) जो शुरू दौर के ईसाई गुरुओं में से था, औरत के बारे में ईसाई विचारों को इन शब्दों में ज़ाहिर करता है

'वह शैतान के आने का दरवाज़ा है, वह वर्जित, वृक्ष की तरफ़ ले जाने वाली,[३] ख़ुदा के क़ानून कचे तोड़ने वाली, ख़ुदा की तस्वीर मर्द को ग़ारत करने वाली है'।

क्रईसोस्टम (उह्रूीीीीा) जो ईसाइयों के बड़े सरपरस्तों में गिना जाता है, औरत के हक़ में कहता है

'एक ज़रूरी बुराई, एक पैदाइशी वसवसा, एक चाही गयी आफ़त, घरेलू ख़तरा, एक तबाह करने वाला मन-मोह, एक सजी-सजायी मुसीबत'।

उन का दूसरा विचार यह था कि औरत और मर्द का यौन-सबंध अपने आप में एक गन्दगी और ऐसी चीज़ है जिससे बचना चाहिए, चाहे वह विवाह की शक्ल ही में क्यों न हो नैतिकता की यह सन्यासवादी धारण, जो पहले से नव-त्लेटानिज़्म (नशे-झश्रर्रींपळीा) के प्रभाव से पश्चिम में जड़ पकड़ रही थी, ईसाइयत ने आ कर उसे हद को पहुँचा दिया। अब कुँवारा रहना अख़्लाक़ का आदर्श बना और गृहस्थी की ज़िंदगी नैतिक दृष्टिकोण से पस्त और तुच्छ समझी जाने लगी। लोग बीवियों से बचने को नेकी, पाकी और अख़्लाक़ की बुलन्दी की चीज़ समझने लगे। पाक मज़हबी ज़िंदगी बसर करने के लिए यह ज़रूरी हो गया कि या तो आदमी विवाह न करे, या अक्षर विवाह कर लिया हो,ा तो शौहर और बीवी एक दूसरे से दाम्पत्य-संबंध न रखें। बहुत-सी मज़हबी मज्लिसों में यह क़ानून बना दिया गया कि चर्च के ओहदेदार अकेले में अपनी बीवीयों से न

---

3 "d{O©V d¥j' AWm©V dh no‹S {Og H$s Amoa OmZo go ~mB{~b Ho$ (Am¡a µHw$aAmZ Ho$ ^r) AZwgma, ñdJ© _| Aëbmh Zo AmX_ d hìdm H$mo MZm {H$`m Wm & µHw$aAmZ Ho$ AZwgma e¡VmZ Ho$ ~hH$mZo go XmoZm| Zo EH$ gmW Bg AmXoe H$s Adkm H$s, {H$ÝVw ~mB{~b Ho$ AZwgma e¡VmZ Ho$ ~hH$mdo _| AmH$a hìdm Zo AmX_ H$mo ~hH$m`m, AV: hìdm hr Agb _wO[a_ Wt & Bg Vah d "e¡VmZ Ho$ AmZo H$m XadmµOm" hwBª Am¡a _X© H$mo V~mh d µJmaV H$aZo dmbr & àHmeH

मिलें, मियाँ और बीवी की मुलाक़ात हमेशा खुली जगह में हो और कम से कम दो पराये आदमी वहाँ हों। मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ के नापाक होने का विचार तरह-तरह से चर्च में मौजूद ईसाइयों के मन में बिठाया जाता था, जैसे एक क़ायदा यह था कि जिस दिन चर्च का कोई त्यौहार हो, उस से पहले की रात, जिन मियाँ-बीवी ने इकट्ठा गुज़ारी हो, वे त्यौहार में शरीक नहीं हो सकते, गोया उन्होंने कोई गुनाह किया है, जिस में पड़ने के बाद वे किसी पवित्र मज़हबी काम में हिस्सा लेने के क़ाबिल नहीं रहे। इस सन्यासवादी विचार ने तमाम ख़ानदानी ताल्लुक़ात, यहाँ तक कि माँ और बेटे के ताल्लुक़ में कड़वाहट पैदा कर दी और हर वह रिश्ता गन्दग और गुनाह बन रह गया जो विवाह का नतीजा हो।

इन दोनोंच नज़रियों ने न सिर्फ़ अख़्लाक़ और रहन-सहन में आरत की हैसियत हद से ज़्यादा गिरा दी, बल्कि रहने-सहने के क़ानूनों पर भी इतना असर डाला कि एक ओर शौहर-बीवी की ज़िंदगी मर्दों और औरतों के लिए मुसीबीं बन कर रह गया। ईसाई शरीअत के असर में आकर जितने क़ानून पश्चिमीं देशों में लागू हुए, उन सब कर ख़ास बातें ये थीं

१. खाने-कमाने की हैसियत में औरत कचे बिल्कुल बे-बस कर के मर्द के क़ाबू में दे दिया गया। वियासत में उसके हक़ बहुत थोड़े थे और मिल्कियत में उससे भी ज़्यादा थोड़े। वह ख़ुद अपनी मेहनत की कमाई पर भी अख़्तियार न रखती थी, बल्कि उस की हर चीज़ का मालिक उस का शौहर था।

२. तलाक और ख़ुलअ़[४] की तो इजाज़त ही न थी। मियाँ-बीवी में चाहे कितनी ही दूरी हो, आपसी ताल्लुक़ात की ख़राबी से भले ही घर जहन्नम का घर बन गया हो, मज़हब और क़ानून दोनों उन को ज़बरदस्ती एक दूसरे के साथ बंधे रहने पर मजबूर करते थे।इन का ज़्यादा से ज़्यादा अगर कोई हल निकल सकता था, तो सिर्फ़ यह था कि मियाँ-बीवी में अलगाव (ड्शरीरींळेप) करा दिया जाए, यानी वह एक दूसरे से बस अलग कर दिये जाएं। अलग होकर दूसरे विवाह का हक़ न औरत को था, न मर्द को। सच तो यह है कि यह लह पहली शक्ल से भी बुरा था, क्योंकि इसके याद उनके

---

4 "˜wb‹A' AWm©V nËZr H$m, AnZr Amoa go, n{V go VbmµH$ boZm àHmeH

लिए इसके सिवा कोई रास्ता न था कि या तो वे दोनों राहिब (सन्यासी) और राहिबा (सन्यासिनी) बन जाएं, या फिर तमाम उम्र बदकारी और दुष्कर्म करते रहें।

३. शौहर के मरने पर बीवी के लिए और बीवी के मरने पर शौहर के लिए दूसरा। विवाह करना ज़बरदस्त ऐब की बात, बल्कि गुनाह क़रार दिया गया था। ईसाई उलेमा कहते थे कि यह सिर्फ़ हैवानी ख़्वाहिशों की बन्दग और हवस की ग़ुलामी है। उन की भाषा में इस काम का नाम 'सभ्य ज़िनाकरी' था। चर्च के क़ानून में मज़हबी ओहदेदारों के लिए दूसरा विवाह करना जुर्म था। देश के आम क़ानूनों में कभी इस की सिरे से इजाज़त ही न थी और जहाँ क़ानून इजाज़त देता था, वहाँ भी जन-मत, जो मज़हबी विचारों के असर में था, उस को जायज़ न रखता था।

नया यूरोप

अठारहवीं सदी ईस्वी में यूरोप के फ़लासफ़रों और लेखकों ने जब समाज के ख़िलाफ़ व्यक्ति के हक़ों की हिमायत में आवाज़ उठायी और व्यक्तिगत आज़ादी का बिगुल बजाया तो उन के सामने संस्कृति की वही ग़लत व्यवस्था थी जो ईसाई नैतिक व्यवस्था और ज़िंदगी की फ़िलासफ़ी और जिस ने इंसानी रूह को अप्राकृतिक ज़ंजीरों में जकड़ कर तरक़्क़ी के सारे दरवाज़े बन्द कर रखे थे। इस व्यवस्था को तोड़ कर एक नयी व्यावस्था बनाने के लिए जो नज़रिए नये यूरोप की रचना करने वालों ने पेश किये, उनके नतीजे में फ़्राँस की क्रन्ति हुई और उसके बाद पाश्चात्य संस्कृति व सभ्यता की तरक़्क़ी की रफ़्तार उन रास्तों पर लग गई, जिन पर बढ़ते-बढ़ते बह आज की मंज़िल पर पहुंची है।

इस नये दौर की शुरूआत में औरत-जाति को पस्ती से उठाने के लिए जो कुछ किया गया, सामाजिक ज़िंदगी में उस के अच्छे नतीजे निकले। निकाह व तलाक़ के पिछले क़ानूनों की सख़्ती कम की गयी। औरतों के खाने-कमाने के हक़, जो बिल्कुल छीन लिये गये थे, बड़ी हद तक उन्हें वापस किये गये। उन अख़्लाक़ी नज़रियों को सुधारा गया, जिन की वजह से औरत कचे ज़लील और तुच्छ समझा जाता था। ररहन-सहन के उन नियमों में कांट-छाँट कर दी गयी, जिन की वजह से औरत सचमुच लौंडी बन कर रह गयी थी। ऊँचे दर्जे की शिक्षा-दीक्षा के दरवाज़े मर्दों की तरह औरतों के लिए भी खोले गये। इन

अलग-अलग किये गये उपायों से धीरे-धीरे औरतों की योग्यताएं, जो रहन-सहन के ग़लत क़ानूनों और अज्ञानतापूर्ण नैतिक विचारों के भारी बोझ तले दबी हुई थीं, उभर आयीं। उन्होंने घरों को संवारा, रहन-सहन में सुथराई पैदा की, जनता की भलाई के बहुत से फ़ायदेमंद काम किये, आम लोगों की सेहत की तरक़्क़ी, नयी नस्लों ाक्च ाी अच्छी तर्बियत, बीमारों की ख़िदमत, और होम साइंस का उभार यह सब कुछ उस जागृति के शुरू के फल थे, जो नयी सभ्यता की वजह से औरतों में पैदा हुई, लेकिन जिन नज़रियों के पेट से यह नया आन्दोलन उठा था उन में शुरू ही से एक दूसरी अति (शुाीशाश) तक पहुँचने का रुझान मौजूद था। उन्नीसवीं सदी में इस रुझान ने बड़ी तेज़ी के साथ तरक़्क़ी की और बीसवीं सदी तक पहुँचते-पहुँचते पच्छिमी सभ्यता असंतुलन की दूसरी इंतिहा पर पहुँच गयी।

ये नज़रिए, जिन पर नये पाश्चात्य सभ्यता की बुनियाद रखी गयी थी, तीन शीर्षकों के तहत आते हैं

१. औरतों और मर्दों की बराबरी,

२. औरतों की आर्थिक अनिर्भरता (एलेपोळल खपवशशिपवशपलश)

३. औरत-मर्द का बे-रोक-टोक मेल-मिलाप।

इन तीनों बुनियादों पर संस्कृति को आगे बड़ाने का जो नतीजा होना चाहिए था, आख़िर में वही ज़ाहिर हुआ।

१. बराबरी का मतलब यह समझ लिया गया कि औरत और मर्द न सिर्फ़ अख़्लाक़ी रुत्बे और इंसानी हक़ों में बराबर हों, बल्कि सांस्कृतिक जीवन में औरत भी वही काम करे जो मर्द करते हैं और अख़्लाक़ी बन्धन औरत के लिए भी ही ढीले कर दिये जाएं, जिस तरह मर्द के लिए पहले से ढीले हैं।

बराबरी की इस ग़लत अवधारणा ने औरत को उस के उन प्राकृतिक कामों से ग़ाफ़िल और अलग कर दिया, जिन के पूरा करने पर संस्कृति ज़िंदा बल्कि इंसानी नस्ल ज़िंदा रह सकती है। खाने-कमाने और राजनीति के मामलों और सामूहिक कामों ने उस के व्यक्तित्व को पूरी तरह अपने भीतर समो लिया। चुनाव की जद्दोजेहद, दफ़्तर और कारख़ानों की नौकरी, आज़ाद तिजारती और औद्योगिक पेशों में मर्दों के साथ मुक़ाबले, खेलों और कसरतों की दौड़-धूप,

सोसाइटी के मनोरंजक कामों में शिर्कत, क्लब और स्टेज और नाच-कूद में चाव, ये और इनके अलावा और बहुत-सी न करने और न कहने की चीज़ें उसपर कुछ इस तरह छा गयीं कि दाम्पत्यजीवन की ज़िम्मेदारियाँ, बच्चों की तर्बियत, ख़ानदान की ख़िदमत, घर का बनाव, सारी चीज़ें उसके प्रोग्राम से अलग होकर रह गयीं, बल्कि ज़ेहनी तौर पर उसे इन कामों अपने असली स्वाभावीक कामों से नफ़रत पैदा हो गयी। अब पश्चिम में ख़ानदान की व्यवस्था, जो सस्कृति की नींव का पत्थर है, बुरी तरह बिखर रही है[५]। घर की ज़िंदगी, जिस के सुकून पर इंसान में काम करने की ताक़त पलती-बढ़ती है, अमली तौर पर ख़त्म हो रही है। विवाह का रिश्ता, जो संस्कृति की ख़िदम में औरत और मर्द के आपस में साथ देने की सही शक्ल है, मकड़ी के तार से भी ज़्यादा कमज़ोर हो गया है। नस्लों के बढ़ने को वर्थ कन्ट्रोल, गर्भपात और औलाद के क़त्ल के ज़रिए से रोका जो रहा है। अख़्लाक़ी बराबरी के ग़लत विचार ने औरतों और मर्दों के बीच बद-अख़्लाक़ी में बराबरी क़ायम कर दी है। वे बेहयाइयाँ, जो कभी मर्दों के लिए भी शर्मनाक थीं, अब वे औरतों तक के लिए शर्मनाक रहीं।

---

[5] Am¡a AmO, {ñW{V `h h¡ {H$ n{íM_r Xoem| _| "_mVm-{nVm d g§VmZ' H$s nm[adm[aH$ ì`dñWm Zo {~IaVo {~IaVo, g§VmZ Ho$ {bE "Single Parenthood" H$m ê$n boZm ewê$ H$a {X`m h¡, {OgHo$ AÝVJ©V A~ {eewAm| H$m nmbZ-nmofU d {ejm-Xrjm `m Vmo _mÌ {nVm H$mo `m _mÌ _mVm H$Mo H$aZm hmoVm h¡ Š`m| {H$ _mVm `m {nVm EH$ Xygao H$mo ghO hr Nmo‹S H$a {H$gr Am¡a go g§~§Y ~Zm boVo h¡ & ~w‹Tmno Ho$ {bE CZ Ho$ {bE 'Old-age Homes' ~Z JE h¢ `{X Xmo Ho$ XmoZm| g§VmZ H$mo Nmo‹S H$a _m¡O-_ñVr H$mo H$moB© Xygar amh {ZH$mb b| Vmo g§VmZ H$ht Am¡a nbVr h¡ _mVm-{nVm Ho$ ñZoh d _m_Vm go d§{MV ah H$a
àHmeH

२. औरतों अर्थिक स्वतन्त्रा ने उन कचे मर्द से बे-नियाज़ कर दिया है । वह पुराना उसूल कि मर्द कमाये और औरत घर का इन्तिज़ाम करे, अब इस नये क़ायदे से बदल गया है कि औरत और मर्द दोनों कमायें और घर का इन्तिज़ाम बाज़ार के सुपुर्द कर दिया जाए । इस क्रान्ति के बाद दोनों की ज़िंदगी में एक यौ-संबंध के अलावा और कोई ताल्लुक़ ऐसा बाक़ी नहीं रहा, जो उन को एक दूसरे के साथ जुड़े रहने पर मजबूर करता हो और ज़ाहिर है कि सिर्फ़ वासना भरी ख़्वाहिशों को पूरा करना कोई ऐसा काम नहीं है, जिसके लिए मर्द और औरत ज़रूर ही अपने आप को एक हमेशा के ताल्लुक़ के बन्धन में बंधने और एक घर बना कर मिल कर ज़िंदगी गुज़ारने पर मजबूर पायें । जो औरत अपनी रोटी आप कमाती है, अपनी तमाम ज़रूरतों को ख़ुद पूरा करती है, अपनी ज़िंदगी में दूसरे की हिफ़ाज़त और मदद की मुहताज नहीं है, वह आख़िर सिर्फ़ वासना भरी ख़्वाहिशों की तस्कीन के लिए क्यों एक मर्द की पाबन्द हो? क्यों अपने ऊपर बहुत से अख़्लाक़ी और क़ानूनी बन्धन बांधे? क्यों एक ख़नदान की ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाये? ख़ास तौर से जबकि अख़्लाक़ी बराबरी के विचार ने उस की राह से वे तमाम रुकावटें भी दूर कर दी हों, जो उसे आज़ादाना तरीक़े से वासना पूरी करने में पेश आ सकती थीं, तो वह अपनी ख़्वाहिशों की तस्कीन के लिए आसान, मज़ेदार और सुन्दर रास्ता छोड़ कर क़ुर्बानियों के बोझ से लदा हुआ पुराना दक़ियानूसी (जश्रव ऋीहळेपशव) रास्ता क्यों अपनाये? गुनाह का ख़्याल मज़हब के साथ विदा हुआ । समाज का डर यों दूर हो गया कि समाज उस के बेहया वेश्या होने पर निन्दा नहीं करता, बल्कि हाथों हाथ लेता है । आख़िरी ख़तरा हरामी बच्चे के जन्म का था, सो उससे बचने के लिए गर्भ रोकने के तरीक़े मौजूद हैं। इन तरीक़ों के बावजूद गर्भ ठहर जाए, तो उसे गिरा देने में भी कोई झिझक नहीं । इसमें भी कामियाबी न हो, तो बच्चे कचे ख़ामोशी के साथ क़त्ल किया जा सकता है और अगर कमबख़्त ममता ने (जो बद-क़िस्मती से अभी बिल्कुल फ़ना नहीं हो सकी है) बच्चे को हलाक करने से रोक भी दिया, तो हरामी बच्चे की माँ बन जाने में भी कोई परेशाचनी नहीं, क्योंकि अब 'कुंवारी माँ' और 'नजायज़ बच्चे' के हक़ में इतना प्रचार हो चुका है कि जो समाज उनको नफ़रत की निगाह से देखने की जुर्रत करेगा, उसे ख़ुद अंध विश्वासी होने का इलज़ाम अपने सिर लेना पड़ेगा ।

यह बह चीज़ है जिसने पाश्चात्य सभ्यता की जड़ें हिला कर रख दी हैं । आज हर देश में लाखों जवान औरतें विवाह न करना पसन्द करती हैं, जिन की ज़िंदगियाँ आज़ादी के साथ वासना पूरी करने में गुज़र रही हैं। इन में बहुत ज़्यादा वे औरतें हैं जो मुहब्बत की भावनाओं के ज़ोर से शादियाँ कर लेती हैं। पर चूँकि अब वासना भरे ताल्लुक़ के सिवा मर्द और औरत के बीच कोई ऐसा ज़रूरत वाला ताल्लुक़ बाक़ी नहीं रहा है जो उन्हें बराबर एक दूसरे से जुड़े रहने पर मजबूर करता हो, इसलिए विवाह के रिश्ते में अब कोई पायदारी और स्थिरता नहीं रही। मियाँ और बीवी, जो एक दूसरे से बिल्कुल आज़ाद हो चुके हैं, आपस के ताल्लुक़ात में किसी आपसी रियायत और किसी समझौते (ऊॉिळीश) के लिए तैयार नहीं होते । निरी वासना भरी मुहब्बत की भावनाएं बहुत जल्दी ठंडी हो जाती हैं, फिर मतभेद की एक छोटी-सी वजह, बल्कि कभी-कभी आपसी ठंडापन ही उन्हें एक दूसरे से जुदा कर देने के लिए काफ़ी होती है। गर्भ रोकने, गर्भ गिराने, औलाद क़त्ल करने, जन्म की दरों में कमी और नाजायज़ पैदाइशों, की बढ़ती हुई तादाद की वजह बड़ी हद तक यही बदकारी, बेहयाई और गन्दे रोगों की तरक़्क़ी में भी इस स्थिति का बड़ा दख़ल है।

३. मर्दों और औरतों के आज़ादाना मेल-मिलाप ने औरतों में हुस्न की नुमाइश, गन्दगी और बेहयाई को ग़ैर-मामूली तरक़्क़ी दे दी है । मर्द का औरत के लिए और औरत का मर्द के लिए झुकाव (ड्शुींरश्र अॅीिरलींळेप) जो पहले ही से स्वभाविक रूप में मर्द और औरत के बीच मौजूद है और काफ़ी ताक़तवर है, दोनों के आज़ादाना मेल-जोल के कारण से बहुत आसानी के साथ ग़ैर-मामूली हद तक तरक़्क़ी करता जाता है, फिर इस क़िस्म की मिली-जुली सोसाइटी में क़ुदरती तौर पर दानों के भीतर यह जज़्बा उभर आता है कि विपरीतलिंग के लिए ज़्यादा से ज़्यादा आकर्षक (अॅीिरलींळींश) और मनमोहक बनें । और जबकि के बदल जाने की वजह से ऐसा करना कोई दोष भी न रहा हो, बल्कि एलानिया मन-मोहक शान पैदा करने को अच्छा और पसन्दीदा समझा जाने लगा हो, तो हुस्न व सौन्दर्य की नुमाइश धीरे-धीरे तमाम हदों कचे तोड़ती चली जाती है, यहाँ तक कि गन्दगी की आख़िरी हद को पहुँच कर ही दम लेती है। यही स्थिति इस वक़्त पाश्चात्य सभ्यता में पैदा हो गयी है । विपरीत-लिंग के लिए जुम्बक बनने की ख़्वाहिश औरत में इतनी बढ़ गयी है औ इतनी बढ़ती चली जा रही है कि

चटक-मटक पहनावें, पावडरों, सुर्ख़ियों और बनाव-सिंगार के नित नये सामानों से उसकी तसल्ली नहीं होती। बेचारी तंग आ कर अपने कपड़ों से बाहर निकल पड़ती है, यहाँ तक कि कभी-कभी तार तक लगा रहने नहीं देती। इधर मर्दों की ओर से हर वक़्त 'कुछ और-कुछ और' का तक़ाज़ा है, क्योंकि भावनाओं में जो आग लगी हुई है, वह हुस्न के बार-बार बे-परदा होने पर बुझती नहीं, बल्कि और ज़्यादा भड़कती है और ज़्यादा बे-परदा होने की माँग करती है। इन बेचारों की प्यास भी बढ़ते-बढ़ते तौंस बन गयी हैं, जैसे किसी को लू लग लग गयी हो और पानी का हर घूंट प्यास कचे बुझाने के बजाए और भड़का देता हो, अत्यधिक वासना की प्यास से बेचैन हो कर बेचारे हर वक़्त हर मुम्किन तरीक़े से उस की तस्कीन का सामान जुटाते रहते हैं। ये नंगी तस्वीरें, ये गंदे लिट्रेचर, ये इश्क़ व मुहब्बत की कहानियाँ, ये नंगे और जुड़वाँ नाच, कामोत्तेजना से भरे हुए फ़िल्म, (और ब्लू फ़िल्में) आख़िर क्या हैं? सब इसी आग को बूझाने बल्कि असल में भड़काने के सामान हैं, जो इस ग़लत रहन-सहन ने हर सीने में लगा रखी है और अपनी इस कमज़ोरी को छिपाने के लिश इसका नाम उन्होंने रखा है 'आर्ट' कला।

यह घुन बड़ी तेज़ी के साथ पच्छिमी क़ौमों की ज़िंदगी की ताक़त कचे खा रहा है। यह घुन लगने के बाद आज तक कोई क़ौम नहीं बची। यह उन तमाम ज़ेहनी और जिस्मानी ताक़तों कचे खा जाता है, जो क़ुदरत ने इंसान को ज़िंदगी और तरक़्क़ी के लिए दे रखी हैं। ज़ाहिर है कि जो लोग हर ओर से वासना बड़ाने वाली चीज़ों से घिरे हों, जिनकी भावनाओं को हर समय एक नये आन्दोलन और एक नयी उत्तेजना से वास्ता पड़े, जिन पर एक बड़ा सनसनी भरा माहौल पूरी तरह छा गया हो, जिनके ख़ून को नंगवी तस्वीरें, गन्दे लिट्रेचर, उभारनेवाले गाने, भड़कानेवाले नाच, इश्क़ व मुहब्बत के फ़िल्म, दिल छीनने वाले ज़िंदा दृश्ब और विपरीत लिंग से हर वक़्त के मेल-मिलाप के मौक़े बराबर एक जोश की हालत में रखते हों, वे कहाँ से वह अम्न, वह सुकून और वह इत्मीनान ला सकते हैं, जो रचनात्मक और तामीरी कामों के लिए ज़रूरी है। यही नहीं, बल्कि ऐसे सनसनी भरे हालात के बीच उनको और ख़ास तौर से उनकी जवान नस्लों को वह ठंडा और सुकून भरा माहौल कहाँ से मिल सकता है, जो उन की ज़ेहनी और अख़्लाक़ी ताक़तों कचे बढ़ाने के लिए ज़रूरी है। होश संभालते हैं तो हैवानी

ख़्वाहिशों का दैत्य उन को दबोच लेता हैं, उसके चंगुल में फंस कर वे पनप कैसे सकते हैं?

इंसानी सोच की दर्दनाक कहानी

तीन हज़ार साल ऐतिहासिक उतार-चढ़ाव की यह लम्बी दास्तान एक बड़े भू-भाग से ताल्लुक़ रखती है, जो पहले भी दो शानदार सभ्यताओं का पालना रह चुकी है और अब फिर जिसकी सभ्यता का डंका दुनिया में बज रहा है। ऐसी ही दास्तान मिस्र, बाबिल, ईरान और दूसरे देशों की भी है और ख़ुद हमारा देश भारत भी सदियों अतियों (ए्ीीशाशी) में फँसा हुआ है । एक ओर औरत दासी बनायी जाती है, मर्द उसका स्वामी और पतिदेव यानी मालिक और माबूद बनता है, उस को बचपन में बाप की, जवानी में शौहर की और बेवा होने पर औलाद की मिल्कियत बन कर रहना पड़ता है। उसे शौहर की चिता पर भेंट चढ़ाया जाता है, उसकचे मिल्कियत और विरासत के हक़ों से महरूम रखा जाता है, उस पर निकाह के बड़े कड़े क़ानून लाद दिये जाते हैं, जिनके मुताबिक़ वह अपनी मर्ज़ी और पसन्द के बिना एक मर्द के हवाले की जाती है और फिर ज़िंदगी की आख़िरी सांस तक उस की मिल्कियत से किसी हाल में नहीं निकल सकती । उसको यहूदियों और यूनानियों की तरह गुनाह और अख़्लाक़ और रूह की पस्ती की मूर्ति समझा जाता है और उस के स्थायी व्यक्तित्व कचे माने से इंकचर कर दिया जाता है। दूसरी ओर जब उस पर कृपा की निगाह होती है, तो उसे हैवानी ख़्वाहिशों का खिलौना बना लिया जाता है। वह मर्द के दिल व दिमाग़ पर सवार हो जाती है और ऐसी सवार होती है कि ख़ुद भी डूबती है और अपने साथ सारी क़ौम को भी डूबती है। यह लिंग और योनि की पूजा, यह पूजाघरों में नंगे और जोड़वाँ मूर्तियाँ, ये देवदासियाँ (ठशश्रळसळेंी झीीींळीीिंशी), ये होली के खेल, ये नदियों के आधे-नंगे स्नान आख़िर किस चीज़ की यादगारें हैं? उस वाममार्गी आन्दोलन की बची-खुची ख़राबियाँ ही तो हैं, जो ईरान, बाबिल, यूनान और रूम की तरह भारत में संस्कृति व सभ्यता की अत्योन्नति के बाद छूत की बीमारी की तरह फैली और हिन्दू क़ौम कचे सदियों के लिए गिरावट और पस्ती के गढ़े में फेंक गयी।

इस दास्तान को गहरी नज़र से देखिए, तो मालूम होगा कि औरत के मामले में इंसाफ़ को पाना और उसे समझना और उस पर क़ायम होना इंसान के लिए कितना कठिन साबित हुआ है । इंसाफ़ यही हो सकता है कि एक और और

औरत को अपने व्यक्तित्व और अपनी योग्यताओं की तरक़्क़ी का पूरा मौक़ा मिले और उसे इस क़ाबिल बनाया जाए कि वह ज़्यादा उन्नत योग्यताओं के साथ इंसानी संस्कृति व सभ्यता की तरक़्क़ी में अपना हिस्सा अदा कर सके और दूसरी ओर उसको अख़्लाक़ी गिरावट और पस्ती का ज़रिया तबाही का हथियार न बनने दिया जाए, बल्कि मर्द के साथ उसकी मदद का ऐसा रासता निकाल दिया जाए कि दानों का मेल हर हैसियत से संस्कृति के लिए स्वास्थप्रद हो। इस इंसाफ़ को दुनिया सदियों से खोजती रही है, पर आज तक नहीं पा सकी। कभी एक इंतिहा की ओर जाती है और इंसानियत के आधे हिस्से को बेकार बना के रख देती है, कभी दूसरी इंतिहा की ओर जाती है और मानवता के दोनों हिस्सों को मिला कर शराब में डुबा कर रख देती है।

बीच का रास्ता नापैद नहीं, मौजूद है, पर हज़ारों साल तक दोनों इंतिहाओं के बीच घूमते रहने की वजह से लोगों का सर इतना चकरा गया है कि रास्ता सामने आता है और यह पहचान नहीं सकते कि यही तो वह असल रास्ता जिसे हमारी प्रकृति ढूंढ रही थी। इस सन्मार्ग को देख कर वे नाक-भौं चढ़ाते हैं, उस पर आवाज़ें कसते हैं और जिस के पास यह नज़र आता है, उलटा उसी कचे शर्मिंदा करने की कोशिश करते हैं। उनकी मिसाल उस बच्चे की सी है, जो एक कोयले की कान में पैदा हुआ हो और वहीं जवानी की उम्र तक पहुँचे। ज़ाहिर है कि उसे वही कोयले की मारी हुई जलवायु और वही काली-काली फ़िज़ा ही ठीक फ़ितरी चीज़ मालूम होगी और जब वह उस खान से निकाल कर बाहर लाया जाएगा, तो प्रकृति की दुनिया की पाकी फ़िज़ा में हर चीज़ कचे देख कर पहले-पहले वह ज़रूर घबराएगा। पर इंसान आख़िर इंसान है, उसकी आँखें कोयले की छत और तारों भरे आसमान का फ़र्क़ महसूस करने से कब तक इंकार कर सकती हैं? उस के फेफड़े गन्दी हवा और साफ़ हवा में आख़िर कब तक फ़र्क़ महसूस न करेंगे?

आज के दौर का मुसलमान

दो इंतिहाओं की भूल भुलैयाँ में भटकने वाली दुनिया को अगर बीच का रास्ता दिखाने वाला कोई हो सकता था, तो वह सिर्फ़ मुसलमान था, जिस के पास सामूहिक ज़िंदगी की सारी गुत्थियों के सही हल मौजूद हैं। पर दुनिया की बद-नसीबी का यह भी अजीब पहलू है कि इस अंधेरे में जिस के पास चिराग़ था, वही कम-बख़्त रतौंद के रोग का शिकार हो गया और दूसरों कचे रास्ता दिखाना तो दुर की बात, ख़ुद अंधों की तरह भटक रहा है और एक-एक भटकने वाले के पीछे दौड़ता फिरता है।

'परदा' शब्द जिस विधान-संग्रह के लिए शीर्षक के तौर पर इस्तेमाल होता है, वह असल में रहन-सहन के इस्लामी क़ानूनों के बड़े अहम हिस्से अपने भीतर रखता है। इस पूरे वैधानिक ढाँचे में इन हुक्मों कचे इन की सही जगह पर रख कर देखा जाए, तो कोई ऐसा आदमी, जिस में थोड़ी सी भी ख़ुदा की दी हुई सुझ-बूझ बाक़ी हो, यह माने बिना न रहेगा कि रहन-सहन के मामले में संतुलित प्रणाली और कोई हो ही नहीं सकती और अगर इस क़ानून को उस की असली रूह के साथ अमली ज़िंदगी में बरत कर दिखा दिया जाए, तो उस पर एतराज़ करना तो दूर की बात, मुसीबतों की मारी हुई दुनिया सलामती के इस सोत की ओर ख़ुद दौड़ती चली आएगी और इस से अपने रहन-सहन के रोगों की दवा हासिल करेगी। पर यह काम कौन करे? जो इसे कर सकता था, वह ख़ुद एक मुद्दत से बीमार पड़ा है। आइए, आगे बढ़ने से पहले तनिक एक नज़र डाल कर दुनिया के इस रोग का भी जायज़ा ले लें।

पीछे का इतिहास

अठारहवीं सदी का आख़िरी और उन्नीसवीं सदी का शुरू का ज़माना था, जब पच्छिमी क़ौमों कच साम्राज्यवादी बाढ़ एक तुफ़ान की तरह इस्लामी देशों पर उमड़ आयी और मुसलमान अभी कुछ सोये और कुछ जाग रहे थे कि देखते-देखते यह तुफ़ान पूरब से लेकर पच्छिम तक पूरी इस्लामी दुनिया पर छा गया। उन्नीसवीं सदी आख़िरी के, आधे तक पहुँचते-पहुँचते बहुत-सी मुसलमान क़ौमें यूरोप की ग़ुलाम हो चुकी थीं और जो ग़ुलाम न हुईं थीं, पश्चिमी साम्राज्य के रौब से ग्रस्त व प्रभावित हो गई थी। जब यह इंक़िलाब पूरा हो गया, तो

मुसलमानों की आँखें खुलनी शुरू हुईं। वह क़ौमी ग़रूर जो सदियों तक हुकूमत करते रहने की वजह से पैदा हो गया था, यकायक मिट्टी में मिल गया और उस शराबी की तरह जिसका नशा किसी ताक़तवर दुश्मन की लगातार चोटों ने उतार दिया हो, उन्होंने अपनी हार और अंग्रेज़ों की जीत की वजहों पर विचार करना शुरू किया, लेकिन अभी दिमाग़ ठीक नहीं हुआ ा, नशा तो उतर गया था, पर सन्तुलन अभी तक बिगड़ा हुआ था। एक ओर अपमानित होने का ज़बरदस्त एहसास था, जो इस हालत कचे बदल देने की माँग कर रहा था, दूसरी ओर सदियों की आराम-तलबी और आसानी-पसन्दी थी, जो हालात की तब्दीली का सब से आसान और सब से ज़्यादा क़रीब का रासता ढूंढना चाहती थी, तीसरी ओर समझ-बूझ और सोच-विचार की मुर्चा लगी ताक़तें थीं, जिन से काम लेने की आदत वर्षों से छूटी हुई थी, इन सबके साथ-साथ दुश्मनों का छाया हुआ वह रांब व दबदबा था, जो हर हारी हुई ग़ुलाम क़ौम में क़ुदरती तौर पर पैदा हो जाता है। इन बहुत सारी वजहों ने मिल-जुल कर सुधार चाहने वाले मुसलमानों को बहुत-सी अक़्ली और अमली गुमराहियों में फंसा दिया। इनमें से ज़्यादातर तो अपनी पस्ती और यूरोप की तरक़्क़ी के सही वज्हों को समझ ही सके और जिन्होंने इन को समझा, उनमें भी इतनी हिम्मत, संघर्षकारी और मुजाहिदाना स्प्रिट न थी कि तरक़्क़ी के कठिन रास्तों कचे अपनाते। उन पर दुश्मन का छाया हुआ रौब अलग था, जिस में उपरोक्त दोनों गिरोह बराबर के शरीक थे। इस बिगड़ी हुई ज़ेहनियत के साथ तरक़्क़ी का सबसे आसान रास्ता जो उन को नज़र आया, वह यह था कि पच्छिम संस्कृति व सभ्यता की रूप-रेखा अपनी ज़िंदगी में उतार लें और उस आईना की तरह बन जाएं, जिसके भीतर बाग़ व बहार के दृश्य तो सब के सब मौजूद हों, पर हक़ीक़त में न बाग़ हो, न यहार।

ज़ेहनी ग़ुलामी

यही था संकट का वह समय, जिसमें पच्छिमी पहनावा, पच्छिमी रहन-सहन, पच्छिम तौर-तरीक़े, यहाँ तक कि चाल-ढाल और बोल-चाल तक में पच्छिमी तरीक़ों की नक़ल उतारी गयी, मुस्लिम समाज को पच्छिमी साँचों में ढालने की कोशिशें की गयीं। ख़ुदा को न मानने को[६], और भौतिकवाद कचे सब

---

6 nmíMmË` gä`Vm go à^m{dV hmoZo Ho$ gmW gmW nmíMmË` _yë`m| Am¡a {dMmaYmAm| Ho$ ^r am¡~

कुछ मान लेना, फ़ैशन के तौर पर बिना समझे बूझे स्वीकार कर लिया गया। हर वह पक्का या कच्चा विचार जो पच्छिम से आया, उस पर ईमान ले आना और अपनी मज्लिसों में उस की ताईद करना रौशन-ख़्याली का ज़रूरी हिस्सा समझा गया। शराब, जुआ, लाटरी, रेस, थिएटर, नाच-गाना और पच्छिमी सभ्यता के दूसरे फलों को कचे हाथों हाथ लिया गया। शिष्टता, अख़्लाक़, रहन-सहन, खान-पान, राजनीति, क़ानून यहाँ तक कि मज़हबी अक़ीदों और इबादतों के मुताल्लिक़ भी जितने पच्छिमी नज़रिए या अमल थे, उन को किसी आलोचना और किसी सोच-समझ के बिना इस तरह मान लिया कि जैसे वे आसमान से उतरी हुई बह्य हैं, जिनपर 'समिअ़ना व अतअ़ना' (सुना और आज्ञापालन किया) कहने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं।

इस्लामी इतिहास की बातें, इस्लामी शरीअ़त के हुक्म और क़ुरआन व हदीस के बयानों में जिस-जिस चीज़ कचे इस्लाम के पुराने दुश्मनों ने नफ़रत या एतराज़ की निगाह से देखा, उस पर मुसलमानों को भी शर्म आने लगी और उन्होंने कोशिश की कि कि इस दाग़ को किसी तरह धो डालें। उन्होंने जिहाद पर एतराज़ किया। जन्होंने कहा कि हुज़ूर! भला हम कहाँ और जिहाद कहाँ? उन्होंने ग़ुलामी पर एतराज़ किया। उन्होंने कहा कि ग़ुलामी तो हमारे यहाँ बिल्कुल ही नाजायज़ है। उन्होंने कई बीवियों के रखने पर एतराज़ किया, उन्होंने तुरन्त क़ुरआन की एक आयत को छिपा लिया। उन्होंने कहा कि औरत और मर्द में पूरी बराबरी होनी चाहिए। उन्होंने कहा कियही हमारा मज़हब भी है। उन्होंने निकाह व तलाक़ के क़ानूनों पर एतराज़ किये। ये उन सब में काँट-छाँट करने पर तैयार हो गये। उन्होंने कहा कि इस्लाम तो हमेशा से नाच-गाने, तस्वीर बनाने और बुत तराशने की सरपरस्ती करता रहा है।

परदे के सवाल पर बहस की शीरूआत

मुसलमानों के इतिहास का यह दौर सब से ज़्यादा शर्मनाक है। यही दौर है, जिसमें परदे के सवाल पर बहस छिड़ी। अगर सवाल सिर्फ़ इतना होता कि

| AmµOmZo Ho$ µ\$bñdê$n EH$ g` Wm O~ _w{ñb_ dw{ÕOr{d`m| _| "BÎhmX' (AZrídadmX `m B©ídar` YmaUm Ho$ à{V CXmgrZVm) H$m amoJ \¡$b J`m Wm & àHmeH

इस्लाम में औरत के लिए आज़ादी की क्या हद मुक़र्रर की गई है, तो जवाब कुछ भी मुश्किल न होता। ज़्यादा से ज़्यादा जो मतभेद इस सिलसिले में पाया जाता है, वह सिर्फ़ इस हद तक है कि चेहरे और हाथ को खोलना जायज़ है या नहीं। और यह कोई बहुत अहम मतभेद नहीं है। लेकिन असल में यहाँ यह मामला कुछ और है।

मुसलमानों में यह मामला इसलिए पैदा हुआ कि यूरोप ने 'हरम' औ परदा व नक़ाब को बड़ी नफ़रत की निगाह से देखा, अपने लिट्रेचर में उस की बड़ी घिनौनी तस्वी खींची, ऐसी तस्वीर, जिस का मज़ाक़ उड़ाया जा सके। इस्लाम के शबों की लिस्ट में औरतों की 'क़ैद' को ख़ास जगह दी। अब कैसे मुम्किन था कि मुसलमानों को इस चीज़ पर भी शर्म न आने लगती। उन्होंने जो कुछ जिहाद, ग़ुलामी और बहुपत्नीत्व और ऐसे ही दूसरे मसलों में किया था, वही इस में किया था, वही इस मसले में भी किया। क़ुरआन, हदीस और इमामों के इज्तिहादों के पन्ने के पन्के इस मक़्सद से उलटे गये कि वहाँ इस बद-नुमा दाग़ के धोने के लिए कुछ सामान मिलता है या नहीं। मालूम हुआ कि कुछ इमामों ने हाथ और मुँह खोलने की इजाज़त दी है। यह भी पता चला कि औरत लैडाई के मैदा में सिपाहियों को पानी पिलाने और घायलों की मरहम-पट्टी करने के लिए भी जा सकती है। मस्जिदों में नमाज़ के लिए जाने और इल्म (ज्ञान) सीखने और पाठ देने की भी गुँजाइश पायी गयी। बस इतनी सी बात काफ़ी थी। दावा कर दिया गया कि इस्लाम ने औरत को पूरी आज़ादी दे रखी। परदा सिर्फ़ एक अज्ञानता भरी रस्म है, जिस कचे तंगनज़र और अंथविश्वासी मुसलमानों ने शुरू के दौर हे बहुत बाद अपनाया है। क़ुरआन और हदीस परदे के हुक्मों से खाली हैं। उन में तो सिर्फ़ शर्म व हया की अख़्लाक़ी तालिम दी गयी है। कोई ऐसा नियम नहीं बनाया गया जो औरत की स्वच्छंदतापूर्ण पर कोई पाबन्दी लगाता हो।

असली वजह

इंसान की यह स्वाभाविक कमज़ोरी है कि अपनी ज़िंदग के मामलों में जब वह कोई राय अपनाता है, तो आम तौर से उसके चुनाव की शुरूआर एक जज़्बाती, ग़ैर-अक़्ली रुझान से होता है और उसके बाद वह अपने इस रुझान को सही साबित करने के लिए अक़्ल व दलील से मदद लेता है। परदे की बहस में भी ऐसी ही शक्ल पेश आयी। इस की शुरूआत किसी अक़्ली या शरई ज़रूरत के एहसास से नहीं हुई, यल्कि असल में उस रुझान से हुई है जो एक ग़ालिब

क़ौम की चमचमाती संस्कृति का असर लेने और इस्लामी संस्कृति के ख़िलाफ़ उस क़ौम के प्रचार का रौब खा जाने का नतीजा है।

हमारे सुधारकों ने जब फटी हुई आँखों के साथ अंग्रेज़ औरतों की साज-सज्जा, आज़ादी के साथ चलत-फिरत और अंग्रेज़ों के रहन-सहन में उन की दिलचस्पियों को देखा, तो उन्होंने अपने को संकट में घिरा पाया। उनहके दिलों में यह तमन्ना पैदा हुई कि काश! हमारी औरतें भी इसी रविश पर चलें, ताकि हमारी संस्कृति भी पश्चिमी संस्कृति के बराबर हो जाए। फिर उन पर औरतों की आज़ादी, उनकी शिक्षा और औरत-मर्द की बराबरी के उन नये नज़रियों का भी असर पड़ा जो तर्कपूर्ण सशक्त भाषा में और शानदार छपाई के साथ वर्षा की तरह बराबर उन पर बरस रहे थे। इस लिट्रेचर की ज़बरदस्त ताक़त ने उनकी जांचने-परखने की ताक़त को ख़त्म कर दिया और उनके मन में यह बात उतर गयी कि इन नज़रियों पर अनदेखा ईमान लाना और लेख व व्याख्यान में उन की वकालत करना और (जुरअत व साथ) अमली ज़िंदगी में भी उन को प्रचलित कर देना हर उस आदमी के लिए ज़रूरी है जो 'रोशन ख़्याल' कहलाना पसंद करता हो और 'दक़ियानूसी' के घिनौने इलज़ाम से बचना चाहता हो। नक़ाब के साथ सादा पहनावे में छिपी हुई औरतों पर जब 'चलते-फिरते ख़ेमे' और 'कफ़न पहने हुए जनाज़े' की फबतियाँ कसी जाती थीं, तो ये बेचारे शर्म के मारे ज़मीन में गड़-गड़ जाते थे। आख़िर कहाँ तक सहते? मजबूर हो कर या उनके जादू मफ आ कर बहरहाल इस शर्म के धब्बे को धोने पर तैयार ही हो गये।

उन्नीसवीं सदी के आख़िरी ज़माने में नारी-सवतंत्रता का जो आन्दोलन मुसलमानों में चला, उसके पीछे काम करने वाली असल में यही भावनाएं और यही रुझान थे। कुछ लोग बिना समझे-बूझे इन भावनाओं के शिकार हो गये थे और उन को ख़ुद भी मालूम न था कि क्या चीज़ है जो उन्हें इस आन्दोलन की ओर ले जा रही है। ये लोग अपने आप को धोखे में डाले लुए थे। कुछ को अपनी उन भावनाओं का अच्छी तरह एहसास था, पर उन्हें अपनी असली भावनाओं को ज़ाहिर करते शर्म आती थी। ये ख़ुद तो धोखे में न थे, लेकिन इन्होंने दुनिया को धोखे में डालने की कोशिश की। बहरहाल दोनों गिरोहों ने काम एक ही किया और वह यह था कि अपने आन्दोलन की असल वजहों को छिपा कर उस को भावनाओं का आन्दोलन कहने के बजाए दलील और अक़्ल का आन्दोलन बनाने की कोशिश की। औरतों की सेहत, उन की मांसिक

बौद्धिक व व्यावहारिक उन्नीत, उनके स्वाभाविक और पैदाइशी अधिकार, उन की आर्थिक दृढ़ता, मर्दों के ज़ालिमाना चंगुल से उन की रिहाई और क़ौम का आधा हिस्सा होने की हैसियत से उनकी तरक़्क़ी पर पूरी सभ्यता की तरक़्क़ी और ऐसे ही दूसरे हीले, जो यूरोप से सीधे-सीधे चले आ रहे थे, इस आन्दोलन की ताईद में पेश किये गये, ताकि आम मुसलमान धोखे में पड़ जाऐं और उन पर यह हक़ीक़त न खुल सके कि इस आन्दोलन का असल मक़्सद मुसलमान औरत को उस रविश पर चलाना है, जिस पर यूरोप की औरत चल रही है और रहन-सहन में उन तरीक़ों की पैरवी करना है जो इस वक़्त पच्छिमी क़ौमों में चल रहे हैं।

सब से बड़ा धोखा

लेकिन सब से ज़्यादा घिनौना और बुरा धोखा जो इस सिलसिले में दिया गया है वह यह है कि क़ुरआन व हदीस से दलीलें लाकर इस आन्दोलन को इस्लाम के हक़ में साबित करने की कोशिश की गयी है, हालांकि इस्लाम और पच्छिमी सभ्र्यीां के मक़्सदों और समाज बनाने के उसूलों में ज़मीन व आसान का फ़र्क़ है। इस्लाम का मक़्सद, जैसाकि हम आगे चल कर बताएंगे, इंसान की वासना-ऊर्चा (डशु एपशीसू) को अख़्लाक़ी डिसिपलिन में लाकर इस तरह बांधना है कि वह व्यावारिक भटकाव और कामोत्तेजना में बर्बाद होने के बजाए एक पाकीज़ा और भली संस्कृति ढालने में लगे। इसके ख़िलाफ़ पच्छिमी संस्कैति का मक़्सद यह है कि ज़िंदगी के मामलों और ज़िम्मेंदारियों में औरत और मर्द को बराबर का शरीक करके भौतिक उन्नति की रफ़्तार तेज़ कर दी जाए और उसके साथ कामोत्तेजना को ऐसी कलाओं और कामों में इस्तेमाल किया जाए जो जीवन-संघर्ष की कड़वाहटों को मज़ा और स्वाद में बदल दे।

मक़्सदों के इस फ़र्क़ का ज़रूरी तक़ाज़ा यह है कि रहन-सहन के तौर-तरीक़ों में भी इस्लाम और पच्छिमी संस्कृति के दर्मियान बुनियादी मतभेद हो। इस्लाम अपने मक़्सद के हिसाब से रहन-सहन की ऐसी व्यवस्था बनाता है, जिस में औरत और मर्द के अमल के दायरे बड़ी हद तक अलग कर दिये गये हैं, दोनों के बे-रोक-टोक मेल-मिलाप को रोका गया है और उन तमाम वेहों की जड़ काट दी गयी है जो इस व्यवस्था में बिखराव पैदा करते हैं। इस के मुक़ाबले में पच्छिमी संस्कृति के समक्ष जो मक़्सद है, उसका फ़ितरी तक़ाज़ा है कि मर्दों, औरतों, दोनो को ज़िंदगी के एक ही मैदान में खींच लाया जाए और उनके बीच से वे तमाम परदे उठा दिये जाऐं जो उन के आज़ादी के साथ मिलने-जुलने और

मामला करने में रुकावट बने और उनको एक दूसरे के हुस्न का स्वाद लेने के व्यापक मौक़े जुटा दिये जाऐं।

अब हर अक़्लमंद इंसान यह अन्दाज़ा कर सकता है कि जो लोग एक ओर पच्छिमी सभ्यता पर चलना चाहते हैं और दूसरी ओर रहन-सहन के इस्लामी तौर-तरीक़ों को भी अपने लिए अनिवार्यमानते हैं, वे ख़ुद कितने बड़े धोखे में पड़े हुए हैं या दूसरों को डाल रह हैं। रहन-सहन के इस्लामी तरीक़े में तो औरत के लिए आज़ादी की आख़िर हद यह है कि ज़रूरत के मुताबिक़ हाथ और मुँह खाल सके और अपनी ज़रूरतों के लिए घर से बाहर निकल सकें, पर ये आख़िरी हद को अपने सफ़र की शुरूआत समझते हैं, जहाँ पहुँचकर इस्लाम रुक जाता हैं, वहाँ से ये चलना शुरू करते हैं और यहाँ तक बढ़ जाते हैं कि हया और शर्म ताक़ पर उठा कर रख दी जाती हैं। हाथ और मुँह ही नहीं, बल्कि ख़ुबसूरत मांग निकले हुए सिर, कंधो तक खुली हुई बाहें और आधे खुले हुए सीने भी निगाहों के सामने पेश कर दिये जाते हैं औंर जिस्म के बाक़ी हिस्सों को भी ऐसे बारीक और चुस्त कपड़ों में लपेट दिया जाता हैं कि वह हर चीज़ उनमें से नज़र आ सके जो मर्दों की वासना की प्यास बुझा सकती हो। फिर इन पहनावों और साज-सज्चा के साथ महरमों[७] के सामने नहीं, बल्कि दोस्तों की महफ़िलों में बीवियों, बहनों और बेटियों को लाया जाता है और उन को दूसरों के साथ हंसने-बोलने और खेलने में वह आज़ादी बख़्शी जाती है जो मुसलमान औरत अपने सगे धाई के साथ भी नहीं बरत सकती। घर से निकलने की जो इजाज़त सिर्फ़ ज़रूरत पर और पूरी तरह ढक-ढका कर हया के साथ दी गयी थी, उस को मन मोह लेने वाली साड़ियों और अधखुले बलाउज़ों और बेबाक निगाहों के सा सड़कों पर फिरने, पार्कों में टहलने, होटलों के चक्कर लगाने और सिनेमाओं की सैर करने में इस्तेमाल किया जाता है। औरतों को ख़ानादारी के अलावा दूसरे मामलों में हिस्सा लेने की जो स-शर्त आज़ादी इस्लाम में दी गर्ल थी, उसको तर्क बनाया

---

7 "_ha_m|' go VmËn`© h¡ Eogo ì`{º$, {OZ Ho$ gm_Zo, ñÌr Ho$ ~o-naXm AmZo H$mo Bñbm_ Zo _Zm Zht {H$`m h¡ & Bñbm_r earAV _| `o do {ZH$Q-g§~§Yr h¢ {OZ Ho$ gmW ñÌr H$m {ZH$mh Zht hmo gH$Vm, O¡go ~mn, ~oQm, ^mB©, ^mÝOm, ^VrOm, MMm, _m_m, ˜mby Am{X &

जाता है, इस मक़्सद के लिए कि मुसलमान औरतें भी अंग्रेज़ औरतों की तरह घर ज़िंदगी और उसकी ज़िम्मेदारियों को तलाक़ दे कर सियासत, खाने-कमाने और समाज के मुताल्लिक़ सरगर्मियों में मारी-मारी फिरें और अमर के हर मैदान में मर्दों के साथ दौड़-धूप करें।

भारत में तो मामला यहीं तक है। मिस्र, तुर्की और ईरान में सियासी आज़ादी रखने वाले ज़ेहनी ग़ुलाम इस से भी दस क़दम आगे निकल गये हैं। वहाँ 'मुसलमान' औरतें ठीक वही पहनावे पहनने लगी हैं, जो यूरोपीय औरतें पहनती हैं, ताकि असल और नक़्ल में कोई फ़र्क़ ही न रहे और इस से बढ़ कर कमाल यह है कि तुर्की औरतों के फोटो बार-बार इस पोज़ में देखे गये हैं कि नहाने का कपड़ा पहन कर समुद्र के किनारे नहा रही हैं वही पहनावा, जिस में तीन चौथाई जिस्म नंगा रहता है और एक चौथाई हिस्साा इस तरह छिपा होता है कि जिस्म के सारे उतार-चढ़ाव कपड़े की सतह पर उभर आते हैं।

क्या किसी क़ुरआन और किसी हदीस से इस शर्मनाक जीवन-शैली के लिए भी जायज़ होने का कोई पहलू निकाला जा सकता है? जब तुम को उस राह पर जाना है, जो साफ़ एलान करके जाओ कि हम इस्लाम से और उसके क़ानून से बग़ावत करना चाहते हैं। यह कैसी घटिया और बद-दयानती है कि रहन-सहन की जिस व्यवस्था और ज़िंदगी गुज़ारने के जिस तरीक़े के उसूल, मक़्सद और अमरी कामों में से एक-एक चीज़ को क़ुरआन हराम कहता है, उसे एलानिया अपनाते हो, पर इस रास्ते पर पहला क़दम क़ुरआन ही का नाम लेकर रखते हो, ताकि दुनिया इस धोखे में रहे कि बाक़ी क़दम भी क़ुरआन ही के मुताबिक़ होंगे।

हमारे सामने का काम

यह नये दौर के 'मुसलमान' का हाल है। अब हमारी बहस के दो पहलू हैं और इस किताब में इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखा जाएगा।

एक यह कि हम को तमाम इंसानों के सामने, वे मुसलमान हों या ग़ैर-मुस्लिम, इस्लामी रहन-सहन की व्यवस्था को खोल-खोल कर बयान करना है और यह बताना है कि इस व्यवस्था में परदे के हुक्म किस लिये दिये गये हैं।

दूसरे यह कि इन नये दौर के 'मुसलमानों' के सामने क़ुरआन व हदीस के हुक्म और पश्चिमी संस्कृति व सभ्यता के नज़रियों और नतीजों, दोनों एक दूसरे के समक्ष रख देने हैं, ताकि यह दोरंगी चाल, जो उन्होंने अपना रखी है, ख़त्म हो और वे शरीफ़ इंसानों की तरह दो शक्लों में से कोई एक शक्ल अपना लें। या तो इस्लामी हुक्मों की पैरवी करें अगर मुसलमान रहना चाहते हैं या इस्लाम से ताल्लुक़ तोड़ लें अगर उन शर्मनाक नतीजों को क़ुबूल करने के लिए तैयार हैं, जिन की ओर रहन-सहन की पच्छिमी व्यवस्था यक़ीनी तौर पर उन को ले जाने वाली है।

विचारधाराएँ

परदे का विरोध जिन कारणों से किया जाता है, वे सिर्फ़ नकारात्मक (छशसरींळींश) ही नहीं हैं, बल्कि असल में एक सकारात्मक बुनियाद पर क़ायम हैं। इनकी बुनियाद सिर्फ़ यहीं नहीं है कि लोग औरतों के घर में रहने और नक़ाब के साथ बाहर निकलने को बेजा क़ैद समझते हैं औंर बस उसे मिटा देना चाहते हैं। असल मामला यह है कि उन की नज़रों के सामने औरत के लिए ज़िंदगी का एक दूसरा नक़्शा है। मर्द, और औरत के ताल्लुक़ात के बारे में वे अपनी एक स्थायी सोच रखते हैं। वे चाहते हैं कि औरतें यह न करें, बल्कि कुछ और करें और परदे पर उन का एतराज़ इस वजह से है कि औरत अपने इस तरह घर बैठे रहने और बन्द हो जाने के साथ न तो ज़िंदगी का वह नक़्शा जमा सकती है, न वह 'कुछ और' कर सकती है। अब हमें देखना चाहिए कि वह 'कुछ और' क्या है, उस की तह में कौन सी सोच और कौन से नियम हैं। वह अपने आप में कहाँ तक ठीक और सही है अमली तौर पर उसके क्या नतीजे निकले हैं। यह ज़ाहिर है कि अगर इन की सोच और नियम को ज्यों का त्यों मान लिया जाए, तब तो परदा और रहन-सहन की वह व्यवस्था, जिसका हिस्सा यह परदा है, वाक़ई सरासर ग़लत क़रार पायेगी, पर हम किसी आलोचना और बिना किसी अक़्ली औ तजुर्बी इम्तिहान के आख़िर क्यों उन की विचारधाराओं को मान लें? क्या सिर्फ़ नया होना या सिर्फ़ यह वाक़िया कि एक चीज़ दुनिया में ज़ोर व शोर से चल रही है इस बात के लिए बिल्कुल काफ़ी है कि आदमी किसी जाँच-पड़ताल के बग़ैर उसके आगे हथियार डाल दे?

अठारहवीं सदी की, आज़ादीं की कल्पना

जैसा कि मैं इससे पहले इशारा कर चुका हूँ, अठारहवीं सदी में जिन दार्शनिकों (फ़लासफ़रों), और विचारकों और साहित्य के विद्वानों ने सुधार की आवाज़ उठायी थी, उन को असल में संस्कृति की एक ऐसी व्यवस्था का सामना करना पड़ रहा था, जिस में तरह-तरह की जकड़बन्दियाँ थीं, जिस में किसी भी पहलू से लोच और लचक नाम को भी न थी, जो ना-मुनासिब रिवाजों, बे-जान तरीक़ों और बुद्धि और प्रकृति के ख़िलाफ़ खुले टकरावों से भरा हुआ था। सदियों की लगातार गिरावट ने उसको तरक़्क़ी के हर रास्ते में भारी पत्थर बना दिया था। एक ओर नयी अक़्ली और अमली जागरूकता मेहनतकश वर्ग में

उभरने और निजी जिद्दोजुह्द से आगे बढ़ने का जोशीला जज़्बा पैदा कर रही थी और दूसरी ओर सरदारों और धर्म के ठेकेदारों का वर्ग उन के ऊपर बैठा परम्पराओं के बंधन की गांठों मज़बूत करने में लगा हुआ था। चर्च से लेकर फ़ौज व अदालत के विभागों तक शाही महलों से लेकर खेतों और वित्तीय लेन-देन की कोठियों तक, ज़िंदगी कर हर भाग और सामूहिक संगठनों की हर संस्था इस तरह काम कर रही थी कि सिर्फ़ पहले से क़ायम किये हुए हक़ों के बल पर कुछ ख़ास वर्ग उन नये उभरने वाले लोगों की मेहनतों और योग्यताओं के फल छीन ले जाते थे, जो मध्यमवर्ग से ताल्लुक़ रखते थे। हर वह कोशिश जो इस स्थिति में सुधार लाने के लिए की जाती थी, सत्ता में बैठे वर्गों के स्वार्थ और जिहालत के मुक़ाबले में नाकाम हो जाती थी। इन कारणों से सुधार और तब्दीली की माँग करने वालों में दिन-ब-दिन अंधा इंक़िलाबी जोश पैदा होता चला गया, यहाँ तक कि आख़िर में इस पूरी सामूहिक व्यवस्था और इस के हर विभाग और हर भाग के ख़िलाफ़ बग़ावत का जज़्बा फैल गया और व्यक्ति की आज़ादी की एक ऐसी सोच जड़ पकड़ गयी, जिस का मक़्सद समाज के मुक़ाबले में को पूरी आज़ादी और छूट दे देना था। कहा जाने लगा कि व्यक्ति को पूरी आज़ादी के साथ अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ हर वह काम करने का हक़ होना चाहिए जो उसे पसन्द आये और हर उस काम से रुक जाने की आज़ादी रहनी चाहिए जो उसे पसन्द न आये। समाज को व्यक्ति की आज़ादी छीन लेने का कोई हक़ नहीं। सरकार की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ यह है कि व्यक्ति के काम करने की आज़ादी को बचाये रखे और समाज-संस्थाऐं सिर्फ़ इस लिए होनी चाहिए कि व्यक्ति को उस के मक़्सद हासिल करने में मदद दें।

आज़ादी की सीमा पार कर जाने वाली यह सोच जो असल में एक ज़ुल्म और सामूहिक व्यवस्था के ख़िलाफ़ गुस्से का नतीजा थी, अपने भीतर एक बड़े-से-बड़े फ़साद और बिगाड़ के कीटाणु रखती थी। जिन लोगों ने इसे शुरू में पेश किया, वे ख़ुद भी इस के नतीजों को न जानते थे, शायद उन की रूह काँप उठती अगर उनके सामने वे नतीजे सामने आ जाते जो ऐसी बे-क़ैद छूट और सरकश आज़ादी का ज़रूरी परिणाम होते हैं। उन्होंने ज़्यादातर उन बे-जा सख़्तियों और ना-मुनासिब बन्धनों को तोड़ने के लिए इसे एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना चाहा था, जो उन के ज़माने के समाज में पाये जाते थे, लेकिन आख़िरकार इस विचार ने पज्छिमी ज़ेहन में जड़ पकड़ ली और पलना-बड़ना शुरू कर दिया।

उन्नीसवीं सदी की तब्दीलियाँ

फ़्रांस का इंक़िलाब आज़ादी के इसी विचार की रोशनी में आया।[८] इस इंक़िलाब में बहुत से पुराने नैतिक सिद्धान्तों और धर्म और संस्कृति के बहुत से नियमों की धज्जियाँ उड़ा दी गयीं और जब उन का उड़ना तरक़्क़ी का ज़रिया साबित हुआ, तो इंक़िलाब-पसन्द दिमाग़ों ने इस से यह नतीजा निकाला कि हर वह सिद्धान्त और नियम जो पहले चला आ रहा है, तरक़्क़ी की राह का रोड़ा है, इसे हटाये बिना क़दम आगे नहीं बढ़ सकता। अतः ईसाई नैतिकता के ग़लत निबमों को तोड़ने के बाद बहुत जल्ली उनकी आलोचना की क़ैंची इंसानी नैतिकता की मूलधारणाओं की ओर मुतवज्जह हो गयी। यह पाकदामनी क्या बला है? यह जवानी पर 'अल्लाह के डर की मुसीबत' आख़िर क्यों डाली गयी हैं? निकाह के बिना अगर कोई किसी से मुहब्बत करे, तो क्या बिगड़ जाता है?

---

8 ì`pŠV H$s AmµOmXr Ho$ Bg {dMma go AmO H$s ny§OrdmXr ì`dñWm, gä`Vm H$s bmoH$Vm§{ÌH$ ì`dñWm Am¡a Z¡{VH$ AmdmamnZ (Licentiousness) n¡Xm hwAm Am¡a bJ^J So‹T gXr Ho$ ^rVa CgZo `yamon Am¡a A_arH$m _| BVZo µOwë_ Tm`o {H$ BÝgm{Z`V Cg Ho$ {˜bmµ\$ ~µJmdV H$aZo na _O~ya hmo J`r, Š`m|{H$ Bg ì`dñWm Zo ì`{ŠV H$mo g_mO-{hV Ho$ {˜bmµ\$ ñdmW© ^ao H$m_ H$m bmBg|g XoH$a g_mO-H$ë`mU H$s hË`m H$a Xr Am¡a gm_y{hH$ OrdZ H$Mo QwH$‹So-QwH$‹So H$a {X`m & gmoe{bµÁ_ Am¡a µ\$m{eµÁ_ XmoZm| Bgr ~µJmdV H$mo µOm{ha H$aVo h¢ & `h Agb _| EH$ B§{Vhm H$m BbmO Xygar B§{Vhm go h¡ & ARmahdt gXr Ho$ ì`{ŠV H$s AmµOmXr H$s gmoM H$s µJbVr `h Wr {H$ dh g_mO H$mo ì`m{ŠV na ~{b XoVm Wm Am¡a Bg ~rgdt gXr Ho$ g_mO H$s gmoM H$s µJbVr `h h¡ {H$ `h ì`{ŠV H$mo g_mO na µHw$~m©Z H$aZm MmhVm h¡ & B§gm{Z`V H$s ^bmB© Ho$ {bE EH$ O§Mr-Vwbr gmoM AmO ^r d¡go hr _m¡OwX Zht h¡ O¡gm{H$ ARmahdt gXr _| Zht Wr &

और निकाह के बाद क्या दिल आदमी के सीने से निकल जाता है कि उससे मुहब्बत करने का हक़ छीन लिया जाए? इस क़िस्म के सवाल नयी इंक़िलाबी सोसाइटी में हर ओर से उठने लगे और ख़ास तौर से रोमानी गिरोह (ठारपींळल डलहेश्र) ने इन को सब से ज़्यादा ज़ोर के साथ उठाया। उन्नीसवीं सदी के शुरू में 'ज़ोरज़साँ' (ऋश्रेीसशीरपव) इस गिरोह की लीडर थी। उस औरत ने ख़ुद उन तमाम नैतिक नियमों को तोड़ा, जिनपर हमेशा से इंसानी शराफ़त और ख़ास तौर से औरत की इज़्ज़त का आधार रहा है। उसने एक शौहर की बीवी होते हुए निकाह के घेरे से बाहर आज़ादी के साथ ताल्लुक़ात क़ायम किये, आख़िरकार शौहर से जुदाई हुई, इसके बाद यह दोस्त पर दोस्त बदलती चली गयी और किसी के साथ वर्ष दो वर्ष से ज़्यादा निबाह न किया। उस की ज़िंदगी में कम से कम छः ऐसे आदमियों के नाम मिलते हैं, जिनके साथ उस की एलानिया और बाक़ायदा आशनाई रही है। उसके इन्हीं दोस्तों में से एक उस की तारीफ़ इन लफ़्ज़ों में करता है। ''ज़ोरज़साँ पहले एक परवाने को पकड़ती है और उसे फूलों के पिंजरे में क़ैद करती है   यह उस की मुहब्बत का दौर होता है, फिर वह अपनेपन से उस को चुभोना शुरू करती है और उसके फड़फड़ाने से आनन्द लेती है   यह उसकी उदासीनता का दौर होता है और देर या सवेर यह दौर भी ज़रूर आता है, फिर वह उसके पर नोच कर और उसके टुकड़े टुकड़े कर के उसे उन परवानों की भीड़ में शामिल कर लेती है, जिनसे वह अपने नावेलों के लिए हीरो का काम लिया करती है।''

फ़्रांसीसी कवि अलफरे मुसे (अश्रषीशव चौीश) भी उसके आशिक़ों में से एक था और आख़िरकार वह उसकी बे-वफ़ाइयों से इतना हताश हुआ कि मरते वक़्त उसने वसीयत की कि ज़ोरज़साँ उसके जनाज़े (शव) पर न आने परये। यह था उस औरत का निजी कैरेक्टर जो कम व बेश तीस साल तक अपनी सरस रचनाओं से फ़्रांस की नयी उभरती नस्लों पर गहरा असर डालती रहीं। अपने नावेल लेलिया (ङशश्रळर) में वह लेलिया की ओर से स्तेतनों को लिखती है

> 'जितना ही ज़्यादा मुझे दुनिया को देखने का मौक़ा मिलता है, मैं महसूस करती जाती हूँ कि मुहब्बत एक ही से होनी चाहिए और उस का दिल पर पूरा क़ब्ज़ा होना चाहिए। .... तमाम मुहब्बतें सही हैं, चाहे वे तेज़-तेज़ हों या शांत, वासना से भरी हुई हों

या रूहानी हों, स्थिर हों या अदलने-बदलने वाली, लोगों को आत्महत्या की ओर ले जाएं या सुख और आनंद की ओर।'

ये उस विचराधारा के मात्र कुछ नमूने हैं, जो १८३३ ई. और लगभग ज़माने में ज़ाहिर की गई थी। तीस-पैतीस साल बाद फ़्रांस में नाटक लिखने वालों, साहित्यकारों और अख़्लाक़ी फ़लासफ़रों की एक दूसरी फ़ौज ज़ाहिर हुई, जिसके सरदार अलेक्ज़ेंडर दुमा (अश्रशुरपवशी ऊँाी) और अलफरेंड नाके (अश्रषीशव छर्ाीशीं) थे। इस लोगों ने सार ज़ोर इस विचार के फैलने में लगा दिया कि आज़ादी और जीने का आनंद इंसान का पैदाइशी हक़ है और इस हक़ पर अख़्लाक़ और कल्चर की जकड़यन्दियाँ लगाना व्यक्ति पर समाज का ज़ुल्म है। इस से पहले व्यक्ति के लिए अमल की आज़ादी की मांग सिर्फ़ मुहब्बत के नाम पर की जाती थी, बाद वालों को निरी भावनाओं पर रखी गयी यह बुनियाद कमज़ोर महसूस हुई, इसलिए उन्होंने व्यक्ति की मनमानी, आवारगी और बे-क़ैद आज़ादी को अक़्ल, फ़लसफ़ा और हिक्मत की मज़बूत बुनियादों पर क़ायम करने की कोशिश की, ताकि नवजवान मर्द और औरतें जो कुछ भी करें, दिल व दिमाग़ के पूरे इत्मीनान के साथ करें और समाज सिर्फ़ यही नहीं कि उनकी के ज़ोर को देख कर दम न मार सके, बल्कि अख़्लाक़ी तौर पर उसे ही, जायज़ और बेहतर समझे।

उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दौर में पौल अदम (झर्ीश्र अवरा), हेनरी बताली (क्षापी इरींरळश्रश्रश) पेरे लूई (झळर्शीीश ङौीळी) और दूसरे बहुत से साहित्यकारों ने अपना तमाम ज़ोर नवजवानों में बेबाक जुरअत पर लगा दिया, ताकि पूरे अख़्लाक़ी विचारों के बचे-खुचे असर से जो झिझक और रुकावट तबियतों में बाक़ी है, वह निकल जाए। चुनांचे पौल अदाम अपनी किताब 'ङर चीरश्रश ऊश ङ' र्चीी' में नवजवानों को उनकी इस जिहालत और हिमाक़त की दिल खोल कर निंदा करता है कि वे जिस लड़की या लड़के से महुब्बत क़ायम करते हैं, उस को झूठ-मूठ यह यक़ीन दिलाने की कोशिश करते हैं कि वे इस पर मर मिटे हैं औंर उस से सच्चा इश्क़ रखते हैं औंर हमेशा उसी के होकर रहेंगे।

पीर लूई ने इन सब से चार क़दम आगे बढ़ कर पूरे ज़ोर के साथ इस बात का एलान किया कि अख़्लाक़ के बन्धन असल में इंसानी ज़ेहन और दिमाग़ी ताक़तों के विकास में रुकावटें डालते हैं, जब तक इन को बिल्कुल तोड़ न दिया जाए और इंसान पूरी आज़ादी के साथ जिस्मानी इज़्ज़तों का आनन्द न ल, न अक़्ल और इल्म का विकास मुम्किन है, न रूहानी और ग़ैर-रूहानी विकास

मुम्किन है। अपनी किताब अहिीवळींश में वह बड़ी तेज़ी के साथ यह साबित करने की कोशिश करता है कि बाबिल, स्कन्दरिया, एथेन्ज़, रूम, वेनिस और संस्कृति व सभ्यता के तमाम दूसरे केन्द्रों की बहार और खड़ी जवानी का ज़माना वह था, जब वहाँ आज़ादी, आवारगी और नफ़्सपरस्ती (ङळलशपींळीेंीपर्शीी) पूरे ज़ोर पर थी, पर जब वहाँ अख़्लाक़ी और क़ानूनी बन्धन इंसानी इच्छाओं पर लगाये, तो इच्छाओं के साथ-साथ आदमी की रूह भी उन्हीं बन्धनों में जकड़ गयी।

यह पीर लूई वह आदमी है, जो अपने दौर में फ़्रांस का नामी साहित्यकार, अपनी ख़ास शैली वाला लेखक और साहित्य की एक ख़ास विचारधारा का रहनुमा था, उसके पीछे कहानीकारों, नाटककारों और अख़्लाक़ी मसलों पर लिखने वालों की एक फ़ौज थी, जो उसके विचारों को फैलाने में लगी हुई थी। उस ने अपने क़लम की पूरी ताक़त नंगेपन और मर्द व औरत की बे-क़ैदी को सराहने में लगा दी।

बीसवीं सदी की तरक़्क़ी

उन्नीसवीं सदी में विचारों की तरक़्क़ी यहाँ तक पहुंच चुकी थी। बीसवीं सदी के शुरू में नये लोग सामने आते हैं, जो अपने पहलों से भी ऊँची उड़ान भरने की कोशिश करते हैं। सन् १९०८ ई. में पेरेवोल्फ़ (झळशीीश थेश्रष) और गैस्तां लेरो (ॠर्रीींप ङर्शीीु) का एक-एक नाटक इस का नमूना निकला, जिस में दो लड़कियाँ अपने जवान भाई के सामने अपने बाप से इस मसले पर बहस करती आती हैं कि उन्हें आज़ादी के साथ मुहब्बत करने का हक़ है और यह कि 'दिल-लगी' के बग़ैर ज़िंदगी गुज़ारना एक जवान लड़की के लिए कितना दुखदायी होता है। एक बेटी का बूढ़ा बाप इस बात पर निंदा करता है कि वह एक नवजवान से नाजायज़ ताल्लुक़ात रखती है। उसके जवाब में बेटी कहती है

> 'मैं तुझे कैसे समझाऊं, तुमने कभी यह समझा ही नहीं कि किसी मर्द को किसी लड़की से, भले ही वह उस की बहन हो या बेटी, यह मांग करने का हक़ नहीं है कि वह मुहब्बत किये बिना बूढ़ी हो जाए।'

महायुद्ध ने इस स्वतंत्रता आन्दोलन को और ज़्यादा बढ़ाया, बल्कि उच्चतम शिखर तक पहुँजा दिया। गर्भाधान-निरोधक आन्दोलन का असर सबसे ज़्यादा फ़्रांस पर हुआ था, लगातार चालीस साल से फ़्रांस की जन्म-दर गिर रही थी। फ़्रांस के सत्तासी ज़िलों में से सिर्फ़ बीस ज़िले ऐसे थे, जिनमें अन्म-

दर मौत से ज़्यादा थी, बाक़ी ६७ ज़िलों में मौत की दर, जन्म की दर से बढ़ी हुई थी। देश के बहुत से हिस्सों का तो यह हाल था कि वहाँ हर सौ बच्चों की पैदाइश के मुक़ाबले में १३०, १४० और १६९ तक मौतों की तायदाद की औसत थी। लड़ाई छिड़ी तो ठीक उस वक़्त, जबकि फ्रांसीसी क़ौम की मौत और ज़िंदगी का फ़ैसला सामने था। फ्रां के हाकिमों को मालूम हुआ कि क़ौम की गोद में लड़ने के क़ाबिल नवजवान बहुत ही कम हैं। अगर इस वक़्त इन छोटी सी तायदाद वाले जवानों को भेंट चढ़ा कर क़ौमी ज़िंदगी की हिफ़ाज़त भी कर ली गयी, तो दुश्मन के दूसरे हमले में बच जाना मुश्किल होगा। इस एहसास ने यकायक तमाम फ्रांस में जन्म-दर बढ़ाने का जुनून पैदा कर दिया और हर ओर से लिखने वालों ने, अख़बार वालों ने, भाषण देने वालों ने और हद यह है कि संजीदा उलेमा और नेताओं तक ने एक आवाज़ होकर पुकारना शुरू किया कि बच्चे जनो और जनवाओ, विवाह की क़ैदों की कुछ परवाह न करो। हर वह कुंवारी लड़की और विधवा, जो वतन के लिए अपने गर्भाशय को ख़ुशी-ख़शी पेश करती है, निंदा की नहीं, इज़्ज़त की हक़दार है। उस ज़माने में आज़ादी-पसन्द लोगों को क़ुदरती शह मिल गयी, इसलिए उन्होंने वक़्त को अपने हक़ में देख कर वे सारे ही विचारफैला दिये, जो शैतान के पास बचे-खुचे रह गये थे।

उस ज़माने का एक मशहूर पत्रकार, जो 'लालियों रिपब्लिकन' (डरश्रेप ठशीलिश्रळलरप) का एडीटर था, इस सबाल पर बहस करते हुए कि 'बलात्कार' आख़िर ख़्यों अपराध है? यों अपने विचार सामने लाता है

> 'ग़रीब लोग जब भूख से मजबूर होकर चोरी और लूट-मार करने पर उतर आये हैं, तो कहा जाता है कि उन को रोटी जुटाओ, लूट-मार आप से आप बन्द हो जायेगी, पर अजीब बात है कि हमदर्दी और भाईचारा की चे भावना देह की एक स्वाभाविक ज़रूरत के मुक़ाबले में उभर आती है, वह दूसरी वैसी ही स्वाभाविक और वैसी ही अहम ज़रूरत, यानी मुहब्बत के लिए क्यों नहीं उभरती? जिस तरह चोरी आम तौर से भूख की ज़्यादती का नतीजा होती है, वैसे ही वह चीज़ जिस का नतीजा बलात्कार और कभी-कभी क़त्ल की शक्ल में निकलता है, उस ज़रूरत के ज़बरदस्त तक़ाज़े से सामने आती है, जो भूख और प्यास से कम स्वाभाविक नहीं है। एक तन्दुरुस्त आदमी, जो सेहतमंद और जवान हो, अपनी वासना को नहीं रोक सकता।

जिस तरह वह अपनी भूख कचे इस वायदे पर नहीं रोक सकता कि अगले हफ़्ते रोटी मिल जाएगी। हमारे शहरों में जहाँ सब कुछ ज़्यादा मौजूद है, एक जवान आदमी की वासना की भूख भी उतनी ही अफ़सोसनाक है, जितनी कि ग़रीब आदमी के पेट की भूख । जिस तरह भूखों को रोटी मुफ़्त बांटी जाती, ऐसे ही दूसरे क़िस्म की भूख से जो लोग मर रहे हैं, उनके लिए भी हमें कोई इन्तिज़ाम करना चाहिए ।'

बस इतना और समझ लीजिश कि यह कोई हंसने-हंसाने वाला लेख नहीं था, पूरी संजीदगी के साथ लिखा गया और संजीदगी ही के साथ फ़्रांस में पढ़ा भी गया।

इसी दौर में पेरिस की फ़ैकल्टी आफ़ मेडिसिन ने एक विद्वान डाक्टर का लेख डाक्ट्रेट की डिग्री देने के लिए पसन्द किया और अपने सरकारी पत्र में उसे छापा, जिस में निम्नलिखित वाक्य भी पाये जाते हैं

'हमें उम्मीद है कि कभी वह भी आयेगा, जब हम बग़ैरर झूठीं हांक और बग़ैर किसी शर्म व हया के यह कह दिया करेंगे कि मुझे बीस साल की उम्र में आतश्क हुई थी, जिस तरह अब बे-तकल्लुफ़ कह देते है कि मुझे ख़ून थूकने की वजह से पहाड़ पर भेज दिया गया था ये रोग ज़िंदगी के आनन्द की क़ीमत हैं । जिसने अपनी जवानी इस तरह बसर की कि इन में से कोई रोग पैदा होने की नौयत न आयी वह एक अधूरा वजूद है । उस ने बुज़दिली या ठंडेपन या मज़हबी फ़रेब की वजह से हर स्वाभाविक काम के करने में ग़फ़लत दिखायी जो उसकी स्वाभाविक ज़िम्मेंदारियों में शायद सब से छोटी ज़िम्मेदारी थी।'

नव-मालथसी आन्दोलन का लिट्रेचर

आगे बड़ने से पहले एक नज़र उन विचारों पर भी डाल लीजिए जो गर्भनिरोधी आन्दोलन के सिलसिले में पेशकिए गये हैं । अठारहवीं सदी के आख़िर में जब अंग्रेज़ अर्थशास्त्री (एलेपोळीीं) मालथस (चरश्रींहीी) ने तेज़ी से बढ़ती आबादी को रोकने के लिए बर्थ-कन्ट्रोल की तज्वीज़ पेश की थी । उस वक़्त उसके सपने में भी यह बात न आयी होगी कि उसकी यही तज्वीज़ एक सदी बाद

व्यभिचार और बेहाई के बढ़ाने में सबसे बढ़ कर मददगार साबित होगी। उसने नयी आबादी की बाढ़ को रोकने के लिए मन पर कन्ट्रोल करने और बड़ी उम्र में में विवाह करने का मश्विरा दिया था, पर उन्नीसवी सदी के आख़िर में जब नव-मालथसी आन्दोलन (छशे चरश्रींहीीळरप चींशाशपीं) उठा, तो उस का बनियादी उसूल यह था कि मन की कामना को आज़ादी के साथ पूरा किया जाए और उसके स्वाभाविक नतीजे यानी औलाद की पैदाइश को साइंसी ज़रियों से रोक दिया जाए। इस चीज़ ने बदकारी के रास्ते से वह आख़िरी रुकावट भी दूर कर दी जो स्वच्छंद वासनामय ताल्लुक़ात रखने में रुकावट बन सकती थी। क्योंकि अब एक औरत, इस डर के बिना अपने आप को एक मर्द के हवाले कर सकती थी कि उस से औलाद होगी और उस पर ज़िम्मेदारियों का बोझ आ पड़ेगा। ग़लत हैं और इंसानियत के लिए सब से बुरे नतीजे पैदा करने वाली हैं।'

इन मुक़दमों पर जिन विचारों की इमारत खड़ी होती हैं, अब तनिक वह भी देखिए

जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का लीडर बबीर (इरलशशश्र) बड़ी बे-तकल्लुफ़ी के साथ लिखता है

'औरत और मर्द आख़िर हैवान ही तो हैं। क्या हैवानों के जोड़ों में विवाह और वह भी हमेशा रहने वाले विवाह का कोई सवाल पैदा हो सकता है?'

डाक्टर डेस्डेल (ऊीवरश्रश) लिखता है

'हमारी तमाम इच्छाओं की तरह मुहब्बत भी एक बदलती रहने वाली चीज़ है। उस को एक तरीक़े के साथ ख़ास कर देना, प्रकृति के क़ानूनों में घट-बढ़ कर देना है। नव-जवाना ख़ास तौर से इस तब्दीली में चाव रखते हैं और उन की यह चाव प्रकृति के उस शानदार तर्क भरी व्यवस्था के मुताबिक़ है, जिस का तक़ाज़ा यही है कि हमारे तजुर्बे नये-नये हों आज़ाद ताल्लुक़ एक अच्छे अख़्लाक़ का पता देता है, इसलिए कि वह प्रकृति के क़ानूनों के ज़्यादा मुताबिक़ है और इसलिए भी वह सीधे-सीधे भावनाओं, एहसास और ये-ग़रज़ मुहब्बत से ज़ाहिर है। जिस झुकचव व चाव से यह ताल्लुक़ बनता है, यह बड़ी अख़्लाक़ी क़द्र व क़ीमत रखता है। यह

बात भला लस व्यापार व कारोबार को मिल सकती है, जो विवाह को हक़ीक़त में पेशा (झौीींळीींळेप) बना देता है।'

देखिए, अब सोच बदल रही है, बल्कि उलट रही है। पहले तो यह कोशिश थी कि 'ज़िना को अख़्लाक़ी तौर पर बुरा समझने का ख़्याल दिलों से निकल जाए और निकाह वाली और रखैल दोनों दर्जे में बराबर हो जाऐं, अब आगे क़दम बढ़ा कर निकाह को बुरा और रख लेने को अख़्लाक़ी बरतरी का दर्जा दिया जा रहा है।

एक और मौक़े पर यही डाक्टर साहब लिखते हैं

'ऐसा उपाय अपनाने की ज़रूरत है, शादी के बिना भी मुहब्बत को एक इज़्ज़त वाली चीज़ बना दिया जाए....यह ख़ुशी की बात है कि तलाक़ की आसानी इस निकाह के तरीक़े को धीरे-धीरे ख़त्म कर रही है, क्योंकि अब दो आदमियों के दर्मियान मिल कर ज़िंदगी गुज़ारने का ऐसा समझौता है जिस को दोनों फ़रीक़ जब चाहें ख़त्म कर सकते हैं। यह दोनों (मर्द-औरत) के बे-रोक-टोक मिलन का एक ही सही तरीक़ा है।'

इंग्लैंड का मशहूर फ़लासफ़र 'मिल' अपनी किताब 'आज़ादी' (जप डळलशीीं) में इस बात पर बड़ा ज़ोर देता है कि ऐसे लोगों को शादी करने से क़ानूनन रोक दिया जाए जो इस बात का सबूत न दे सकें कि वे ज़िंदगी गुज़ारने के लिए काफ़ी साधन रखते हैं, लेकिन जिस वक़्त इंग्लैंड में वेश्याओं की रोक-थाम का सवाल उठा तो इसी विद्वान फ़लासफ़र ने बड़ी सख़्ती से इस का विरोध किया। दलील यह थी कि यह निजी आज़ादी पर हमला है और वर्कर्ज़ की तौहीन है, क्योंकि यह तो उनके साथ बच्चों जैसा सुलूक करना हुआ।

सोचिए, निजी आज़ादी कच एहतराम इसलिए है कि इस से फ़ायदा उठा कर व्याभिचार किया जाए, लेकिन अगर कोई मूर्ख इसी निजी आज़ादी से फ़ायदा उठा कर निकाह करना चाहे, तो वह हरगिज़ इस का हक़दार नहीं है कि उसकी आज़ादी की हिफ़ाज़त की जाए। उसकी आज़ादी में क़ानून का दख़ल न सिर्फ़ यह कि गवारा किया जाए, बल्कि आज़ादीपसन्द फ़लसफ़ी की अन्तरात्मा के नज़दीक वह चीज़ वांछित पसन्दीदा होगी। यहाँ अख़्लाक़ी सोच की तब्दीली

अपनी इंतिहा को पहुँच जाती है। जो ऐब था, वह ख़ुबी बना, जो ख़ुबी थी, वह ऐब बनी।

नतीजे

लिट्रेचर आगे क़दम बढ़ाता है, आम राय उस के पीछे आती है, आख़िर में सामूहिक अख़्लाक़, सोसाइटी के नियम और हुकूमत के क़ानून सब हथियार डालते जाते हैं। जहाँ लगातार डेढ़ सौ वर्ष तक फ़लसफ़ा, इतिहास, कला, नावेल, ड्रामा, थिएटर, आदि, दिमाग़ों को तैयार करने वाले और ज़ेहनों को ढालने वाले तमाम औज़ार मिल कर पूरी ताक़त के साथ एक ही सोच को इंसानी ज़हन के एक-एक हिस्से में बिठाने की कोशिश करते रहे, वहाँ उस सोच से समाज का प्रभावित न होना नामुम्किन है, फिर जिस जगह हुकूमत और सारी सामूहिक संस्थाओं की बुनियाद लोकतंत्र के नियमों पर हो, वहाँ यह भी मुम्किन नहीं हैं कि आम राय की तब्दीली के साथ क़ानूनों में तब्दीली न हो।

औधोगिक क्रान्ति और उस के प्रभाव

संयोगवश ठीक वक़्त पर दूसरी और चीज़ें भी सामने आ गयीं। उसी ज़माने में औद्योगिक क्रान्ति (खपर्वीीीळरश्र ठर्शींश्रींळेप) हुई। उस में आर्थिक जीवन में जो तब्दीलियाँ हुई और रहन-सहन पर उनके जो असर पड़े, वे सब के सब हालात का रुख़ इसी दिशा में फेर देने के लिए तैयार थे, जिन पर यह इंक़िलाबी लिट्रेचर उन्हें उन्हें फेरना चाहता आ। व्यक्ति की आज़ादी के जिस विचार पर पूंचीवादी व्यवस्था की तामीर हुई थी, उस को मशीन की ईजादों और ज़्यादा से ज़्यादा पैदावार (चर्री झीर्वीलींळेप) के मुम्किन होने ने ग़ैर-मामूली ताक़त दे दी। पूंजीपतियों ने बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थान और व्यापरा केन्द्र क़ायम किये। उद्योग और व्यापार के नये केन्द्र धीरे-धीरे शानदार शहर बन गये। देहातों और दूर-दूर के इलाक़ों से लाखों करोड़ों इंसान खिंच-खिंच कर उन शहरों में जमा होते चले गये, ज़िंदगी हद से ज़्यादा बोझ बन गयी। मकान, कपड़ा, खाना और ज़िंदग की दूसरी ज़रूरतों पर आग बरसने लगी। कुछ रहन-सहन में तरक़्क़ी की वजह से और कुछ पूंजीपतियों की कोशिशों से ऐश की अनगिनत नयी चीज़ें भी ज़िंदगी में दाख़िल हो गयीं।

पर पूंजीवादी व्यवस्था ने दौलत का बंटवारा इस तरीक़े पर नहीं किया कि जिन आरामों, लज़्ज़तों और सजावटों को उसने ज़िंदगी की ज़रूरतों में दाख़िल किया था, उन्हें हासिल करने के लिए साधन भी उसी पैमाने पर सब लोगों को

जुटाता। उसने तो आम लोगों को खाने कमाने के इतने साधन भी न दिये कि जिन बड़े-बड़े शहरों में वह उनको घसीट लाया था, वहाँ कम से कम ज़िंदगी की हक़ीक़ी जरूरतें मकान, खाना और कपड़ा भी आसानी से उन को हासिल हो सकतीं। इस का नतीजा यह हुआ कि शौहर पर बीवी और बाप पर औलाद तक भारी बोझ बन गयी। हर आदमी के लिए ख़ुद अपने आप ही को संभालना मुश्किल हो गया, कहाँ यह कि वह दूसरे मुताल्लिक़ लोगों का बोझ उठाये। आर्थिक परिस्थितियों ने मजबूर कर दिया कि हर आदमी कमानो वाला आदमी बन जाये, कुंवारी और शादीशुदा और बेवा सब ही क़िस्म की औरतों को धीरे-धीरे रोज़ी कमाने के लिए निकल आना पड़ा। फिर जब मर्दों और औरतों के मेल-जोल और ताल्लुक़ के मौक़े ज़्यादा बढ़े और उस के स्वाभाविक नतीजे ज़ाहिर होने लगे, हर व्यक्ति की निजी आज़ादी के विचार और अख़्लाक़ हे इसी नये फ़लसफ़े ने आगे बढ़ कर बापों और बेटियों, बहनों और भाइयों, शौहरों और बीवियों, सब को इत्मीनान दिलाया कि कुछ घबराने की बात नहीं। जो कुछ हो रहा है, यह गियावट नहीं, उठान (एरपलळरींळेप) है, यह बद-अख़्लाक़ी नहीं, ज़िंदगी का सही आनन्द है। यह गढ़ा जिसमें पूंजीपति तुम्हें फेंक रहा है, दोज़ख़ नहीं, जन्नत है जन्नत!

पूंजीवादी स्वार्थ

और मामला यहीं तक नहीं रहा। व्याक्ति की आज़ादी की इस सोच पर जिस पूंजीवादी व्यवस्था की दिवार उठायी गयी थी, उसने व्यक्ति को हर मुम्किन तरीक़े से दौलत कमाने का, बिना किसी शर्त और बिना किसी हद बन्दी के इजाज़तनामा दे दिया और अख़्लाक़ के नये फ़लसफ़ों ने हर उस तरीक़े को हलाल और पाक ठहराया, जिससे दौलत कमाई जा सकती हो, भले ही एक आदमी की दौलतमंदी कितने ही लोगों की तबाही का नतीजा हो। इस तरह रहन-सहन की सारी व्यवस्था ऐसे तरीक़े पर बनी जो समूह के मुक़ाबले में हर पहलू से व्यक्ति की हिमायत थी। स्वार्थी लोगों के लिए समाज पर डाका डालने के सारे रास्ते खुल गये। उन्होंने तमाम इंसानी कमज़ोरियों कचे चुन-चुन कर ताका और उन्हें अपने स्वार्थों के लिए इस्तेमाल (एुश्रिळीं) करन के नित नये तरीक़े अपनाने शुरू किये। एक आदमी उठता है और वह अपनी जेब भरने के लिए लोगों को शराबनोशी की लानत में फंसाता चला जाता है, कोई नहीं जो समाज को इस प्लेग के चूहे से बचाये। दूसरा उठता है और वह सूदख़ोरी का जाल दुनिया में

फैला देता है, कोई नहीं जो इस जोंक से लोगों की ज़िंदगी के ख़ुद की हिफ़ाज़त करे, बल्कि सारे क़ानून उसी जोंक के स्वार्थ की हिफ़ाज़त कर रहे हैं, ताकि कोई उस से ख़ुन की एक बूंद भी न बचा सके। तीसरा उठता है और वह जुए के अजीब तरीक़े निकालता है, यहाँ तक कि व्यापार के भी किसी विभाग को जुए से ख़ाली नहीं छोड़ता। कोई नहीं जो इस भून देने वाले तप से इंसान के खाने-पीने की ज़िंदगी की हिफ़ाज़त करे।

व्यक्ति ख़ुदसरी और मनमानी के इस नापाक दौर में नामुम्किन था कि स्वार्थी लोगों की नज़र इंसान की इस बड़ी और भारी कमज़ोरी वासना पर न पड़ती, जिस को भड़का कर बहुत कुछ फ़ायदा उठाया जा सकता था, अत: उससे भी काम लिया गया और इतना काम लिया गया, जितना लेना मुम्किन था। थिएटरों में, नाचघरों में, और फ़िल्मसाज़ी के केन्द्रों में सारे कारोबार की धुरी ही यह बनी कि ख़ूरसूरत औरतों की सेवाऐं हासिल की जाऐं। उनको ज़्यादा नंगा और ज़्यादा से ज़्यादा भड़काने वाली शक्ल में लोगों के सामने लाया जाए और और इस तरह लोगों की वासना की प्यास को ज़्यादा से ज़्यादा उभार कर उन की जेबों पर डाका डाला जाए। कुछ दूसरे लोगों ने औरतों को किराये पर चलाने का इन्तिज़ाम किया और वेश्याओं के पेशे को तरक़्क़ी देकर एक बहुत ज़्यादा संगठित इन्टरनेशनल व्यापार की हद तक पहुँचा दिया। कुछ और लोगों ने पहनावे के नये वासनामय और नंगे फ़ैशन निकाले और ख़ूबसूरत औरतों को इस लिए मुक़र्रर किया कि वे इन्हें पहन कर समाज में फिरें, ताकि नवजवान मर्द ज़्यादा से ज़्यादा उन की ओर खिंचें और नवजवान लड़कियों में इन पहनावों के पहनने के शौक़ पैदा हों और इस तरह उस पहनावे कचे ईजाद करने वाले का व्यापार फले-फूले। कुछ और लोगों ने नंगी तस्वीरें और गंदे लेख छापने कचे रुपया खींचने का ज़रिया बनाया और इस तरह आम लोगों को अख़्लाक़ी कोड़ में डाल कर ख़ुद अपनी जेबें भरनी शुरू कर दीं। धीरे-धीरे नौबत यहाँ तक पहुँची कि मुश्किल ही से व्यापार का कोई विभाग ऐसा बाक़ी रह गया जिस में वासना का कोई हिस्सा शामिल न हो। किसी व्यापारी इश्तिहार को देख लीजिए, और की नंगी या आी नंगी तस्वीर उसका ज़रूरी हिस्सा होगी, गोया अशलील औरत के बग़ैर अब कोई इश्तिहार ही नहीं हो सकता।

होटल, रेस्तरां, शोरूम, कोई जगह आप को ऐसी न मिलेगी, जहाँ औरत इस मक़सद से न रखी गयी हो कि मर्द उसकी ओर खिंच कर आयें। ग़रीब

सोसाटी जिस की हिफ़ाज़त करने वाला कोई नहीं, सिर्फ़ एक ही तरीक़े से अपने हित की हिफ़ाज़त कर सकती थी कि ख़ुद अपनी अख़्लाक़ी सोचों से इन हमलों को रोकती और इस वासना को अपने ऊपर सवार न होने देती, पर पूंजीवादी व्यवस्था ऐसी कच्ची बुनियादों पर नहीं खड़ी हुई थी कि यों उसके हमलों को रोका जा सकता। उस के साथ एक मुकम्मल फ़लसफ़ा और एक ज़बरदस्त शैतानी फ़ौज लिट्रेचर भी तो था, जो साथ-साथ अख़्लाक़ी सोचों को भी तबाह करती जा रहा था। क़ातिल का कमाल यही है कि जिसे क़त्ल करने जाए, उसे राज़ी-ख़ुशी से क़त्ल होने के लिए तैयार कर दे।

लोकतांत्रिक राजनीति की व्यवस्था

मुसीबत इतने पर भी ख़त्म न हुई। साथ ही आज़ादी की इसी सोच ने पच्छिम में लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था को जन्म दिया, जो इस अख़्लाक़ी इंकिलाब के पूरा करने में एक ताक़तवर ज़रिया बन गया।

आज के लोकतंत्र की असल बुनियाद यह है कि लोग ख़ुद अपने हाकिम और अपने लिए क़ानून बनाने वाले हैं, जैसे क़ानून चाहें, अपने लिए बनायें और जिन क़ानूनों को पसन्द न करें, उन में जैसी चाहें कमी-बुशी करें। उन के ऊपर कोई ऐसी उच्चतर सत्ता नहीं जो इंसानी कमज़ोरियों से पाक हो और जिस की हिदायत व रहनुमाई के आगे सर झुका कर इंसान इधर-उधर भटकने से बच सकता हो। उन के पास कोई ऐसा बुनियादी क़ानून नहीं, जो अटल हो और इंसान की पकड़ से बाहर हो और जिस के उसूलों को घटाने-बढ़ाने योग्य न माना जाए। उनके लिए कोई ऐसा मानदण्ड नहीं है, जो सही और ग़लत में फ़र्क़ करने की कसौटी हो और इंसानी ख़्वाहिशों के साथ बदलने वाला न हो, बल्कि मुस्तक़िल और दृढ़ हो। इस तरह लोकतंत्र की नयी सोच ने इंसान को बिल्कुल ख़ुद-मुख़्तार और ग़ैरज़िम्मेदार मान कर के आप ही अपनी शरीअत बनाने वाला बना दिया और हर क़िस्म का क़ानून बनाने की धुरी सिर्फ़ आम राय पर रख दी।

अब यह ज़ाहिर है कि जहाँ सामूहिक जीवन के सारे क़ानून आम राय के अधीन हों, और जहाँ हुकूमत इसी आज के लोकतंत्र के ख़ुदा की ग़ुलाम हो, वहाँ क़ानून और सियासत की ताक़तें किसी तरह समाज को अख़्लाक़ी बिगाड़ से नहीं बचा सकतीं, बल्कि बचाना य़ा मतलब, आख़िरकार वे ख़ुद उस को तबाह करने में मददगार बन कर रहेंगी। आम राय की हर तब्दीली के साथ क़ानून भी

बदलता चला जाएगा। ज्यों ज्यों लोगों की सोच बदलेगी, क़ानून के नियम और क़ानून भी उन के मुताबिक़ ढलते जाऐंगे। सत्य, ख़ैर और भलाई का कोई मानदण्ड इस के सिवा न होगा कि वोट किस तरफ़ ज़्यादा हैं। एक तज्वीज़, चाहे वह अपने आप में कितनी ही नापाक क्यों न हो, अगर आम लोगों में इतनी मक़्बूलियत हासिल कर चुकी है कि वह १०० में से ५१ वोट हासिल कर सकती है, तो उसको तज्वीज़ के दर्जे से तअक़्क़ी करके क़ानून बन जाने से कोई चीज़ रोक नहीं सकती। इस की सबसे बुरी मिसाल वह है जो नाज़ी दौर से पहले जर्मनी में ज़ाहिर हुई। जर्मनी में एक साहब डाक्टर मागनोस हर्शफिल्ड (चरसपीी क्ळीीहषळशश्रव) हैं, जो दुनिया की थीश्रव ङशरसींश ेष डर्शुीरश्र ठशषीा (वर्ल्ड लीग आफ़ सेक्सुअल रिफ़ार्म) के प्रेसीडेंट रह चुके हैं, उन्होंने पुरुषों के बीच सहलिंगीय संबंध के हक़ में छ: साल तक प्रचार किया। आख़िरकार लोकतंत्र का ख़ुदा इस हराम को हलाल कर देने पर तैयार हो गया और जर्मन पार्लियामेंट ने बहुमत से तै कर दिया कि अब यह काम जुर्म नहीं हैं, बस शर्त यह है कि दोनों की रज़ामंदी से यह काम किया जाए और जिस के साथ यह काम हो, उसके नाबालिग़ होने की शक्ल में उसका वली (सरपरस्त) इस संबंध को मान्यता देने की रस्म अदा करे।

क़ानून लोकतंत्र के इस ख़ुदा की इबादत में कुछ थोड़ा सुस्त पड़ जाता है। उस के हुक्मों की पावन्दी करता तो है, पर सुस्ती और काहिली के साथ करता है। यह कमी जो बन्दगी के पूरा करने में बाक़ी रह गयी है, इसे हुकूमत के इन्तिज़ामी कलपुर्ज़े पूरी कर देते हैं। जो लोग इन लोकतांत्रिक हुकूमतों के कारोबार चलाते हैं, वे क़ानून से पहले उस लिट्रेचर और अख़्लाक़ी फ़लसफ़ों कच और उन आम रुझानों का असर क़ुबूल कर लेते हैं, जो उन के आस-पास फ़ले हुए होते हैं। उन की मेहरबानी से हर वह बद-अख़्लाक़ी सरकारी मान्यता पा लेती है, जिस का चलन आम हो गया हो। जिन चीज़ों से क़ानूनन अभी तक रोका गया हो, उनके मामले में अमली तौर पर पुलिस और अदालतें क़ानून लागू करने से बचती हैं और लस तरह वे मानो हलाल के दर्जे में हो जाती हैं।

मिसाल के तौर पर गर्भ-पात (हमल का गिराना) ही को ले लीजिए, जो पच्छिमी क़ानूनों में अब भी हराम है, पर कोई मुल्क ऐसा नहीं है, जहाँ खुल्लम खुल्ला और ज़्यादा से ज़्यादा गर्भ-पात न हो रहा हो। इंग्लैंड में कम अन्दाज़े के मुताबिक़ हर साल ९० सज़ार हमल गिराये जाते हैं। शादीशुदा औरतों में से कम से कम २५ फ़ीसदी ऐसी हैं, जो या तो ख़ुद हमल गिरा लेती हैं या किसी माहिर

की मदद लेती हैं। ग़ैर शादीशुदा औरतों में गर्भ-पात सब से ज़्यादा होता है। कहीं-कहीं तो बाक़ायदा गर्भ-पात क्लब क़ायम हैं, जिन की औरतें हफ़्तेवार फ़स अदा करती हैं, ताकि मौक़ा पेश आने पर गर्भ-पात के एक माहिर की सेवाएं हासिल की जा सकें। लन्दन में ऐसे बहुत-से नर्सिंग होम हैं, जहाँ ज़्यादातर ऐसी मरीज़ औरतें होती हैं, जिन्होंने गर्भ-पात कराया होता है।[९] इस के बावजुद इंग्लैंड के क़ानून की किताब में गर्भ-पात अभी तक हराम है।

हक़ीक़ते और गवाहियाँ

अब मै ज़रा विस्तार में जाकर बताना चाहता हूँ कि ये तीनों चीज़ें, यानी आज के अख़्लाक़ी सिद्धान्त, रहन-सहन की पूंजीवादी व्यवस्था और सियासत (राजनीति) की लोकतांत्रिक व्यवस्था, मिल-जुल कर सामूहिक अख़्लाक़ और मर्द व औरत के वासनापूर्ण ताल्लुक़ात पर कितना असर डाल रही हैं और उनसे सच में किस तरह के नतीजे निकल रहे हैं। चूँकि इस वक़्त मैंने ज़्यादातर फ़्रांस देश की बात की है, जहाँ से यह आन्दोलन शुरू हुआ था, इसलिए मैं सब से पहले फ़्रांस ही को गवाही में पेश करूगा।[१०]

अख़्लाक़ी एहसास की कमी

पिछले अध्याय में जिन सोचों का ज़िक्र किया जा चुकच है, उन के प्रचार का पहला असर यह हुआ कि औरत-मर्द के यौन संबंध के मामले में लोगों का अख़्लाक़ी एहसास कम होता चला गया। शर्म व हया और ग़ैरत दिन-ब-दिन ख़त्म होती चली गयी, निकाह और बदकारी का फ़र्क़ दिलों से निकल गया और

---

9 `o ~mV| àmoµ\o$ga OyS Zo AnZr {H$Vm~ Guide to Modern Wickedness _| ~`mZ H$s h¢, Omo hmb hr _| Nnr hwB© h¡ &
(A~ ^maV H$s pñW{V ^r Eogr hr hmo MwH$s h¡ àH$meH$)

10 _¡Zo µÁ`mXmVa `o OmZH$m[a`m± EH$ _ehya \«$m§grgr gmoe{bñQ {dÛmZ nmob ã`moamo (Poul Bureau) H$s {H$Vm~ 'Towards Moral Bankruptcy' go hm{gb H$s h¢, Omo gZ² 1925 B©. _| bÝXZ go Nnr h¡ &

व्याचिार एक ऐसी मालूम चीज़ बन गयी, जिसे अब कोई ऐब या बुराई का काम समझा ही नहीं जाता कि उस को छिपाने की कोशिश की जाए।

उन्नीसवीं सदी के बीच, बल्कि आख़िर तक आम फ़्रांसीसियों की अख़्लाक़ी सोच में सिर्फ़ इतनी तब्दीली हुई थी कि मर्दों के लिए व्यभिचार को बिल्कुल एक मामूली स्वाभाविक चीज़ समझा जाता था। माँ-बाप अपने नवजवान लड़कों की आवारगी को (बशर्ते कि वे गुप्त रोगों या अदालती कार्रवाई की वजह न बन जाएं) ख़ुशी से गवारा करते थे, बल्कि अक्षर वह भौतिक हैसियत से फ़ायदेमंद हो, तो उस पर ख़ुश भी होते थे। उन के ख़्याल में किसी मर्द का किसी औरत से निकाह ताल्लुक़ रखना कोई ऐब का काम न था। ऐसी मिसालें भी मिलती हैं कि मां-बाप ने अपने नवजवान लड़कों पर ख़ुद ज़ोर दिया कि किसी असरदार या मालदार और से ताल्पुक़ात क़ायम करके अपना भविष्य चमकायें, लेकिन उस वक़्त तक औरत के मामले में सोच इस से अलग थी। औरत की आबरू हर हाल में एक क़ीमती चीज़ समझी जाती थी। वही माँ-बाप जो अपने लड़के आवारापन को जवानी की तरंग समझ कर गवारा करते थे, अपनी लड़की के दामन पर कोई दाग़ देखना गवारा न करते थे। बदकार मर्द जिस तरह बे-ऐब समझता जाता था, बदकार और उस तरह बे-ऐब न समझी जाती थी। पेशेवर बदकार औरत का ज़िक्र जिस ज़िल्लत के साथ किया जाता था, उस के पास जाने वाले मर्द के हिस्से में वह ज़िल्लत न आती थी। इसी तरह औरत-मर्द के आपसी रिश्ते में भी औरत और मर्द की अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारी बराबर न थी। शौहर की बदकारी गवारा कर ली जाती थी, पर बीवी की बदकारी एक ख़राब से ख़राब ऐब समझी जाती थी।

बीसवीं सदी के शुरू तक पहुँचते-पहुँचते यह स्थिति बदल गयी। औरतों की आज़ादी के आन्दोलन ने औरत औ मर्द की अख़्लाक़ी बराबरी का जो सूर फूंका था, उसका असर यह हुआ कि लोग आम तौर पर औरत की बदकारी को भी उसी तरह ग़ैर-ऐबदार समझने लगे, जिस तरह मर्द की बदकारी को समझते थे और निकाह के बिना किसी मर्द से ताल्लुक़ रखना औरत के लिए भी कोई ऐसा काम न रह, सि से उस की शराफ़त और इज़्ज़त पर बट्टा लगता हो। पोल ब्योरो लिखता है

फ़्रांसीसी नैतिक मूल्यों में ज़िना के ग़ैर-ऐबदार होने की शक्ल का अन्दाज़ा इस से किया जा सकता है कि १९१८ ई. में एक स्कूल की टीचर कुंवारी होने के

बावजूद हामिला (गर्भवती) पायी गयी। एजूकेशन डिपार्टमेंट में कुछ पुराने ख़्याल के लोग भी मौजूद थे, उन्होंने ज़रा शोर मचाया, इस पर इज़्ज़तदारों की एक मंडली शिछा विभाग में हाज़िर हुई और उस की नीचे लिखी दलीलें इतनी वज़नी पायी गयीं कि टीचर का मामला ख़त्म कर दिया गया

१. किसी की प्राइवेट से लोगों को क्या मतलब?

२. और फि उसने कौन-सा जुर्म किया है?

३. और क्या निकाह के बिना माँ बनना ज़्यादा लोकतांत्रिक तरीक़ा नहीं है?

फ़्रांसीसी फ़ौज में सिपाहियों को जो तालीम दी जाती है, उसमें दूसरे ज़रूरी मसअ्लों यह भी सिखाया जाता है कि गुप्त रोगों से बचे रहने और हमल रोकने के क्या तरीक़े हैं? गोया यह बात तो मान ली गयी है कि हर सिपाही ज़िना ज़रूर करेगा।

महायुद्ध से कुछ मुद्दत पहले फ़्रांस में एक एजेंसी इस उसूल पर क़ायम की गयी कि हर औरत, चाहे वह अपने हालात, माहौल, माली स्थिति और आदी अख़्लाक़ी चाल-चलन के एतबार से कैसी ही हो, बहरहाल एक नये तजुर्बे के लिए तैयार की जा सकती है। जो साहब किसी औरत से ताल्लुक़ पैदा करना चाहते हों, वे बस इतना कष्ट उठाएं कि उन लेडी साहिबा कच अता-पता बता दें और २५ फ़्रांक शुरू की फ़ीस के तौर पर दाख़िल कर दें। इस के बाद उन साहिबा को मामले पर राज़ी कर लेना एजेंसी काम काम है। इस एजेंसी का रजिस्टर देखने से मालूम हुआ कि फ़्रेंच सोसाइटी का कोई वर्ग ऐसा न था, जिस की भारी तायदाद ने उस से 'बिज़नेस' न किया हो और यह कारोबार हुकूमत से भी छिपा हुआ न था। (पोल ब्यूरो, पृ. १६)

इस अख़्लाक़ी गिरावट की इंतिहा यह है कि

'फ़्रांस के कुछ ज़िलों में और बड़े शहरो की घनी आबादी रखने वाले हिस्सों में क़रीबी रिश्तेदारों के दर्मियान, यहाँ तक कि बाप और बेटी और भाई और बहन के दर्मियान वासना भरे ताल्लुक़ात का पाया जाना भी अब काई अनोखी बात नहीं रही है।'[११]

---

[11] `h 95 df© nyd© Ho$ ‹\«$m§g H$s pñW{V h¡ & dV©_mZ² H$mb _| ^maV ^r nmíMmV² Xoem| H$s

बेहयाई का फैलाव

महायुद्ध से पहले मोस्यो ब्यूलो (च. ईींश्रीं) फ़्रांस के अटार्नी जनरल ने अपनी रिपोर्ट में इन औरतों की तायदाद ५ लाख बतायी थी, जो अपने देह को किराये पर चलाती हैं, पर वहाँ की वेश्यावृत्ति को भारत की पेशेवर रंडियों पर न विचार कर लीजिए। वह शिष्ट, सभ्य और तरक़्क़ीयाफ़्ता देश है। उस के सब काम शिष्टता, संगठन और बड़े पैमाने पर होते हैं। वहाँ इस पेशे में इश्तिहारी कला से पूरा काम लिया जाता है। अख़बार, चित्रित पोस्ट कार्ड, टेलीफ़ोन और निजी दावतनामे, ग़रज़ तमाम सभ्य तरीक़े गाहकों के ध्यान को खींचने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं और आम लोगों की अन्तरात्मा इस पर कोई मलामत नहीं करती, बल्कि इस कारोबार में जिन औरतों को ज़्यादा 'तरक़्क़ी' मिलती है, वे कभी-कभी देश की राजनीति, कारोबार, और 'बड़े लोगों में' काफ़ी प्रभावशाली बन जाती है, वही 'तरक़्क़ी' जो कभी युनानी संस्कृति में इस क़िस्म की औरतों को नसीब हुई थी।

फ़्रेंच सिनेट के एक मेम्बर मोस्यो फ़रदिनान द्रीफ़्यू (च. ऋशीवळपरपव ऊीशूषीी) ने अब से कुछ साल पहले बयान किया था कि वेश्याओं का पेशा अब सिर्फ़ एक व्यक्ति का निजी काम नहीं रहा है, बल्कि उसकी एजेंसी से जो भारी माली फ़ायदे हासिल होते हैं, उन की वजह से अब यह एक व्यापार (ङ्गीळपर्शीी) और एक संगठित इंडस्ट्री (जीसरपळीशव ळपर्वीीीू) बन गया है। इस का ''कच्चामाल'' (ठु चरींशीळरश्र) मुहय्या करने वाले एजेंट अलग हैं। इसकी बाक़ायदा मंडियां मौजूद हैं, जवान लड़कियाँ और कमसिन बच्चियाँवह तिजारती माल हैं, आयत-निर्यात होता है और दस साल से कम उम्र की लड़कियों की मांग ज़्यादा है।

पोल ब्योरो लिखता है

---

loUr _| Am MwH$M h¡ & ì`m{^Mma d ~bmËH$ma Ho$ g§X^© _| `h ~mV Iwb H$a gm_Zo Am MwH$s h¡ {H$ A{YH$Va KQZmE§ ~mn-~oQr, ^mB©-~hZ, MMm-^VrOr, _m_m-^mÝOr Am{X ""{ZH$QV_ g§~§{Y`m|" Ho$ ~rM KQ ahr h¢$& àH$meH$

'यह एक ज़बरदस्त व्यवस्था है, जो पूरे संगठित तरीक़े से तंख़्वाहयाफ़्ता ओहदेदारों और कार्यकर्त्ताओं के साथ चल रहा है। पब्लिशर्स और क़लमकारों (झीलश्रळलळीीि), भाषण कर्ता, विधार्थी और मिडवाइव्स (चळवुळींशी) और कारोबारी घुमक्कड़ इस में बाक़ायदा नौकर हैं और इश्तिहार और प्रदर्शन के आधुनिक इस्तेमाल किये जाते हैं।'

बेहयाई के इन अड्डों के अलावा होटलों, चायख़ानों और नाचघरों में एलानिया वेश्याओं के पेशे का कारोबार हो रहा है और कभी-कभी यह पशुता भारी ज़ुल्म और संगदिली की हद तक पहुंच जाता है। सन् १९१२ ई. में एक बार पूर्वी फ़्रांस के एक मेयर (चरूी) को दख़ल देकर एक ऐसी लड़की की जान-बख़्शी करानी पड़ी थी, जिस दिन भर में ४७ गाहकों से पाला पड़ चुका था और भी गाहक तैयार खड़े थे।

तिजारती वेश्यालयों के अलावा 'ख़ैराती' (उहरीळींरलश्रश) वेश्यालयों की एक नयी क़िस्म पैदा करने का श्रेय महायुद्ध कचे मिला। लड़ाई के ज़माने में वतन से मुहब्बत करने वाली जिन औरतों ने फ़्रांस की धरती की हिफ़ाज़त करने वाले बहादुरों की 'सेवा' की थी और जिन को इस 'सेवा' के बदले में बे-बाप के बच्चे मिल गये थे, उन्हें थरी-ऋेव्र-चींहशीी होने का सम्मान मिल गया यह एक ऐसा अछूता विचार है कि हिंदी में इस का अनुवाद नहीं किया जा सकता। ये औरते संगठित शक्ल में वेश्याओं का काम करने लगीं और उन की 'मदद' करना दुष्कर्मियों के लिए एक अख़्लाक़ी काम बन गया। बड़े-बड़े दैनिक समाचारपत्रों और ख़ास तौर से फ़्रांस के दो मशहूर तस्वीर वाले मैग्ज़ीनों 'फंतासियों' (ऋरपींरीळे) और 'लावी पारेज़ियां' (डरींळश झरीळीळशपपश) ने उन की ओर 'कर्मी पुरुषों'का ध्यान खींचने की ख़िदमत सब से बढ़ कर अंजाम दी। सन् १९१७ के शुरू में इस आख़िरी अख़बार का सिर्फ़ एक नम्बर ऐसी औरतों के १९९ इश्तिहारों से भरा पड़ा था।

वासना और बेहयाई की वबा

बेहयाई का यह फैलाव और मक़्बूलियत जिस कामोत्तेजना का नतीजा है, वह लिट्रेचर, तस्वीरें, सिनेमा, थिएटर, नाच, नंगेपन और बेहयाई के आम दृश्यों से ज़ाहिर होता है।

स्वार्थी पूंजीपतियों की एक पूरी फ़ौज है, जो हर मुम्किन तदबीर से आम लोगों की वासना भरी प्यास को भड़काने में लगी हुई है और इस ज़रिए से अपने कारोबार कचे बढ़ा रही है दैनिक और साप्ताहिक अख़बार, तस्वीरी मैग्ज़ीनें, अर्धमासिक व मासिक पत्रिकाएं अत्यंत गन्दे लेख और शर्मनाक तस्वीरें छापते हैं, क्योंकि गाहकों की तादाद बढ़ाने का यह सब से ज़्यादा प्रभावकारी ज़रिया है। इस काम में ऊँचे दर्जे का ज़ेहन, कला और महारत लगायी जाती है, ताकि शिकार किसी तरह से भी बच कर न जा सके । इनके अलावा औरत-मर्द ताल्लुक़ात पर अत्यंत गंदा साहित्य पम्फलेटों और किताबों की शक्ल में निकलता रहता है, जिन कच हाल यह है कि एक-एक एडीशन पचास-पचास हज़ार की तादाद में छपता हैर और कभी-कभी साठ-साठ एडीशनों तक नौबतइ पहुँच जाती है।

कुछ पब्लिशिंग हाउस तो सिर्फ़ इसी साहित्य के लिए ख़ास हैं । बहुत से लेखक ऐसे हैं जो इसी ज़रिए से शोहरत और इज़्ज़त के मर्तबे पर पहुँचते हैं । अब किसी गन्दी किताब का लिखना किसी के लिए बे-इज़्ज़ती नहीं है, बल्कि अगर किताब मक़्बूल हो जाये, तो ऐसे लिखने वाले फ़्रेंच एकेडमी के मेम्बर या कम से कम क्रोए दान्योर (उीळु उहपपर्शी) के हक़दार हो जाते हैं ।

हुकुमत इन तमाम बे-शर्मियों और भड़काने वाली चीज़ों को ठंढे दिल से देखती रहती है । कभी कोई बहुत ही ज़्यादा शर्मनाक चीज़ छप गयी, तो पुलिस ने अनचाहे मन से चालान कर दिया, पर ऊपर खुले दिल वाली अदालतें बैठी हैं, जिन के इंसाफ़ वाले दरबार से इस क़िस्म के मुज्रिमों को सिर्फ़ तंबीह कर के छोड़ दिया जाता है, क्योंकि जो लोग अदालत की कुर्सियों पर विराजमान होते हैं, उन में से ज़्यादातर इस लिट्रेचर से आनंद लेते रहते हैं और अदालत के कुछ ज़िम्मेदारों का अपना क़लम वासना भरे गन्दे लिट्रेचर की तैयारी में लगा रहता है। संयोग से अगर कोई मजिस्ट्रेट 'पुराने ख़्याल' का निकल आया और उस से 'बे-इंसाफ़ी' का डर हुआ तो बड़े-बड़े लेखक और नामवर क़लमकार मिल-जुल कर और एक होकर इस मामले में दख़ल देते हैं और ज़ोर-शोर से अख़बारों में लिखा जाता है कि आर्ट और लिट्रेचर की तरक़्क़ी के लिए आज़ाद फ़िज़ा चाहिए। अंधेरे दौर की-सी ज़ेहनियत के साथ अख़्लाक़ी पाबन्दियां लगाने कच मतलब तो यह है कि कलाओं का गला घोंट दिया जाए।

और यह कलाओं की तरक़्क़ी होती किस-किस तरह है? उस में एक बड़ा हिस्सा इन नंगी तस्वीरों और अमली तस्वीरों का है, जिन के अलबम लाखों की तायदाद में तैयार किये जाते हैं और न सिर्फ़ बाज़ारों, होटलों और चायख़ानों में, बल्कि स्कूलों और कालेजों तक में फैलाये जाते हैं । एमील पोरीस (एाळश्रश झेंीलळी) ने बेहयाई रोकने वाली संस्था की दूसरी खुली सभा में जो रिपोर्ट पेश की है, उस में वह लिखता है

> 'ये गन्दे फ़ोटोग्राफ़ लोगों के हवास (इन्द्रियों) को ज़बरदस्त तरीक़े पर भड़का देते हैं और अपने बद-क़िस्मत ख़रीदारों को ऐसे-ऐसे जुर्मों पर उभारते हैं, जिन्हें सोच कर रौंगटे खड़े हो जाते हैं। लड़कों और लड़कियों पर उन का घातक असर बयान से बाहर है। बहुत से स्कूल और कालेज इन्ही की वजह से अख़्लाक़ी और जिस्मानी हैसियत से बर्बाद हो चुके हैं, ख़ास तौर पर लड़कियों के लिए तो कोई चीज़ इस से ज़्यादा तबाही फैलाने वाली नहीं हो सकती।'

और इन्हीं ललित कलाओं की सेवा थिएटर, सिनेमा, म्यूजिक हाल और काफ़ी हाउसों के मनारंजन से हो रही है। नाटक, जिन के खेलों को फ्रेंच सोसाइटी के ऊंचे घराने दिलचस्पी के साथ देखते हैं और जिन के लिखने वालों और कामियाब नक़ल करने वालों पर मुबारकबाद के फूल निछावर किये जाते हैं, बिना किसी को छोड़े सब के सब वासना के शिकार हैं और उन की ख़ास बात बस यह है कि अख़्लाक़ी हैसियत में जो कैरेक्टर सब से बुरा हो सकता है, उस को उन में आदर्श और नमूने की चीज़ बना कर पेश किया जाता है। पोल ब्योरो के कहने के मुताबिक़

'ती-चालीस साल से हमारे नाटककार ज़िंदगी का जो नक़्शा पेश कर रहे हैं, उन को देख कर अगर कोई आदमी हमारी समाजी ज़िंदगी का अन्दाज़ा लगाना चाहे, तो वह बस समझेगा कि हमारी सोसाइटी में जितने शादीशुदा जोड़े हैं, सब ख़ियानत करनेवाले और घरों की वफ़ादारी से ख़ाली हैं। शौहर या मुर्ख होता है या बीवी की जान की मुसीबत और बीवी की सबसे अच्छी ख़ूबी अगर कोई है, तो वह यह कि हर वक़्त शौहर से मन टूटा रहे और इधर-उधर दिल लगाने के लिए तैयार रहे।'

ऊंची सोसाइटी के थिएटरों का जब यह हाल है तो आम लोगों के थिएटरों और मनोरंजन-साधनों का जो कुछ रंग होगा, उस का अन्दाज़ा आसानी से किया जा सकता है। सबसे बुरे आवारा क़िस्म के लोग, जिस भाषा, जिन अदाओं और जिन नंगी चीज़ों से मुतमइन हो सकते हैं, वे बग़ैर किसी शर्म व हया और लाग-लपेट के वहां पेश कर दी जाती हैं और आम लोगों को इश्तिहारों के ज़रिए से यह यक़ीन दिलाया जाता है कि तुम्हारी वासना की प्यास जो-जो कुछ मांगती है, वह सब यहां हाज़िर है 'हमारा स्टेज तकल्लुफ़ से ख़ाली और सच्चाइयों को मानने वाला (ठशरश्रळीींळल) है।'

अमील पोरेसी ने अपनी रिपोर्ट में बहुत-सी मिसालें पेश की हैं, जो अलग-अलग मन बहलावे की जगहों में गश्त लगा कर जमा की गयी थीं। नामों को उसने अक्षरों के परदे में छिपा दिया है

ब में ऐक्ट्रेस के गीत, बात-चीत (चेपेश्रेर्सीशी) और एक्टिंग हद दर्जा गंदे थे और परदे पर जो बैकग्राउंड पेश किया गया था, वह बस औरत-मर्द मिलन के आख़िरी दर्जों तक पहुंचते-पहुंचते रह गया था। एक हज़ार से ज़्यादा तमाशाई मौजूद थे, जिन में सज्चन भी दिखायो पड़ रहे थे और सभी मस्त होकर तारीफ़ें कर रहे थे।

न में छोटे-छोटे गीत और उन के दर्मियाद छोटे-छोटे बोल और उनके साथ अदाएं और ऐक्टिंग, बेशर्मी की इंतिहा को पहुंचे हुए थे। बच्चे और कमसिन नवजवान अपने माँ-बाप के साथ बैठे हुए इस तमाशे को देख रहे थे और पूरे जोश और उमंग के साथ हर बड़ी से बड़ी बेशर्मी पर तालियाँ बजाते थे।

ल में हाज़िर लोगों की भीड़ ने पांच बार शोर मचा कर एक ऐसी ऐक्ट्रेस को दोहराने पर मजबूर किया, जो अपने ऐक्ट को एक हद दर्जे गन्दे गीत पर ख़त्म करती थी।

र में मौजूद लोगों ने ऐसी ही एक और ऐक्ट्रेस से बार-बार फ़रमाइश कर के एक बहुत ही गन्दी चीज़ को दोहरवाया, आख़िर उस ने बिगड़ कर कहा, 'तुम कितने बेशर्म लोग हो, देखते नहीं हो कि हाल में बच्चे भी मौजूद हैं।' यह कह कर वह ऐक्ट पूरा किये बग़ैर हट गयी। चीज़ इतनी गन्दी थी कि वह आदी मुज्रिमा भी उस के दोहराने को सहन न कर सकती थी।

ज़ में तमाशा ख़त्म होने के बाद ऐक्ट्रेसों पर लाट्री डाली गयी। लाट्री के टिकट ख़ुद ऐक्ट्रेसें दस-दस सानेतम[१२] में बेच रही थीं। जिस आदमी के नाम जो ऐक्ट्रेस निकल आती, वह उस रात के लिए उस की थी।'

पोल ब्योरो लिखता है कि कभी-कभी स्टेज पर बिल्कुल नंगी औरतें तक पेश कर दी जाती हैं, जिन के जिस्म पर कपड़े के नाम का एक तार भी नहीं होता। अडोल्फ ब्रेसों (अवेश्रहिश ईीळरी) ने एक बार फ़्रांस के मशहूर अख़बार 'टाम' (ढर्ाीि) में इन चीज़ों का विरोध करते हुए लिखा कि अब बस इतनी कसर रह गयी

[12] bJ^J 12 n¡go$&

है कि स्टेज पर औरत-मर्द के संभाग का दृश्य सामने ला दिया जाए और सच यह है कि 'आर्ट' पूरा भी उसी वक़्त होगा।

गर्भ रोकने के आंदोलन से और यौन-विज्ञान (डर्शुीरश्र डलळशपलश) के तथाकथित लिट्रेचर ने भी बेहयाई फैलाने और लोगों के अख़्लाक़ बिगाड़ने में बड़ा हिस्सा लिया है। जन-सभाओं में तक़रीरों और मैजिक लैटर्न के ज़रिए और कितायों में चित्रों व व्याख्याओं के ज़रिए से हमल और उस से मुताल्लिक़ चीज़ों और हमल रोकने वाले सामानों के इस्तेमाल के तरीक़े को इतने विस्तार से बताया जाता है, जिनके बाद कोई चीज़ ज़ाहिर करने के लिए बाक़ी नहीं रह जाती। इसी तरह सेक्स साइंस की किताबों में देह की व्याख्या से लेकर आख़िर तक सेक्स-संबंधी मामलों के किसी पहलू को भी रोशनी में लाये बग़ैर नहीं छोड़ा जाता। देखने में तो इन सब चीज़ों पर ज्ञान और साइंस का ग़िलाफ़ चढ़ा दिया गया है, ताकि ये एतराज़ से परे हो जाएं, बल्कि और ज़्यादा तरक़्क़ी यह हुई कि इन चीज़ों को 'जन-सेवा' कहा जाता है और वजह यह बतायी जाती है कि हम तो लोगों को सेक्स के मामलों में ग़लतियाँ करने से बचाना चाहते हैं, पर सच तो यह है कि इस लिट्रेचर और इस तालीम के प्रचार ने औरतों, मर्दों और कमसिन नवजवानों में ज़बरदस्त बेहयाई पैदा कर दी है। इस की वजह से आज यह नौबत आ गयी है कि एक लड़की जो स्कूल में तालीम पाती है और अभी पूरी तरह बालिग़ भी नहीं हुई है, सेक्स के मामलों में ऐसी जानकारियाँ रखती है जो कभी शादीशुदा जोड़ों को भी नहीं थी और यही हाल नाबालिग़ का भी है, उन की भावनाएं वक़्त से पहले जाग जाती हैं, उन में सेक्स के तजुर्बों का शौक़ पैदा हो जाता है। पूरी जवानी को पहुंचने से पहले ही वे अपने आप को वासनाओं के चंगुल में दे देते हैं। निकाह के लिए तचे उम्र की हद मुक़र्रर की गयी है, पर इन तजुर्बों के लिए हद मुक़र्रर नहीं, बारह-तेरह साल की उम्र ही से इन कच सिलसिला शुरू हो जाता है।[१३]

---

13 AË`§V "gä`' Am¡a "CÝZV' Xoem| Ho$, ñHy$bm| Ho $gd}jU go gm_Zo AmE Am±H$‹Sm| Ho$ AZwgma 20dr gXr Ho$ A§V VH$, hmB© ñHy$b ñVa H$s ~hwg§»` ~m{bH$mE§ `m¡Z-{H«$`m H$m AZw^d H$a MwH$s hmoVr h¢$& J^©{ZamoYH$ à`ËZm| Ho$ ~mdOyX CZ _| go Hw$N J^©dVr ^r hmo OmVr

क़ौमी तबाही की निशानियाँ

जहाँ बद-अख़्लाक़ी, नफ़्सपरस्ती और जिस्मानी लज़्ज़तों की बन्दगी इस हद को पहुंच चुकी हो, जहां औरत, मर्द, जवान, बुढ़े सब के सब ऐशपरस्ती में इतने डूब गये हों और जहां इंसान को कामोत्तेजना ने यों आपे से बाहर कर दिया हो, ऐसी जगह उन सारी बातों आ जाना, जो किसी क़ौम की तबाही की वजह बनते हैं, बिल्कुल एक स्वाभाविक बात है। लोग इसीश क़िस्म की गिरावट की शिकार क़ौमों को तरक़्क़ी की चोटी पर पहुंची हुई देख कर यह नतीजा निकालते हैं कि उन की ऐशपरस्ती उनकी तरक़्क़ी में रुकावट नहीं है, वल्कि मददगार है और यह कि एक क़ौम की इंतिहाई तरक़्क़ी कच ज़माना वह होता है, जब वह लज़्ज़तपरस्ती के उच्चतम शिखर पर होती है, लेकिन यह एक सरासर ग़लत नतीजा निकालना है, जहाँ बनाव और बिगाड़ की ताक़तें मिली-जुली काम कर रही हों और कुल मिला कर बनाव कच पहलू उभरा हुआ नज़र आता हो, वहाँ बिगाड़ वाली ताक़तों को भी बनाव की वजहों में गिन लेना सिर्फ़ उस आदमी का काम हो सकता है, जिस की अक़्ल मारी गयी हो।

मिसाल के तौर पर अगर एक होशियार व्यापारी अपने ज़ेहन, मेहनत और तजुर्बे की वजह से लाखों रुपए कमा रहा है और उस के साथ वह शराब, जुआ और ऐशपरस्ती में फंसा है, तो आप कितनी बड़ी ग़लती करेंगे, अक्षर उस की ज़िंदगी के इन दोनों पहलुओं को उस ख़शहाली और तरक़्क़ी की वजहों में गिन लेंगे। असल में उस की ख़ूबियों का पहला योग उस के बनाव की वजह है और दूसरा योग उस के बिगाड़ में लगा हुआ है। पहले योग की ताक़त से अगर इमारत क़ायम है, तो इस का मतलब यह नहीं है कि दूसरे योग की बिगाड़ वाली ताक़त अपना असर नहीं कर रही है।

ज़रा गहरी नज़र से देखिए तो पता चलेगा कि बिगाड़ पैदा करने वाली` ताक़तें उस के दिमाग़ और जिस्म की ताक़तों का बराबर खाये जा रही हैं, उस की मेहनत से कमाई हुई दौलत पर डाका डाल रही हैं और उसको धीरे-धीरे तबाह करने के साथ हर वक़्त इस ताक में लगी हुई हैं कि कब अन्तिम हमले का मौक़ा

---

h¢$& {\$a J^©nmV H$m ì`mnH$ àmdYmZ CÝH|$ Bg _wgr~V go {ZOmV {XbmVm h¡$&
àHmeH

मिले और एक ही वार में उसकच ख़ात्मा कर दें। जुए का शैतान किसी बुरी घड़ी में उस की उम्र भर की कमाई को एक सिकेंड में ग़ारत कर सकता है और वह उस घड़ी के इंतिज़ार में बैठा है। शराब का शैतान वक़्त आने पर उससे बद-मस्ती में एक ग़लती करा सकता है, जो एक ही झटके में उसे दीवालिया बना कर छोड़ दे और वह भी घात म लगा हुआ है। बदकारी का शैतान भी उस घड़ी का इन्तिज़ार कर रहा है, जब वह उसे क़त्ल या आत्महत्या या किसी और अचानक तबाही में फंसा दे। अन्दाज़ा नहीं किया जा सकता कि अगर वह इन शैतानों के चंगुल में फसा हुआ न होता, तो उस की तरक़्क़ी का क्या हाल होता।

ऐसा ही मामला एक क़ौम का भी है। वह बनाव वाली ताक़तों के बल पर तरक़्क़ी करती है, पर सही रहनुमाई न मिलने की वजह से तरक़्क़ी की तरफ़ कुछ ही क़दम बढ़ाने के बाद ख़ुद अपने बिगाड़ के सामान जुटाने लगती है। कुछ मुद्दत तक बनाव की ताक़तें अपने ज़ोर में उसे आगे बढ़ाये लिए जाती हैं, पर उसके साथ-साथ बिगाड़ की ताक़तें उस की ज़िंदगी की ताक़त को भीतर ही भीतर घुन की तरह खाती रहती हैं, यहां तक कि आख़िरकार उसे इतना खोखला कर के रख देती हैं कि एक ही तेज़ झटका उस के बड़प्पन के महल को क्षणों में धराशायी कर सकता है। यहाँ हम थोड़े से शब्दों में तबाही की उन बड़ी-बड़ी वज्हों को बयान करेंगे जो फ़्रेंच क़ौम के रहने-सहने की ग़लत व्यवस्था ने उस के लिए पैदा की हैं।

शारीरिक शक्तियों का ह्रास

जिस्मानी ताक़तों की गिरावट और काम-वासना के इस तरह छा जाने का पहला नतीजा या हुआ है कि फ्रांसीसियों की जिस्मानी ताक़त धीरे-धीरे जवाब देती चली जा रही है। हमेशा भड़कती रहनेवाली भावनाओं ने उन की इन्द्रियों को कमज़ोर कर दिया है। मन की ग़ुलामी ने उनमें सहनशक्ति कम ही बाक़ी छोड़ी है और गुप्त रोगों की ज़्यादती ने उनकी सेहत पर बड़ा घातक असर डाला है। बीसवीं सदी के शुरू से यह हाल है कि फ्रांस के फ़ौजी हाकिमों को मजबूर हो कर हर कुछ साल के बाद नये रंगरूटों के लिए जिस्मानी योग्यता के पैमाने को घटा देना पड़ता है, क्योंकि योग्यता का जो पैमाना पहले था, उस पैमाने के नव-जवान क़ौम में कम से कमतर होते जा रहे हैं।

यह एक भरोसेमंद पैमाना है, जो थरमामीटर की तरह क़रीब-क़रीब विश्वसनीय रूप में बताता है कि फ्रेंच क़ौम की जिस्मानी ताक़तें कितनी तेज़ी के साथ धीरे-धीरे घट रही हैं। गुप्त रोग इस गिरावट की वज्हों में से एक अहम वजह हैं। महायुद्ध के शुरू के दो सालों में जिन सिपाहियों को सिर्फ़ आतशक की वजह से छुट्टी देकर अस्पतालों में भेजना पड़ा, उन की तादाद ७५००० थी। सिर्फ़ एक औरसत दर्जे की फ़ौजी छावनी में एक ही वक़्त में २४२ सिपाही इस रोग के शिकार हुए।

एक ओर उस वक़्त की नज़ाकत देखिए कि फ्रांसीसी क़ौम की मौत और ज़िंदगी का फ़ैसला सामने था और उस के ज़िंदा रहने के लिए एक-एक सिपाही को जान लड़ा देने की ज़रूरत थी, एक-एक फ्रांस क़ीमती था और वक़्त, ताक़त, साधन हर चीज़ की ज़्यादा से ज़्यादा मात्रा रक्षा में ख़र्च होने की ज़रूरत थी। दूसरी ओर उस क़ौम के जवानों को देखिए कि कितने हज़ार लोग इस ऐशपरस्ती की वजह से, न सिर्फ़ कई-कई महीनों के लिए बेकार हुए, बल्कि उन्होंने अपनी क़ौम की दौलत और साधनों को भी उस आड़े वक़्त में अपने इलाज पर बर्बाद कराया।

इस आर्ट के एक फ्रांसीसी माहिर डाक्टर लेरीड (ऊी. डरीळववश) का बयान है कि फ्रांस में हर साल सिर्फ़ आतशक से और उस के पैदा किये हुए रोगों की वजह से ३० हज़ार जानें बर्बाद होती हैं और टी. बी. के बाद यह रोग सबसे ज़्यादा

तबाहियों की वजह होता है। यह सिर्फ़ एक गुप्त रोग का हाल है, जब कि गुप्त रोगों की सूची में सिर्फ़ यही रोगों की सूची में सिर्फ़ यही एक रोग नहीं है[१४]।

पारिवारिक व्यवस्था की बर्बादी

इस बे रोक टोक, स्वच्छंद काम-वासना और आवारापन के इस आम रिवाज ने दूसरी बड़ी मुसीबत जो फ्रांसीसी रहन-सहन पर ला डाली है, वह परिवार और उस की व्यवस्था की तबाही है। परिवार की व्यवस्था औरत और मर्द के उस स्थायी और मज़बूत ताल्लुक़ से बनती है, जिस का नाम निकाह (विवाह) है। इस ताल्लुक़ की वजह से व्यक्तियों की ज़िंदगी में सुकून, ठहराव और मज़बूती पैदा होती है। यही चीज़ उन के निज के जीवन को सामूहिक जीवन में तब्दील करती है और बिखराव के रुझानों को दबा कर उन्हें संस्कृति की सेवा करने वाला बना देती है। इसी व्यवस्था के दायरे में मुहब्बत, अम्न और त्याग का वह पाकीज़ा माहौल पैदा होता है, जिस में नयी नस्लें सही अख़्लाक़, सही उठान और चरित्र-निर्माण के साथ पल-बढ़ सकती हैं, लेकिन जहाँ औरतों और मर्दों के ज़ेहन से निकाह और उस के मक़सद का विचार बिल्कुल ही निकल गया हो और जहाँ सेक्स के ताल्लुक़ का कोई मक़सद वासना की आग बुझा लेने के सिवा लोगों के ज़ेहन में न हो और जहाँ मौज-मस्ती के रसिया मर्दों और औरतों के जत्थ के भौरों की तरह फूल-फूल का रस लेते फिरते हों, वहाँ यह व्यवस्था न क़ायम हो सकती है, न क़ायम रह सकती है। वहाँ औरतों और मर्दों में यह क्षमता ही बाक़ी नहीं रहती कि दाम्पत्य जीवन की ज़िम्मेदारियां उस के अधिकार और कर्त्तव्य और उसके अख़्लाक़ी वन्धनों का बोझ सहार सकें। उन की इस ज़ेहनी और अख़्लाक़ी स्थिति का असर यह होता है कि हर नस्ल की तर्बियत पहली नस्ल से बदतर होती है। व्यक्तियों में स्वार्थ और मनमानापन इतना भर

---

[14] gyµOmH$ Am¡a AmVeH$ O¡go nwamZo JwßV amoJm| Ho$ A{V[aº$ dV©_mZ H$mb H$mo "ES²g' (Aids) O¡go ˜m¡µ\$ZmH$ Am¡a KmVH$ _µO© H$m gm_Zm h¡ & Bg Ho$ {ZdmaU Ho$ CnMmam| _| go g~ go à{gÕ CnMma `h ~Vm`m OmVm h¡ {H$ (ì`{^Mma d ~XH$mar Mmho {OVZr H$s{OE bo{H$Z) gmdYmZr d gVH©$Vm ~aVVo hwE "H$ÊSmo_' H$m Cn`moJ H$aZm Mm{hE & àH$meH$

जाता है कि संस्कृति के जुड़े तार बिखरने लगते हैं। लोगों में रंगा-रंगी व अस्थिरता की आदत ऐसी पक्की हो जाती है कि क़ौमी सियासत और उस के अन्तर्राष्ट्रीय रवैए में भी कोई ठहराव बाक़ी नहीं रहता। घर का सुकून न मिलने की वजह से व्यक्तियों की ज़िंदगियां बहुत ज़्यादा कड़वी होती जाती हैं और एक हमेशा बाक़ी रहनेवाली बेचैनी उन को किसी कल चैन नहीं लेने देती। यह दुनिया की जहन्नम का अज़ाब है, जिसे अपनी मूर्खतापूर्ण लज़्ज़त-तलबी के जुनून में ख़ुद मोल लेता है।

फ़्रांस में सालान सात-आठ प्रति हज़ार की औसत मर्दों और औरतों की है जो पति-पत्नी के रिश्ते में जुड़ते हैं। यह औसत ख़ुद इतनी कम है कि इसे देख कर आसानी के साथ अन्दाज़ा किया जा सकता है कि आबादी का कितना बड़ा हिस्सा ग़ै-शादीशुदा है। फिर इतनी थोड़ी तादाद जो निकाह करती है, उस में भी बहुत कम लोग ऐसे हैं जो पाकदामन रहने और पाक अख़्लाक़ी ज़िंदगी गुज़ारने की नीयत से निकाह करते हैं। इस एक मक़्सद के सिवा हर दूसरा मुम्किन मक़्सद उन की नज़रों में होता है, यहां तक कि निकाह से पहले एक औरत ने जो बच्चा नाजायज़ तौर पर जना है, निकाह कर के उस को जायज़ बच्चा बना देना भी एक मकसद होता है। चुनांचे पोल ब्योरो लिखता है कि

> फ़्रांस के काम पेशा लोगों (थीज़ळपस उश्रींशी) में यह आम रिवाज है कि निकाह से पहले और अपने होनेवाले शौहर से इस बात का वायदा ले लेती है कि वह उस बच्चे को अपना मानेगा। सन् १९१७ ई. में सेन (डळशप) की दीवानी अदालत के सामने एक औरत ने बयान दिया कि, 'मैंने शादी वक़्त ही अपने शौहर को यह बात कह दी थी कि इस शादी से मेरा मक्सद सिर्फ़ यह है कि निकाह से पहले हमारे आज़ादाना ताल्लुक़ात से जो बच्चे पैदा हुए हैं, उन को 'हलाली' बना दिया जाए। बाक़ी रही यह बात कि मैं उस के साथ बीवी बन कर ज़िंदगी गुज़ारूं, तो यह न उस वक़्त मेरे ज़ेहन में थी, न अब है। इसी वजह से जिस दिन शादी हुई, उसी दि साढ़े पांच बजे मैं अपने शौहर से अलग हो गयी और आज तक उस से नहीं मिली, क्योंकि मैं बीवी बन कर ज़िम्मेदारी निभाने की कोई नीयत न रखती थी।'
>
> (पृष्ठ ५५)

पेरिस के एक मशहूर कालेज के प्रिंसिपल ने ब्योरो से बयान किया कि

‘आमतौर से नवजवान निकाह में सिर्फ़ यह मक़सद निगाहों में रखते हैं कि घर पर भी एक रखैल की सेवाएं हासिल करलें। दस-बारह साल तक वे हर ओर आज़ादाना मज़े चखते फिरते हैं, फिर एक वक़्त आता है कि इस क़िस्म की बे-ढंगी आवारा ज़िंदगी से थक कर वे एक औरत से शादी कर लेते हैं, ताकि घर का आराम भी किसी हद तक मिले और आज़ादी के साथ ज़ौक़ पूरा करने का आनन्द भी मिलता रहे।’ (पृष्ठ ५६)

‘फ़्रांस में शादीशुदा लागों का ज़िनाकार होना क़तई तौर पर कोई ऐब की बात नहीं है, न ही निन्दा किये जानेवाला कोई काम है। अगर कोई आदमी अपनी बीवी के अलावा कोई मुस्तक़िल रखैल रखता है, तो वह उसे छिपाने की ज़रूरत नहीं समझता और समाज इस काम को बिल्कुल एक मामूली और होते रहने वाली बात समझता है।’ (पृष्ठ ७६-७७)

इन हालात में निकाह का रिश्ता इतना बोदा हो कर रह गया है कि बात-बात में टूट जाता है। कभी-कभी उस बेचारे की उम्र कुछ घन्टों से आगे नहीं बढ़ पाती। चुनांचे फ्रांस के एक ऐसे इज़्ज़तदार आदमी ने, जो कई बार मंत्री रह चुका था, अपनी शादी से सिर्फ़ पांच घंटे के बाद अपनी बीवी से तलाक़ हासिल कर ली। ऐसी छोटी-छोटी बातें तलाक़ की वज्हें बन जाती हैं, जिन्हें सुन कर हंसी आती है। जैसे, दोनों में से किसी एक का सोते में ख़र्राटे लेना या कुत्ते को पसन्द न करना। सेन की दीवानी अदालत ने एक बार सिर्फ़ एक तारीख़ में २६४ निकाह ख़त्म कराये। सन् १८४४ ई. में जब तलाक़ का नया क़ानून पास हुआ था, चार हज़ार तलाक़ें हुई थीं। सन् १९०० ई. में यह तादाद साढ़े सात हज़ार तक पहुंची। सन् १८१३ ई. में १६ हज़ार और सन् १८३१ ई. में २१ हज़ार।

नस्ल-हत्या

बच्चों की परवरिश एक ऊंचे दर्जे का अख़्लाक़ी काम है, जो नफ़्स के कन्ट्रोल, ख़्वाहिशों की क़ुर्बानी, तक्लीफ़ों और मेहनतों की बर्दाश्त और माल का त्याग चाहता है। स्वार्थी नफ़्स परस्त लोग, जिन पर अपने निज का और जानवरपने का पूरा क़ब्ज़ा हो चुका हो, इस ख़िदमत की अन्जामदेही के लिए किसी राज़ी नहीं हो सकते।

साठ-सत्तर वर्ष फ़्रांस में गर्भ-रोधक आन्दोलन का ज़बरदस्त प्रचार हो रहा है। इस आन्दोलन की वजह से फ़्रांस की धरती के एक-एक मर्द और एक-एक औरत तक को उन उपायों की जानकारी करा दी गयी है, जिन से आदमी इस क़ाबिल हो सकता है कि औरत-मर्द ताल्लुक़ और उस की लज़्ज़तों से फ़ायदा उठाने के बावजूद इस काम के क़ुदरती नतीजे यानी गर्भ ठहरने और नस्ल बढ़ने से बच सके। कोई शहर, क़स्बा या गांव ऐसा नहीं है, जहां गर्भ रोकने वाली दवाएं और सामान खुलेआम न बिकते हों और हर आदमी उन को हासिल न कर सकता हो। इसका नतीजा यह है कि आज़ाद वासना की भूख मिटानेवाले लोग ही नहीं, बल्कि शादीशुदा जोड़े भी ज़्यादा से ज़्यादा इन उपायों कचे इस्तेमाल करते हैं और हर औरत व मर्द की यह ख़्वाहिश है कि उनके बीच बच्चा, यानी वह बला, जो तमाम आनन्द व स्वाद को किरकिरा कर देती है, किसी तरह बाधा न डालने पाये। फ़्रांस की जन्म-दर जिस रफ़्तार से घट रही है, उस को देख कर माहिरों ने अन्दाज़ा लगाया है कि गर्भ रोकने की इस आम वबा की वजह से कम से कम ६ लाख इन्सानों की पैदाइश हर साल रोक दी जाती है।

इन उपायों के बावजूद जो गर्भ ठहर जाते हैं, उनको गिरा कर बर्बाद कर दिया जाता है और इस तरह तीन-चार लाख इन्सान दुनिया में आने से रोक दिये जाते हैं। गर्भ गिराने का काम सिर्फ़ ग़ैर शादीशुदा औरतें ही नहीं करातीं, बल्कि शादीशुदा भी इस मामले में उन के बराबर हैं। अख़्लाक़ी तौर पर इस काम को एतराज़ के क़ाबिल नहीं समझा जाता, बल्कि औरत का हक़ समझा जाता है। क़ानून ने इस की ओर से अमलन आंखें बंद कर ली हैं, अगरचे क़ानून की किताब में यह काम अभी तक जुर्म है, लेकिन अमलन हाल यह है कि ३०० में से मुश्किल से एक के चालान की नौबत आती है और फिर जिन का चालान होता है, उन में से ७५ फ़ीसदी अदालत में जाकर छूट जाते हैं। हमल गिराने के डाक्टरी उपाय इतने आसान और जनता में इतने जाने-पहचाने कर दिये गये हैं कि अक्सर औरतें ख़ुद ही गिरा लेती हैं और जो नहीं कर सकतीं, उन्हें डाक्टरी मदद हासिल करने में परेशानी नहीं होती। पेट के बच्चे को हलाक़ कर देना उन लोगों के लिए बिल्कुल ऐसा हो गया हैं, जैसे किसी दर्द करने वाले दांत को निकलवा देना।

इस ज़ेहनियत ने मां की फ़ितरत को इतना तोड़-मरोड़ दिया है कि वह माँ, जिस की मुहब्बत दुनिया हमेशा से मुहब्बत की सब से ऊंची मंज़िल समझती रही

है आज अपनी औलाद से बेज़ार है, उसे अपने बच्चों से नफ़रत ही नहीं, बल्कि वह उस की दुश्मन हो गयी है। हमल रोकने और गिराने से बच-बचा कर भी जो बच्चे दुनिया में आ जाते हैं, उन के साथ सख़्त बेरहमी का बर्ताव किया जाता है। इस दर्दनाक हक़ीक़त को पोल ब्योरो ने शब्दों में बयान किया है

> 'आये दिन अख़बारों में उन बच्चों की मुसीबतों की ख़बरें छपती रहती हैं, जिन पर उन के माँ-बाप सख़्त से सख़्त ज़ुल्म ढाते हैं। अख़बारों में तो सिर्फ़ ग़ैर-मामूली बातों का ज़िक्र आता है पर लोग जानते हैं कि आमतौर से इन बच्चों अनचाहे मेहमानों के साथ कैसा बे-रहमी का बर्ताव किया जाता है, जिन से उनके माँ-बाप के दिल सिर्फ़ इस लिए टूट जाते हैं कि इन कम-बख़्तों ने आ कर ज़िंदगी का सारा मज़ा ख़राब कर दिया। जुरअत की कमी हमल गिराने में रुकावट बनती है और इस तरह इन मासूमों को आने का मौक़ा मिल जाता है, पर जब ये आ जाते हैं, तो उन्हें इस की पूरी सज़ा भुगतनी पड़ती है।' (पृष्ठ ७४)
>
> 'यह बेज़ारी और नफ़रत यहाँ तक पहुंचती है कि एक बार एक औरत का छः माह का बच्चा मर गया, तो वह उस की लाश को सामने रख कर ख़ुशी के मारे नाची और गायी और अपने पड़ोसियों स कहती फिरी कि अब हम दूसरा बच्चा न होने देंगे। मुझे और मेरे शौहर को इस बच्चे की मौत से बड़ा इत्मीनान मिला है। देखो तो सही, एक बच्चा क्या चीज़ होता है। हर वक़्त रों-रों करता रहता है, गन्दगी फैलाता है और आदमी को कभी उससे निजात नसीब नहीं होती।'
> (पृष्ठ ७५)

इससे भी ज़्यादा दर्दनाक बात यह है कि बच्चों को क़त्ल करने की वबा तेज़ी के साथ बढ़ रही है और फ्रांसीसी सरकार और उस की अदालतें गर्भ गिराने की तरह इस भारी जुर्म के मामले में भी कमाल दर्जे की ग़फ़लत बरत रही हैं, जैसे फ़रवरी सन् १९१८ ई. में लायर (डेळीश) की अदालत में दो लड़कियां अपने बच्चों के क़त्ल के इलज़ाम में पेश हुई और बरी कर दी गयीं। इनमें से एक लड़की ने अपने बच्चे को पानी में डुबो कर हलाक किया था। उसके एक बच्चे को उसके रिश्तेदार पहले से पाल-पोस रहे थे और दूसरे बच्चे को भी वे पालने

के लिए तैयार थे, पर उस ने फिर भी यही फ़ैसला किया था कि इस ग़रीब को जीता न छोड़े। अदालत की राय उस का जुर्म माफ़ कर दिये जाने के क़ाबिल था।

दूसरी लड़की ने अपने बच्चे को गला घोंट कर मारा और जब गला घोंटने पर भी उस में कुछ जान बाक़ी रह गयी, तो दीवार पर मार कर उस का सि फोड़ दिया। यह औरत भी फ्रांसीसी जजों और ज्युरी की निगाह में क़िसास (सज़ा) की हक़दार न ठहरी। इसी १९१८ ई. को मार्च के महीने में सेन की अदालत के सामने एक नाचने वाली औरत पेश हुई, जिस ने अपने बच्चे की ज़ुबान हलक़ से खींचने की कोशिश की। फिर उस का सिर फोड़ा और उसका गला काट डाला। यह औरत भी जज और ज्युरी, किसी की राय में मुज्रिम न थी।

जो क़ौम अपनी नस्ल की दुश्मनी में इस हद को पहुंच जाए, उसे दुनिया का कोई उपाय मिटने से नहीं बचा सकता। नयी नस्लों की पैदाइश एक क़ौम के वजूद के बराबर बाक़ी रहने के लिए ज़रूरी है। अगर कोई है। अगर कोई क़ौम अपनी नस्ल की दुश्मन है, तो असल में वह अपनी आप दुश्मन है, आत्महत्या कर रही है, कोई बाहरी दुश्मन न हो, तब भी वह आप अपनी हस्ती को मिटा देने के लिए काफ़ी है। जैसा कि पहले बयान कर चुका हूँ, फ्रांस की जन्म-दर पिछले साठ साल से बराबर गिरती जा रही है, किसी साल मौत की दर, जन्म की दर से बढ़ जाती है, किसी साल दोनों बराबर रहती हैं और जन्म की दर मौत की दर के मुक़ाबले में मुश्किल से एक फ़ी हज़ार ज़्यादा होती है।

दूसरी ओर फ्रांस की धरती पर ग़ैर-क़ौमों के मुहाजिरोंा की तादाद हर दिन बढ़ रही है। चुनांचे १९३१ ई. में फ्रांस की ४ करोड़ १८ लाख की आबादी में २८ लाख९० हज़ार ग़ैर-क़ौमों के लोग थे। यही हालत अगर जारी रही, तो बीसवीं सदी के ख़त्म पर फ्रांसीसी क़ौम अजब नहीं कि ख़ुद अपने वतन में कम तायदाद होकर रह जाए।

यह अंजाम है उन सोचों क, जिन की वजह से औतों की आज़ादी और नारी-अधिकार-आन्दोलन उन्नीसवीं सदी के शुरू में उठाया गया था।

कुछ और मिसालें

हमने तारीख़ी बयान का सिर्फ़ सिलसिला क़ायम रखने के लिए फ्रांस की सोचों और फ्रांस ही के नतीजों का ज़िक्र किया है, लेकिन यह सोचना सही न होगा कि फ्रांस इस मामले में अकेला है। सच तो यह है कि आज उन तमाम देशों का कम व बेश यही हाल है, जिन्हों ने वे अख़्लाक़ी सोच और रहन-सहन के वे बे-ढंग उसूल अपनाये हैं, जिन का ज़िक्र पिछले अध्यायों में किया गया है। मिसाल के तौर पर अमरीका को लीजिश, जहाँ रहन-सहन की यह व्यवस्था इस वक़्त अपनी जवानी पर है।

बच्चों पर वासना भरे माहौल का असर

जज बेन लिंडसे (इशप डळपवीशू), जिसे डिनवर (ऊशपींशी) की बच्चों के जरायम की अदालत (गीींशपळश्रश उेीीं) का प्रेसीडेंट होने की हैसियत से अमरीका के नव-जवानों की अख़्लाक़ी हालत को जानने का बहुत ज़्यादा मौक़ा मिला है, अपनी किताब (ठशींश्रीं ष चेवशीप धेीींह) में लिखता है कि अमरीका में बच्चे वक़्त से पहले ही बालिग़ होने लगते हैं और बहुत कच्ची उम्र में उन के अन्दर वासना की भावनाएं जागने लगती हैं। उसने नमूने के तौर पर ३१२ लड़कियों के हालात की चांस की तो मालूम हुआ कि उन में से २५५ ऐसी थीं जो ग्यारह और तेरह वर्ष की दर्मियानी उम्र में बालिग़ हो चुकी थीं और उनके भीतर ऐसी वासना भरी ख़्वाहिशें और ऐसी जिस्मानी मांगों के निशान पाये जाते थे, जो एक १८ वर्ष और इस से भी ज़्यादा उम्र की लड़की में होनी चाहिए।

(पृष्ठ ८२-८६)

डाक्टर एडिथ होकर अपनी किताब (ड्रुे ष ड्शु) में लिखता है कि

'बहुत ज़्यादा तहज़ीब याफ़्ता और दौलतमंद लोगों में भी यह कोई ग़ैर-मामूली बात नहीं है कि सात आठ वर्ष की लड़कियां अपने हमउम्र लड़कों से इश्क़ व मुहब्बत के ताल्लुक़ात रखती हैं, जिन के साथ कभी-कभी हमबिस्तरी भी हो जाती है।'

उसका बयान है

'एक सात वर्ष की छोटी-सी लड़की जो एक निहायत शरीफ़ ख़ानदान की आंखों का तारा थी, ख़ुद अपने बड़े भाई और उस के कुछ दोस्तों के साथ सोयी   एक दूसरा वाक़िया यह है कि पांच बच्चों का एक गिरोह, जिस में दो लड़कियाँ और तीन लड़के थे और जिन के घर पास-पास ही थे, आपस में हमबिस्तरी करते हुए पाये गये और उन्हों ने दूसरे हमउम्र बच्चों को भी इस पर उभारा। इन में सबसे बड़े बच्चे की उम्र सिर्फ़ दस साल की थी   एक और वाक़िया एक नौ साल की बच्ची का है, जो ज़ाहिर में बड़ी हिफ़ाज़त से रखी जाती थी, वह बच्ची कई 'आशिक़ों' की मंज़ूरे नज़र बन चुकी थी।' (पृष्ठ ३२८)

बालटीमोर (इरश्रींळोीश) के एक डाक्टर की रिपोर्ट है कि एक साल के अन्दर उस के शहर में एक हज़ार से ज़्यादा ऐसे मुक़दमें पेश हुए, जिनमें बारह वर्ष से कम उम्र वाली लड़कियों के साथ यौन-क्रिया की गयी थी।

(पृष्ठ १७७)

यह पहला फल है उस वासना भड़काने वाले माहौल का, जिस में हर ओर भावनाओं को उभारनेवाले सामान जुटाये गये हों। अमरीका का एक लेखक लिखता है कि

‘हमारी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा आजकल जिन हालात में ज़िंदगी बिता रहा है, वे इतने ग़ैर-फ़ितरी (अप्राकृतिक) हैं कि लड़के और लड़कियों को दस-पन्द्रह वर्ष की उम्र ही में यह ख़्याल पैदा हो जाता है कि वे एक दूसरे के साथ इश्क़ रखते हैं। इस का नतीजा बहुत ही अफ़सोसनाक है। वक़्त से पहले की इस क़िस्म की वासना भरी दिलचस्पियों से बहुत बुरे नतीजे निकल सकते हैं और हुआ करते हैं। इन का कम से कम नतीजा यह है कि नव-उम्र लड़कियां अपने दोस्तों के साथ भाग जाती हैं या कमसिनी में शादियाँ कर लेती हैं और अगर मुहब्बत में नाकामी का मुंह देखना पड़ता है, तो आत्महत्या कर लेती हैं।’

शिक्षा का मरहला

इस तरह जिन बच्चों में वक़्त से पहले सेक्स की भावना जाग जाती है, उन के लिए पहली तजुर्बागाह स्कूल दो क़िस्म के होते हैं। एक में सिर्फ़ लड़के या लड़कियाँ पढ़ती हैं। दूसरी क़िस्म के स्कूलों में दानों की पढ़ाई एक साथ होती है।

पहली क़िस्म के स्कूलों में ग़ैर-फ़ितरी (के डर्शुीरश्रळींू) और हस्तमैथुन (चर्रीीीलरींळेप) की वबा फैल रही है, क्योंकि जिन भावनाओं को बचपन ही में भड़काया जा चुका है और जिन को भड़काते रहने के सामान माहौल में हर ओर फैले हुए हैं, वे अपनी तस्कीन के लिए कोई न कोई शक्ल निकालने पर मजबूर हैं। डाक्टर होकर लिखता है कि

‘इस तरह के स्कूलों, कालेजों, नर्सों के ट्रेनिंग स्कूलों और मज़हबी मदरसों में हमेशा इस क़िस्म के वाक़िआत पेश आते रहते हैं, जिन में एक ही सेक्स मर्द या औरत के दो व्यक्ति आपस में वासना का ताल्लूक़ रखते हैं और विपरीतलिंग से उन की दिलचस्पी फ़ना हो चुकी होती है (पृ. ३३१)

इस सिलसिले में उस ने ज़्यादा से ज़्यादा वाक़ियात ऐसे बयान किये हैं, जिन में लड़कियों के साथ और लड़के लड़कों के साथ सोये और दर्दनाक अंजाम से दोचार हुए।

कुछ दूसरी किताबों से भी मालूम होता है कि यह 'ग़ैर-फ़ितरी काम' की वबा कितनी तेज़ी से फैली हुई है। डाक्टर लोरी (ऊ. ड्डीू) अपनी किताब (क्शाीशश्रष) में लिखता है कि

> 'एक बार एक स्कूल के हेडमास्टर ने चालीस ख़ानदानों को ख़ुफ़िया ख़बर दी कि उन के लड़के अब स्कूल में नहीं रखे जा सकते, क्योंकि उन में बद-अख़्लाक़ी की एक ख़ौफ़नाक हालत का पता चला है।'
>
> (पृ. १७९)

अब दूसरी क़िस्म के स्कूलों को लीजिए, जिन में लड़के और लड़कियाँ मिल कर पढ़ते हैं। यहाँ उतेजना की सामग्री भी मौजूद हैं और उस को तसल्ली देने की सामग्री भी। जिस कामोत्तेजना की शुरूआत बचपन में हुई थी, यहाँ पहुंच कर वह पूरी हो जाती है। गंदे से गंदा लिट्रेचर नवजवान लड़कों और लड़कियों के पढ़ने में रहता है। इश्क़िया कहानियाँ कथित 'आर्ट' के मैग्ज़ीन, सेक्स पर बहुत गन्दी किताबें और हमल रोकने की जानकारियों को जुटानेवाले लेख, ये हैं वे चीज़ें जो जवानी में स्कूलों और कालेजों के पढ़नेवालों और बालिग़ों के लिए सब से ज़्यादा बेहतर होती हैं। मशहूर अमरीकन लेखक हेंडरिच फान लून (क्शापवीळलह ऋप डेप) कहती है कि

'यह लिट्रेचर, जिस की सब से ज़्यादा मांग अमरीकी यूनिवर्सिटियों में है, गन्दगी, बेहयाई और बेहूदगी का सबसे बुरा योग है, जो किसी ज़माने में इतनी आज़ादी के साथ पब्लिक में नहीं पेश किया गया। इस लिट्रेचर से जो जानकारियां मिलती हैं, दोनों औरतों और मर्दों में से जवान लोग इन पर बड़ी आज़ादी और बेबाकी से बहसें करते हैं और इसके बाद अमली तजुर्बों की ओर क़दम बढ़ाया जाता है। लड़के और लड़कियाँ मिलकर झर्शीीळींस झरींीळशी के लिए निकलते हैं, जिनमें शराब और सिगरेट का इस्तेमाल ख़ूब आज़ादी से होता है और नाच-रंग से पूरा आनन्द उठाया जाता है।'[१५]

लिंडसे का अन्दाज़ा है कि हाई स्कूल की कम से कम ४५ फ़ीसदी लड़कियाँ स्कूल छोड़ने से पहले ख़राब हो चुकती हैं और बाद के दर्जों में औसत इस से ज़्यादा है। वह लिखता है

'हाई स्कूल का लड़का हाई स्कूल की लड़की के मुक़ाबले में भावनाओं की तेज़ी में बहुत पीछे रह जाता है, आम तौर से लड़की ही किसी न किसी तरह पेशक़दमी करती है और लड़का उसके इशारों पर नाचता है।'

तीन बड़े उत्प्रेरक

स्कूल और कॉलेज में फिर भी एक क़िस्म का डिसिपलिन होता है, जो किसी हद तक अमल की आज़ादी में रुकावट पैदा कर देता है, लेकिन ये नवजवान जब स्कूलों और कालेजों से भड़की भावनाएं और बिगड़ी हुई आदतें लिये हुए ज़िंदगी के मैदान में क़दम रखते हैं, तो उनकी सरगर्मियां तमाम हदों और क़ैदों से आज़ाद होती है, यहाँ उनकी भावनाओं को भड़काने के लिए एक पूरा आग-घर मौजूद होता है और उन के भड़कती हुई भावनाओं की तस्कीन के लिए हर क़िस्म का सामान भी किसी परेशानी के बग़ैर जुटा दिया जाता है।

एक अमरीकी मैग्ज़ीन में इन बातों को जिन वजह से वहाँ बदअख़्लाक़ी का ग़ैर-मामूली प्रचार हो रहा है, इस तरह बयान किया गया है

---

[15] Howican get married, P. 172

‘तीन शैतान ताक़तें हैं, जिनकी तिकड़ी आज हमारी दुनिया पर छा गयी है और ये तीनों एक जहन्नम तैयार करने में लगी हुई हैं। गंदा लिट्रेचर, जो महायुद्ध के बाद से बड़ी रफ़्तार के साथ अपनी बेशर्मी और तादाद में बढ़ता चला जा रहा है । चलती-फिरती तस्वीरें, जो वासना की भावनाओं को न केवल भड़काती हैं बल्कि अमली सबक़ भी देती हैं । औरतों का गिरा हुआ नैतिक चरित्र उनके पहनावे, और कभी-कभी उनके नंगेपन और सिग्रेट के बढ़ते इस्तेमाल और मर्दों के साथ उनके मेल-जोल की शक्ल में ज़ाहिर होता है । ये तीन चीज़ें हमारे यहाँ बढ़ती चली जा रही हैं । और इनका नतीजा मसीही तह्ज़ीब और रहन-सहन की गिरावट और आख़िरकार तबाही है । इनको न रोका गया, तो हमारी तारीख़ भी रूम और उन दूसरी क़ौमों जैसी होगी, जिन को यही नफ़्स परस्ती और मौजमस्ती, उन की शराब और औरतों और नाच-रंग सहित फ़ना के घाट उतार चुकी है।’

ये तीन बातें, जो संस्कृति और रहन-सहन की पूरी फ़िज़ा पर छायी हुई हैं, हर उस जवान मर्द और जवान औरत की भावनाओं में एक स्थायी अग्रसरता पैदा करती रहती हैं, जिस के जिस्म में थोड़ा-सा भी गर्म ख़ून मौजूद है, बेहयाई की ज़्यादती इस अग्रसरता का ज़रूरी नतीजा है।

बेहयाई का बाहुल्य

अमरीका में जिन औरतों ने ज़िनाकारी को स्थायी पेशा बना लिया है, उनकी तादाद का कम से कम अन्दाज़ा चार-पाँच लाख के बीच है।[१६] पर अमरीका की वेश्या को भारत की वेश्या पर मत सोचिए । वह ख़ानदानी वेश्या नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी औरत है जो कल तक कोई आज़ाद पेशा करती थी, बुरी सोहबत में ख़राब हो गयी और वेश्यालय में आ बैठी, कुछ साल यहाँ गुज़ारेगी, फिर इस काम को छोड़ कर किसी दफ़्तर या कारख़ाने में नौकर हो जाएगी । जांच से मालूम हुआ है कि अमरीका की ५० फ़सदी वेश्याएं घरेलू नौकरानियों (ऊशीींळल डर्शीींरपीं) में से भरती होती हैं और बाक़ी ५० फ़सदी अस्पतालों, दफ़्तरों और दुकानों की नौकरियां छोड़ कर आती हैं, आम तौर से

---

16 Prostitution in the United States, P. 238-39

पन्द्रह और बीस साल की उम्र में यह पेशा शुरू किया जाता है और पचीस-तीस साल की उम्र को पहुँचने के बाद वह औरत जो कल वेश्या थी, वेश्यालय से निकल कर किसी दूसरे आज़ाद पेशे में चली जाती हैं।[17] इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि अमरीका में चार-पाँच लाख वेश्याओं की मौजूदगी की वास्तविकता क्या है।

जैसे कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, पश्चिमी देशों में वेश्यावृति एक संगठित अंतर्राष्ट्रिय कारोबार की हैसियत रखती है। अमरीका में न्यूयार्क, रियो-डि-जेनरो और ब्यूनस आयर्स इस कारोबार की बड़ी मंडी है। न्यूयार्क की दो सबसे बड़ी 'तिजारती कोठियों' में से हर एक की एक-एक ऐडमिनिस्ट्रेटिव (अवाळपळीींीरींळींश उेींपलळश्र) है, जिस के अध्यक्ष और सिक्रेट्री बाक़ायदा चुने जाते हैं। हर एक ने क़ानूनी सलाहकार कर रखे हैं, ताकि किसी अदालती मुक़दमें में फंस जाने पर उनके हित की हिफ़ाज़त करें। जवान लड़कियों को बहकाने और उड़ाकर लाने के लिए हज़ारों दलाल मुक़र्रर हैं, जो हर जगह शिकार की खोज में फिरते रहते हैं। इन शिकारियों की छीन-झपट का अन्दाज़ा इस से किया जा सकता है कि शिकागो में आनेवाले मुहाजिरों की लीग के प्रेसीडेंट ने एक बार १५ महीने के आंकड़े जमा किए थे, तो मालूम हुआ कि इस मुद्दत में ७२०० लड़कियों के पत्र लीग के दफ़्तर को मिले, जिन में लिखा था कि वे शिकागो पहुँचनेवाली हैं पर उन में से सिर्फ़ १७०० अपनी मंज़िल को पहुंच सकीं। बाक़ी का कुछ पता नहीं चल सका कि कहाँ गयीं।

वेश्यालयों के अलावा बहुत-से मुलाक़ात ख़ाने (अीीळसपरींळेप केीशी) और उरश्रश्र केीशी हैं, जो इस मक़्सद के लिए सजाए रखे जाते हैं कि 'सज्जन' लोग और औरतें जब आपस में मुलाक़ात करना चाहें, तो वहाँ उस का इंतिज़ाम कर दिया जाए। जांच से मालूम हुआ कि एक शहर में ऐसे ७८ मकान थे, एक दूसरे शहर में ५३, एक और शहर में ३३।[18] इन मकानों में सिर्फ़ बिन-ब्याही औरतें ही नहीं जातीं, बल्कि बहुत-सी ब्याही औरतों का भवी वहाँ गुज़र होता रहता है।[19]

---

17 Prostitution in the United States, P. 64-69
18 Prostitution in the United States, P. 368
19 Prostitution in the United States, P. 36

एक मशहूर समाज-सुधारक का बयान है कि

> 'न्यूयार्क की शादीशुदा आबादी का पूरा एक तिहाई हिस्सा ऐसा है जो अख़्लाक़ी और जिस्मानी हैसियत से अपनी घरेलू ज़िम्मेदारी में वफ़ादार नहीं है और न्यूयार्क की हालत मुल्क के दूसरे हिस्सों से कुछ ज़्यादा अलग नहीं।[२०]

अमरीका के चरित्र-सुधारकों की एक कमेटी 'उाळींशे ष ऱ्रींशशप' के नाम से मशहूर है। इस समिति की ओर से बद-अख़्लाक़ी के केन्द्रों की खोज और देश की अख़्लाक़ी हालत की जांच और चरित्रसुधार के अमली उपायों का काम बड़े पैमाने पर किया जाता है। उसकी रिपोर्टों में बताया गया है कि अमरीका के जितने नाच घर, नाइट क्लब, ब्यूटी सैलून्स (इशरींू डरश्रेपी), हाथों को सुन्दर बनाने की दुकानें (चरपळलींश ठेाी) और बाल संवारने की दुकानें (क्रळी ऊेशींीळपसी) हैं, क़रीब-क़रीब सब बाक़ायदा वेश्यालय बन चुके हैं, बल्कि उससे भी बुरे, क्योंकि वहाँ न बयान करने लायक़ काम किए जाते हैं।[२१]

गुप्त रोग

बेहयाई की इस ज़्यादती का ज़रूरी नतीजा गुप्त रोगों का ज़्यादा से ज़्यादा पाया जाना है। अन्दाज़ा किया गया है कि अमरीका की क़रीब-क़रीब ९० फ़ीसदी आबादी इन रोगों का असर अपनाये हुए है। इंसाइक्लोपोडिया ब्रिटानिका से मालूम होता है कि वहां के सरकारी दवाख़ानों में अवसतन हर साल आतशक के दो लाख और सूज़ाक के एक लाख ६० हज़ार रोगियों का इलाज किया जाता है। ६५ दवाख़ाने सिर्फ़ इन्हीं रोगों के लिए ख़ास हैं, पर सरकारी दवाख़ानों से

---

[20] Herself, P. 36

[21] ~rgdt gXr H$s A§{V_ Mm¡WmB© Am¡a 21dt gXr Ho$ Ama§^ _| Eogo Ho$ÝÐ, g¡byZ Am¡a XwH$mZo ^maV _| ^r àM{bV hmo MwH$s h¢....{deofV: _hmZJam| _| Ohm± go "Zmar-CÕma', "Zmar-ñdV§ÌVm' Am¡a "Zmar-A{YH$ma' VWm "Zmar-CÝZVr' Ho$ AmÝXmobZm| Ho$ gmoV \y$QVo h¢$& àHmeH

ज़्यादा डाक्टरों की ओर रुजू करने का रुझान ज़्यादा है, जिनके पास आतशक के ६१ फ़ीसदी और सूज़ाक के ८९ फ़ीसदी रोगी जाते हैं।

भाग २३, पृ. ४५

तीस और चालीस हज़ार के दर्मियान बच्चों की मौतें सिर्फ़ मौरूसी आतशक की वजह से होती हैं। टी. बी. के सिवा बाक़ी तमाम रोगों से जितनी मौतें होती हैं, उन सब से ज़्यादा तायदाद उन मौतचें की है, जो सिर्फ़ आतशक की वजह से होती हैं। सूज़ाक के मुताल्लिक़ माहिरों का कम से कम अन्दाज़ा है कि ६० फ़ीसदी जवान इस रोग में फंसे हुए हैं, जिन में शादी-शुदा भी हैं और ग़ैर शादी-शुदा भी। औरतों के रोगों के माहिरों का एक ही बयान है कि शादी-शुदा औरतों के गुप्तांगों के जितने आपरेशन किये जाते हैं, उनमें से ७५ फ़ीसदी ऐसे निकलते हैं, जिनमें सूज़ाक का असर पाया जाता है।[२२]

तलाक़ और अलगाव

ऐसे हालात में ज़ाहिर है कि ख़ानदान की व्यवस्था और दम्पतियों का पाकीज़ा ताल्लुक़ कहाँ क़ायम रह सकता है? आज़ादी के साथ अपनी रोज़ी कमानेवाली औरतें जिन को वासना-पूर्ति के सिवा अपनी ज़िंदगी के किसी हिस्से में भी मर्द की ज़रूरत नहीं है और जिनको शादी के बग़ैर आसानी से मर्द भी मिल सकते हैं, शादी को एक फ़िज़ूल चीज़ समझती हैं। आज की फ़िलासफ़ी और 'खाओ-पियो और मौज करो' जैसे विचारों ने उन के भीतर से यह एहसास भी दूर कर दिया है कि शादी के बग़ैर किसी आदमी से ताल्लुक़ात रखना कोई ऐब बा गुनाह है। समाज को भी इस माहौल ने ऐसा बे-एहसास बना दिया है कि वह ऐसी औरतों को नफ़रत के क़ाबिल या मलामत के क़ाबिल नहीं समझता।

जज लुंडसे अमरीका की आम लड़कियों के विचारों को इन शब्दों में ज़ाहिर करता है

> 'मैं शादी क्यों करूं! मेरे साथ की जिन लड़कियों ने पिछले दो साल में शादियां की हैं, हर दस में से पांच का अंजाम तलाक़ पर हुआ। मैं समझती हूं कि इस ज़माने की हर लड़की मुहब्बत के मामले में अमल की आज़ादी का फ़ितरी हक़ रखती है। हम को हमल रोकने के काफ़ी

22 Laws of Sex, P. 204

उपाय मालूम हैं। इस ज़रिए से यह ख़तरा भी दूर किया जा सकता है कि एक हरामी बच्चे की पैदाइश कोई पेचीदा सूरत पैदा कर देगी। हमको यक़ीन है कि परंपरागत तरीक़ों को इस नये तरीक़े से बदल देना अक़्ल का तक़ाज़ा है।'

इन विचारों बाली बेशर्म औरतों को अगर कोई चीज़ शादी पर तैयार करती है, तो वह सिर्फ़ मुहब्बत की भावना है। पर ज़्यादा तर यह भावना भी दिल और रूह की गहराई में नहीं होती, बल्कि सिर्फ़ एक वक़्ती खिंचाव का नतीजा होती है। ख़्वाहिशों का नशा उतर जाने के बाद मियाँ-बीवी में को मुहब्बत बाक़ी नहीं रहती। मिजाज़ और आदत का मामूली-सा फ़र्क़ उनके बीच नफ़रत पैदा कर देता है। आख़िरकार अदालत में तलाक़ या अलगाव (डशारीरींळेप) का दावा पेश हो जाता है।

लिंडसे लिखता है

'सन १९२२ ई. में डिनोर में हर शादी के साथ एक वाक़िया अलगाव का पेश आया और दो शादियों के मुक़ाबले में एक मुक़दमा तलाक़ का पेश हुआ। यह हालत डिनोर ही की नहीं है। अमरीका के लगभग तमाम शहरों की क़रीब-क़रीब यही हालत है।'

फिर लिखता है

'तलाक़ और अलगाव के वाक़िआत बढ़ते जा रहे हैं और अगर यही हालत रही, जैसी कि उम्मीद है, तो शायद मुल्क के ज़्यादातर हिस्सों में जितने शादी के लाइसेंस दिये जाएंगे, उतने ही तलाक़ के मुक़दम पेश होंगे।'[२३]

कुछ दिन हुए कि डेटराय (ऊशीीळीं) के अख़बार 'फ्री प्रेस' में बिना हालात पर एक लेख छपा था, जिसका एक पैरा यह है

'निकाहों की कमी, तलाक़ों की ज़्यादती और निकाह के बिना स्थायी या अस्थायी नाजायज़ ताल्लुक़ात की बढ़ौत्तरी, यह मतलब रखता है कि हम जानवरपने की ओर वापस जा रहे हैं। बच्चे पैदा करने की

[23] Revolt of Modern vouth, P. 211-14

फ़ितरी ख़्वाहिश मिट रही है, पैदाशदा बच्चों से ग़फ़लत बरती जा रही है और इस बात का एहसास ख़त्म हो रहा है कि ख़ानदान और घर की तामीर, तह्ज़ीब और आज़ाद हुकूमत के बाक़ी रजने के लिए ज़रूरी है, इसके उलट तह्ज़ीब और हुकूमत के अंजाम से एक बेदर्दाना लापरवाई पैदा हो रही है।'

तलाक़ और अलगाव की बढ़ौत्तरी का इलाज अब यह निकाला गया है कि ळेरिीीळेपरींश चरीीळरसश यानी 'आज़माइशी निकाह' को रिवाज दिया जाये, पर यह इलाज असल रोग से भी बुरा है। आज़माइशी निकाह का मतलब यह है कि मर्द और औरत 'पुराने फ़ैशन की शादी' किये बग़ैर कुछ दिनों तक आपस में मिल कर रहें। अगर इस साथ रहने में दिल से दिल मिल जाए, तो शादी करलें, वरना दोनों अलग होकर कहीं और क़िस्मत आज़मायें। आज़माइश के दिनों में दोनों को औलाद पैदा करने से परहेज़ करना ज़रूरी है, क्योंकि बच्चे की पैदाइश के बाद उनको बाक़ायदा निकाह करना पड़ेगा। यह वही चीज़ है, जिस का नाम रूस में आज़ाद मुहब्बत (ऋीशश ङेींश) है।[२४]

क़ौमी आत्म हत्या

नफ़्स परस्ती, पति-पत्नी के कर्तव्य निभाने से नफ़रत, ख़ानदानी ज़िंदगी से बेज़ारी और घरेलू ताल्लुक़ात की नापायदारी ने औरत की उस स्वाभाविक ममता को क़रीब-क़रीब ख़त्म कर दिया है, जो औरतों की भावनाओं में सब से ज़्यादा बेहतर और बुलन्द भावना है और जिसके बाक़ी रहने पर न सिर्फ़ सभ्यता और संस्कृति, बल्कि मानवता के बाक़ी रहने का आश्रय है। हमल को रोकना, हमल को गिराना और बच्चों को क़त्ल करना इसी भावना की मौत से पैदा हुए हैं। हमल रोकने की जानकारियां, हर क़िस्म की क़ानूनी पाबन्दियों के बावजूद अमरीका के जवान लड़की और लड़के को हासिल हैं। हमल रोकनेवाली दवाएं और सामान भी आज़ादी के साथ दुकानों पर बिकते हैं। आम आज़ाद औरतें तो दूर की बात, स्कूलों और कॉलेजों की लड़कियाँ भी ऐसा हमेशा अपने पास रखती हैं, ताकि अगर उनका दोस्त संयोग से अपना सामान भूल जाये, तो एक आनन्द भरी शाम ख़राब न होने पाये।

---

[24] Am¡a A~ "ghdmgr-g§~§Y' (Live-in-Relation) àHmeH

जज लिंडसे लिखता है

> 'हाई स्कूल की कम उम्र वाली ४९५ लड़कियाँ, जिन्होंने ख़ुद मुझ से इक़रार किया कि उनको लड़कों से यौनाचार का तजुर्बा हो चुका है। उनमें सिर्फ़ २५ ऐसी थीं, जिनको हमल ठहर गया था, बाक़ी में से, कुछ तो इत्तिफ़ाक़ से बच गयी थीं, लेकिन अक्सर को हमल रोकने उपायों की जानकारी थी, यह जानकारी उनमें इतनी आम हो चुकी है कि लोगों को इसका सही अन्दाज़ा नहीं है।'

कुंवारी लड़कियाँ इन उपायों को इस लिए इस्तेमाल करती हैं कि उन की आज़ादी में फ़र्क़ न आये। शादी-शुदा औरतें इस लिए फ़ायदा उठाती हैं कि बच्चे के जन्म से न सिर्फ़ उन पर पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का बोझ पड़ जाता है, बल्कि शौहर को तलाक़ देने की आज़ादी में भी रुकावट पैदा हो जाती है और तमाम औरतें इस लिए माँ बनने से नफ़रत करने लगी हैं कि ज़िंदगी का पूरा-पूरा आनन्द उठाने के लिए उनको इस जंजाल से बचने की ज़रूरत है, साथ ही इस लिए भी कि उनके विचार में बच्चे जनने से उनके हुस्न में फ़र्क़ आ जाता है।[२५]

बहरहाल वज्हें चाहे कुछ भी हों, औरत व मर्द के ९५ फ़ीसदी ताल्लुक़ात ऐसे हैं, जिनसे इस ताल्लुक़ात के फ़ितरी नतीजे को हमल रोकने के उपायों से रोक दिया जाता है। बाक़ी पाँच फ़ीसदी हादसे, जिनमें इत्तिफ़ाक़ी तौर से हमल क़रार पा जाता है, उनके लिए हमल गिराने और बच्चों के क़त्ल के उपाय मौजूद हैं।

जज लिंडसे का बयान है कि अमरीका में हर साल कम से कम १५ लाख हमल गिरा दिये जाते हैं और हज़ारों बच्चे पैदा होते ही क़त्ल कर दिये जाते हैं। (पृ. २२०)

इंग्लैंड की हालत

मैं इस अफ़सोसनाक दास्तान को ज़्यादा लंबा नहीं खींचना चाहता, पर ना-मुनासिब है कि बहस के इस हिस्से को जार्ज रायली स्काट की किताब अ क्लीीीूष झौीींळीीींळेप के कुछ हिस्से नक़ल किये बिना ख़त्म कर दिया जाए। इस किताब

---

[25] Macfado in manhood and marriage, P. 36

का लिखनेवाला एक अंग्रेज़ है और उसने ज़्यादातर अपने ही देश की अख़्लाक़ी हालात का नक़्शा इन शब्दों में खींचा है

> 'जिन औरतों के गुज़र-बसर का अकेला ज़रिया यही है कि अपने जिस्म को किराये पर चला कर रोज़ी कमायें, उनके अलावा एक बहुत बड़ी तादाद उन औरतों की भी है (और वह दिन-ब-दिन ज़्यादा हो रही है) जो अपनी ज़िंदगी की ज़रूरतें पूरी करने के लिए दूसरे ज़रिए रखती हैं और पार्ट टाइम उसके साथ वेश्याओं का काम भी करती हैं, ताकि आमदनी में कुछ और बढ़ौतरी हो जाये। ये पेशेवर वेश्याओं से कुछ भी अलग नहीं हैं, पर इस नाम को उन पर लागू नहीं किया जाता। हम उनको ग़ैर-पेशेवर वेश्याएं (आरींशीी ाीीींळीीिशी) कह सकते हैं।'
>
> 'इन शौक़ीन या ग़ैर-पेशेवर वेश्याओं की ज़्यादती आज कल जितनी है, उतनी कभी न थी। इज़्ज़तदार औरतों को कहीं इशारे में भी 'वेश्या' कह दिया जाए, तो वे आग बगोला हो जाएंगी, पर उनकी नाराज़गी से हक़ीक़त नहीं बदल सकती। हक़ीक़त बहरहाल यही है और पकावली की किसी बड़ी बे-शर्म वेश्या में भी अख़्लाक़ी हैसियत से कोई फ़र्क़ नहीं है अब जवान लड़की के लिए बद-चलनी और बेबाकी, बल्कि बाज़ारी तौर-तरीक़े तक फ़ैशन में दाख़िल हो गये हैं और सिग्रेट पीना, कड़वी शराबें इस्तेमाल करना, होंठों पर लाली लगाना, सेक्स और हमल रोकने के बारे में अपनी जानकारी देना, गन्दे लिट्रेचर पर बातें करना, ये सब चींज़ें भी उनके लिए फ़ैशन बनी हुई हैं ऐसी लड़कियों और औरतों की तादाद हर दिन बढ़ती जा रही है, जो शादी से पहले वासनापूर्ण संबंध बे-तकल्लुफ़ क़ायम कर लेती हैं और वे लड़कियाँ अब बहुत कम हैं जो चर्च की क़ुर्बान-गाह के सामने निकाह का पैमाने-वफ़ा बांधते वक़्त सचमुच कुंवारी होती हों।'

आगे चल कर यह लेखक उन वज्हों का जायज़ा लेता है, जिन्होंने हालात इस हद तक पहुंचा दिये हैं और सबसे मुनासिब यही है कि इस जायज़े को भी उसी के शब्दों में नक़ल कर दिया जाए

'सबसे पहले साज-सज्चा के उस शौक़ को लीजिए, जिन की वजह से हर लड़की में नये फ़ैशन के क़ीमती लिबासों और हुस्न बढ़ाने के रंगारंग सामानों का बे-पनाह लोभ पैदा हो गया गया है। यह उस बेक़ायदा वेश्यावृत्ति की वज्हों में से एक बड़ी वजह है। हर आदमी, जो देखने वाली आंखें रखता है, इस बात को आसानी से देख सकता है कि वे सैकड़ों हज़ारों लड़कियां, जो उसके सामने रोग़जाना गुज़रती हैं, आम तौर से इतने क़ीमती कपड़े पहने हुए होती हैं कि उनकी जायज़ कमाई किसी तरह भी ऐसे पहनावों को सहन नहीं कर सकती, इस लिए आज भी यह कहना उतना ही सही है, जितना आधा सदी पहले सही था कि मर्द ही उनके लिए कपड़े ख़रीदते हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि पहले जो मर्द उनके लिए कपड़े ख़रीदते थे, वे उनके शौहर या बाप-भाई होते थे और अब उनके बजाए कुछ दूसरे लोग होते हैं।'
'...औरतों की आज़ादी का भी इन हालात की पैदाइशमें बहुत कुछ दख़ल है। पिछले कुछ सालों में लड़कियों पर से माँ-बाप की हिफ़ाज़त व निगरानी इस हद तक कम हो गयी है कि तीस-चालीस साल पहले लड़कों को भी इतनी आज़ादी हासिल न थी जितनी अब लड़कियों को सासिल है।'

'एक और अहम वजह जो समाज में बड़े पैमाने पर सेक्सी आवारापन फैलने की वजह बना, यह है कि औरतें हर दिन बढ़ती तायदाद में तिजारती कारोगार, दफ़्तरी नौकरियों और बहुत-से दूसरे पेशों में दाख़िल हो रही हैं, जहाँ रात व दिन उनको मर्दों के साथ मिलने-जुलने का मौक़ा मिलता है। इस चीज़ ने औरतों और मर्दों के अख़्लाक़ मेयार को बहुत गिरा दिया है। मर्दाना पेश-क़दमी के मुक़ाबले में औरत की रोकने की ताक़त को बहुत कम कर दिया है और दोनों औरतों और मर्दों के वासना भरे ताल्लुक़ात को तमाम अख़्लाक़ी बन्धनों बन्धनों से आज़ाद कर के रख दिया है। अब ज़वान लड़कियों के ज़ेहन में शादी और पाकदामन ज़िंदगी का ख़्याल आता ही नहीं। आज़ादाना 'जिसे पहले कभी आवारा क़िस्म के मर्द ढूंढते फिरते थे, आज हर लड़की उसकी खोज करती फिरती है। दोशीज़गी और कुंवारापन को एक पुराने ज़माने की चीज़ समझा जाता

है और नये दौर की लड़की उसको एक मुसीबत ख़्याल करती है। उस के नज़दीक ज़िंदगी का मज़ा यह है कि जवानी के दौर में नफ़्स की लज़्ज़तों का जाम ख़ूब जी भर कर पिया जाए। इसी चीज़ की खोज में वह नाच घरों, नाइट क्लबों, होटलों और काफ़ी हाउसों के चक्कर लगाती है और इसी की खोज में वह बिल्कुल अजनबी मर्दों के साथ मोटर की सैर के लिए भी जाने पर तैयार हो जाती है। दूसरे शब्दों में वह जान-बूझ कर ख़ुद अपनी ख़्वाहिश से अपने आपको ऐसे माहौल में पहुँचा देती है और पहुँचाती रहती है जो वासना भरी भावनाओं को भड़कानेवाला है, उससे वह घबराती नहीं, बल्कि उसका स्वागत करती है।'

******

फ़ैसला क्या हो?

हमारे मुल्क में और इसी तरह दूसरे पूर्वी देशों में जो लोग परदे का विरोध करते हैं, उनके सामने असल में ज़िंदगी का वही नक़्शा है जो पिछले पृष्ठों में सामने आया है। इसी ज़िंदगी की तड़क-भड़क ने उनके मन पर असर डाला है। यही सोच, यही अख़्लाक़ी उसूल और यही फ़ायदे और लज़्ज़तें हैं, चमक-दमक ने उन के दिल व दिमाग़ को अपील की है। परदे से उनकी नफ़रत इसी वजह से है कि इसका बुनियादी अख़्लाकी फ़लसफ़ा उस पच्छिमी फ़लसफ़े के बिल्कुल ख़िलाफ़ है, जिस पर ये ईमान लाये हैं और अमलन उन फ़ायदों और लज़्ज़तों के हासिल करने में परदा रोक बना हुआ है, जिनको इन लोगों ने अपना मक़्सद बनाया है। अब यह सवाल कि ज़िंदगी के इस नक़्शे के अंधेरे पहलू यानी इसके असली नतीजों को भी ये लोग क़ुबूल करने के लिए तैयार हैं या नहीं, तो इस सिलसिले में वे एकमत नहीं है।

एक गिरोह उन नतीजों को जानता है उन्हें क़ुबूल करने के लिए तैयार है। हक़ीक़त में उसके नज़दीक यह भी पाश्चात्-जीवनशैली का रोशन पहलू ही है, न कि अंधेरा पहलू।

दूसरा गिरोह इस पहलू को तारीक समझता है, इन नतीजों को क़ुबूल करने के लिए तैयार नहीं है, पर उन फ़ायदों पर बुरी तरह लट्टू है जो ज़िंदगी के इस तरीक़े के साथ जुड़े हुए हैं।

तीसरा गिरोह न तो सिद्धांतों ही को समझता है, न उनके नतीजों को जानता है, न इस बात पर सोच-विचार करने की तक्लीफ़ करना चाहता है कि इन सोचों और इन नतीजों के बीच क्या ताल्लुक़ है। उसको तो बस वह काम करना है जो दुनिया में हो रहा हो।

ये तीनों गिरोह आपस में कुछ इस तरह गड्ड मड्ड हो गये कि बातें करते वक़्त कभी-कभी यह पहचानना मुश्किल हो जाता है कि हमारे सामने का आदमी किस गिरोह से ताल्लुक़ रहता है। इस गड्ड होने की वजह से आमतौर से बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता है। इस लिए ज़रूरत है कि इनको छांट कर एक-दूसरे से अलग किया जाए और हर एक से उसकी हैसियत के मुताबिक़ बात की जाए।

पाश्चात्य-विशेषज्ञ पूर्वी लोग

पहले गिरोह के लोग उस फ़लसफ़े और उन सोचों पर और रहन-सहन के उन उसूलों पर अपनी समझ के मुताबिक़ ईमान लाये हैं, जिन पर पच्छिमी रहन-सहन की बुनियाद रखी गयी है, वे उसी दिमाग़ से सोचते हैं और उसी नज़र से ज़िंदगी के मसलों को देखते हैं, जिससे आज के यूरोप की तामीर करने वालों ने देखा और सोचा था और वे ख़ुद अपने-अपने देशों के रहन-सहन और ज़िंदगी को भी उसी पच्छिमी नक़्शे पर तामीर करना चाहते हैं। औरत की तालीम का सबसे मक़्सद वाक़ई उनके नज़दीक यही है कि वह कमाने के लायक हो जाए और उसके साथ मन लुभाने की कला को भी भरपूर जानती हो। ख़ानदान में औरत की सही हैसियत उनके नज़दीक यही है कि वह मर्द की तरह ख़ानदान का कमानेवाला मेम्बर बने और मिले-जुले बजट में अपना हिस्सा पूराअदा करे। सोसाइटी में औरत की असल जगह उनकी राय में यही है कि वह अपने हुस्न, अपनी साज-सज्जा और अपनी अदाओं से सामूहिक जीवन में मनमोहकता बढ़ा दे, अपने मिठे बोलों में गर्मी पैदा करे, अपने संगीत से कानों में रस भर दे, अपने नाच से रूहों कचे मस्त बना दे और थिरक-थिरक कर अपने जिस्म कर सारी ख़ूबियाँ आदम के बेटों को दिखाये, ताकि उनके दिल ख़ुश हों, उनकी निगाहें आनन्द लें और उनके ठंडे ख़ून में गर्मी आ जाए।

राष्ट्रीय जीवन में औरत का काम उनके ख़्याल में इसके सिवा कुछ नहीं है कि वह सोशल वर्क करती फिरे, म्युनिसिपिलटियों और कौंसिलों में जाए, कांफ्रेंसों और कांग्रेसों में शरीक हो, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मस्लों को सुलझाने में अपना वक़्त और दिमाग़ लगाये, वरज़िशों और खेलों में हिस्सा ले, तैरने और दौड़ और कूद-फांद और लम्बी-लम्बी उड़ानों में रिकार्ड तोड़ दे, ग़रज़ वह सब कुछ करे, जो घर से बाहर है और उससे कुछ न मतलब रखे, जो घर के भीतर है। इस ज़िंदगी को वे आदशं ज़िंदगी समझते हैं। उनके नज़दीक दुनिया की तरक़्क़ी का यही रास्ता है और इस रास्ते पर जाने में जितनी पुरानी अख़्लाक़ी सोचें रोक बन रही हैं, वे सब की सब सिर्फ़ बकवास और बिल्कुल ग़लत हैं। इस नयी ज़िंदगी के लिए पुराने अख़्लाक़ी मूल्यों (चीरश्र तरश्रींशी) को उन्होंने इसी तरह नये मूल्यों से बदल लिया है, जिस तरह यूरोप ने बदला है। भौतिक फ़ायदे और जिस्मानी लज़्ज़ते उनकी निगाह में ज़्यादा बल्कि असली क़द्र व क़ीमत रखती हैं और उनके मुक़ाबले में शर्म, पाकदामनी पाकी,

अख़्लाक़, मियाँ-बीवी की ज़िंदगी की आपसी वफ़ादारी, नस्ल की हिफ़ाज़त और इसी तरह की दूसरी तमाम चीज़ें, न सिर्फ़, बल्कि पुरानी और तारीक ख़्याली के ढकोसले हैं, जिन्हे ख़त्म किए बग़ैर तरक़्क़ी का क़दम आगे नहीं बढ़ सकता।

ये लोग असल में पच्छिमी दीन के सच्चे मोमिन हैं, पाश्चात्-धर्म के अनुयायी। और जिस सिद्धांत पर ये ईमान लाये उसको उन तमाम उपायों से, जो युरोप में इससे पहले अपनाये जा चुके हैं, पूर्वी देशों में फैलाने की कोशिश कर रहे हैं।[२६]

नया लिट्रेचर

सबसे पहले इनके लिट्रेचर को लीजिए जो दिमाग़ों को तैयार करने वाली सबसे बड़ी ताक़त है। इस कथित साहित्य   असल में अन्साहित्य   में पूरी कोशिश इस बात की की जा रही है कि नयी नस्लों के सामने इस नये अख़्लाक़ी फ़लसफ़े को सजा कर पेश किया जाए और पुराने अख़्लाक़ी मूल्यों को दिल व दिमाग़ की एक-एक रग से खींच कर निकाल डाला जाए, मिसाल के तौर पर मै यहाँ उर्दू के नये लिट्रेचर से एक नमूना पेश करूँगा

'हिन्दुस्तान की एक मशहूर मासिक पत्रिका में, जिसको अदबी हैसियत से इस मुल्क में एक दर्जा मिला हुआ है, एक लेख छपा है जिसका शीर्षक है, 'शीरीं का सबक़'। लेख लिखनेवाले एक ऐसे साहब हैं जो ऊँची तालीमवाले, अदब के हलक़ों में मशहूर और एक बड़े ओहदे पर काम कर रहे हैं, लेख का सार यह है कि एक नवजवान लड़की अपने गुरू से सबक़ पढ़ने बैठी है और पढ़ाई के दौरान अपने नवजवान दोस्त का मुहब्बत नामा गुरू के सामने पढ़ने और मश्विरा करने के लिए पेश फ़रमाती है। उस 'दोस्त' से उसकी मूलाक़ात किसी 'चाय पार्टी' में हो गयी थी। वहाँ 'किसी लेडी ने परिचय की रस्म अदा की।' उस दिन से मेल-जोल और ख़त लिखने-पढ़ने का सिलसिला शुरू हो गया। अब लड़की यह चाहती है कि गुरू उनके दोस्त के मुहब्बत नामों के 'अख़्लाक़ी जवाब' लिखना

---

[26] dV©_mZ pñW{V `h h¡ {H$, npíM_r gm_m{OH$ d gm§ñH¥$²{VH$ _yë`m| go à^mdJ«ñV BZ bmoJm| H$s H$mo{eem| H$mo nydu g_mO H$m_`m~ ~ZmVm Om ahm h¡$&

सिखा दें। गुरू कोशिश करता है कि लड़की को हर बेहूदगी से हटा कर पढ़ने का चाव पैदा करे। लड़की जवाब देती है कि

> 'पढ़ना तो मैं चाहती हूँ. मगर ऐसा पढ़ना जो मेरे जागते के सपनों की आरज़ूओं में कामियाब होने में मदद दे, न ऐसा पढ़ना, जो अभी से बुढ़िया बना दे।'
>
> गुरू पूछता है, 'क्या इन हज़रत के अलावा तुम्हारा और भी कोई नवजवान दोस्त है?'
>
> लायक़ शागिर्द जवाब देती है, 'कई हैं, पर इस नवजवान में यह ख़ूबी है कि बड़े मज़े से झिड़क देता है।'
>
> गुरू कहता है कि 'अगर तुम्हारे बाप को तुम्हारे इस ख़त लिखने-पढ़ने का पता चल जाए, तो क्या हो!'
>
> लड़की जवाब देती है, 'क्या बाप ने जवानी में इस क़िस्म के ख़त न लिखे होंगे? अच्छे-ख़ासे फ़ैशनेबुल हैं। क्या ताज्जुब है कि अब भी लिखते हों, ख़ुदा न करे बूढ़े नहीं हो गये हैं।'
>
> गुरू कहता है कि, 'अबसे पचास वर्ष पहले तो यह ख़्याल भी नामुम्किन था कि किसी शरीफ़ लड़की को मुहब्बत का ख़त लिखा जाए।'
>
> शरीफ़ज़ादी जवाब देती हैं, 'तो क्या उस ज़माने के लोग सिर्फ़ बदज़ातों से ही मुहब्बत करते थे, बड़े मज़े में थे उस ज़माने के बदज़ात और बड़े बदमाश थे उस ज़माने के शरीफ़।'

'शीरीं' के आख़िरी शब्द, जिन पर लेखक ने गोया अपने क़लम की तान तोड़ी है, ये हैं

'हम लोगों (यानी नव-जवानों) की दोहरी ज़िम्मेदारी है। वे ख़ुशियाँ, जो हमारे बुज़ुर्ग खो चुके हैं, ज़िंदा करें और वह ग़ुस्सा और झूठ की आदतें जो ज़िंदा हैं, उन्हें दफ़न कर दें।'

एक और नामी अदबी रिसाले में अबसे डेढ़ साल पहले एक छोटी कहानी 'पशेमानी' के शीर्षक से छापी थी, जिसका सार सीधे-सादे शब्दों में यह था कि एक शरीफ़ ख़ानदान की बिन-ब्याही लड़की एक आदमी से आंख उड़ाती है। अपने बाप की ग़ैर मौजूदगी और माँ के अनजाने में उस को चुपके से बुला लेती है। नाजायज़ ताल्लुक़ात के नतीजे में हमल क़रार पा जाता है, इसके बाद वह अपने इस नापाक काम को सही और ठीक ठहराने के लिए मन में यों दलील ले आती है

'मैं परेशान क्यों हूँ? मेरा दिल क्यों धड़कता है? क्या मेरा ज़मीर मुझे मलामत करता है? क्या मैं अपनी कमज़ोरी पर शर्मिन्दा हूँ? शायद हाँ। लेकिन उस रोमानी चांदनी रात की दास्तान तो मेरी ज़िंदगी की किताब में सुनहरे शब्दों में लिखी हुई है। जवानी के मस्त लम्हों की उस याद को तो अबभी मैं अपना सबसे ज़्यादा प्यारा ख़ज़ाना समझती हूँ। क्या मैं इन लम्हों को वापस लाने के लिए अपना सब कुछ देने के लिए तैयार नहीं?'

'फिर क्यों मेरा दिल धड़कता है? क्या गुनाह के डर से? क्या मैंने गुनाह किया' नहीं, मैंने गुनाह नहीं किया। मैंने किसका गुनाह किया? मेरे गुनाह से किसको नुक़्सान पहुँचा? मैंने तो क़ुर्बानी की, क़ुर्बानी करती, गुनाह से मैं नहीं डरती, लेकिन शायद मैं इस चुड़ैल समाज से डरती हूँ, उसकी कैसी-कैसी शक भरी नज़रें मुझपर पड़ती हैं।' 'आख़िर मैं इस से क्यों डरती हूँ? अपने गुनाह की वजह से? लेकिन मेरा गुनाह ही क्या है? जैसा मैंने किया, ऐसा समाज की कोई और लड़की न करती? वह सुहानी रात और वह अकेलापन, वह कितना सुन्दर था, उसने कैसे मेरे मूँह पर अपना मूँह रख दिया और अपनी गोद में मुझे खींच लिया, भेंच लिया। उफ़, उसके गर्म और ख़ुश्बूदार सीने से मैं किस इत्मीनान से चिमट गयी। मैंने सारी दुनिया ठुकरा दी और अपना सब कुछ ऐश के लम्हों पर तज दिया, फिर क्या हुआ? कोई और क्या करता? क्या दुनिया की कोई औरत उस वक़्त उस को

ठुकरा सकती थी?' 'गुनाह? मैंने हरगिज़ गुनाह नहीं किया। मैं हरगिज़ शर्मिन्दा नहीं हूँ। मैं फिर वही करने को तैयार हूँ... पाकदामनी? पाकदामनी है क्या? सिर्फ़ कुंवारपना? या ख़्यालों की पाकीज़गी? मैं कुंवारी नहीं रही, लेकिन क्या मैंने अपनी पाकदामनी खोदी?' 'फ़सादी चुड़ैल सोसाइटी को जो कुछ करना हो कर ले। वह मेरा क्या कर सकती है? कुछ नहीं। मैं उसकी बेवक़ूफ़ी भरी उंगली उठाने से क्यों झेपूँ? मै उसकी कानाफूसी से क्यपें डरूँ? क्यों अपना चेहरा पीला करलूँ? मैं उसके बेकार के मज़ाक़ उड़ाने से क्यों मुँह छिपाऊँ? मेरा दिल कहता है कि मैंने ठीक किया, अच्छा किया, ख़ूब किया। फिर मैं क्यों चोर बनूँ? क्यों न खुल्लम-खुल्ला एलान कर दूँ कि मैंने ऐसा किया और ख़ूब किया?'

दलील जुटाने का यह तरीक़ा और सोचने का यह अन्दाज़ है जो हमारे ज़माने का नया साहित्यकार हर लड़की शायद ख़ुद अपनी बहन और बेटी को भी सिखाना चाहता है। उसकी तालीम यह है कि एक जवान लड़की को चांदनी रात में जो गरम सीना भी मिल जायें, उससे उस को चिमट जाना चाहिए, क्योंकि इस स्थिति में यही एक तरीक़ा मुम्किन है और जो औरत भी ऐसे हालात में हो, वह इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकती, यह काम गुनाह नहीं बल्कि क़ुर्बानी है और इससे पाकदामनी पर भी कोई आँच नहीं आती। भला ख़्यालात की पाकीज़गी के साथ कुंवारपना क़ुर्बान कर देने से भी कहीं पाकदामनी जाती होगी! इससे तो पाकदामनी में और बढ़ोत्तरी होती है, बल्कि यह एक ऐसा शानदचर कारनामा है कि एक औरत की ज़िंदगी में सुनहारी शब्दों से लिखा जाना चाहिए और उसकी कोशिश यह होनी चाहिए कि उसकी सारी किताब एक ऐसे ही सुनहरे शब्दों में लिखी हुई हो। रही सोसाइटी, तो वह अगर ऐसी पाकदामन औरतों पर हर्फ़ रखती है, तो वह फ़सादी और चुड़ैल है। क़ुसूरवार वह ख़ुद है कि ऐसी ईसार पेशा लड़कियों पर हर्फ़ रखती है, न कि वह लड़की जो एक रोमानी रात में किसी खुली गोद के अन्दर भींचे जाने से इंकार न करे। ऐसी ज़ालिम सोसाइटी, जो इतने अच्चे काम को बुरा कहती हैं हरगिज़ इस की हक़दार नहीं कि उससे डरा जाये और यह नेक काम करके उससे मुँह छिपाया जाए। नहीं, हर लड़की को एलानिया और बेबाकाना अख़्लाक़ की इस बड़ाई को ज़ाहिर करना चाहिए और ख़ुद शर्मिन्दा होने के बजाए हो सके तचे उलटा सोसाइटी को

शर्मिन्दा करना चाहिए यह हिम्मत कभी बाज़ार में बैठनेवाली वेश्याओं को भी नसीब न थी, क्योंकि इन अभागिनों के पास अख़्लाक़ की कोई ऐसी फ़लासफ़ी न थी, जो गुनाह को सवाब और सवाब को गुनाह कर देता। वक़्त की वेश्या पाकदामनी तो बेचती थी, पर अपने आपको ख़ुद ज़लील और गुनाहगार समझती थी पर अब नया लिट्रेचर हर घर की बहू और बेटी को पहले ज़माने की वेश्याओं से भी दस क़दम आगे पहुँचा देना चाहता है, क्योंकि यह बदमाशी व फ़ह्शकारी को सहार देने के लिए अख़्लाक़ का एक नया फ़लसफ़ा पैदा कर रहा है।

एक और मैग्ज़ीन में जिसको हमारे मुल्क के साहित्यिक क्षेत्रों में बड़ी लोकप्रियता मिली हुई है, एक कहानी 'देवर' के नाम से छपी है। लेखक एक ऐसे साहब हैं, जिनके मरहूम वालिद कचे औरतों के लिए बेहतरीन अख़्लाक़ी लिट्र ेचर पैदा करने का क्रेडिट मिला हुआ था और इसी ख़िदमत की वजह से शायद हिन्दुस्तान की उर्दू पढ़ानेवाली औरतों में सबसे ज़्यादा मक़्बूल बुज़ुर्ग थे।

इस कहानी में नवजवान साहित्यकार एक ऐसी लड़की के कैरेक्टर को ख़ुशनुमा बना कर अपनी बहनों के लिए नमूना के तौर पर पेश करते हैं, जो शादी से पहले ही अपने 'देवर' की भरपूर जवानी और शबाब के हंगामों का ख़्याल करके 'अपने जिस्म में झूर-झूरी' पैदा कर लिया करती और कुँवारपने से ही उसका नज़रिया यह था कि जो जवानी ख़ामोशी और सुकून के साथ गुज़र जाये, उस में और बुढ़ापे में कोई फ़र्क़ नहीं। मेरे नज़दीक तो जवानी के लिए हंगामें ज़रूरी हैं जिनका स्रोत हुस्न व इश्क़ का संघर्ष है। इस सोच और इन इरादचें को लिए हुए जब यह लड़की ब्याही गयी, तचे अपने दाढ़ीवाले शौहर को देख कर उस की भावनाओं पर ओस पड़ गयी और पहले से सोचे हुए नक़्शे के मुताबिक़ फ़ैसला कर लिया कि अपने शौहर के सगे भाई से दिल लगायेगी। चुनांचे बहुत जल्द ही इसका मौक़ा आ गया। शौहर साहब तालीम हासिल करने के लिए विलायत चले गये और उनके पीछे बीवी ने शौहर की और भाई ने भाई की ख़ूब दिल खोल कर और मज़े ले-ले कर ख़ियानत की। कहानीकार ने इस कारनामें को ख़ुद उस मुज्रिम की क़लम से लिखा है, वह अपनी सहेली को, जिस की अभी शादी नहीं हुई है, अपने तमाम करतूत अपनी क़लम से लिख कर भेजती है और वे तमाम मरहले ख़ूब खुल कर बयान करती है, जिससे गुज़र कर देवर और भाभी की यह आशनाई आख़िरी मरहले तक पहुँची। मन और देह की जितनी

स्थितियाँ औरत-मर्द के मिलने की हालत में वाक़े हो सकती हैं, उनमें से किसी एक को भी बयान करने से वह नहीं चूकती, बस इतनी कसर रह गयी है कि हमबिस्तरी की तस्वीर नहीं खींची गयी, शायद इस कोताही में भी यह बात नज़रों में होगी कि पढ़नेवाले और पढ़ने वालियों की कल्पना थोड़ासा कष्ट उठाकर ख़ुद ही उसकी ख़ानापुरी कर लेगी।

इस नये लिट्रेचर का, जिसके असंख्य नमूनों में से मात्र एक नमूना ही यहाँ प्रस्तुत किया गया, अगर फ्रांस के उस लिट्रेचर से मुक़ाबला किया जाए, जिसके कुछ नमूने हमने इससे पहले पेश किए हैं, तो साफ़ नज़र आयेगा कि यह क़ाफ़िला उसी रास्ते से उस मंज़िल की ओर जा रहा है, ज़िंदगी की उसी व्यवस्था के लिए ज़ेहनों को सोच के ऐतबार से भी और अख़्लाक़ी हैसियत से भी तैयार किया जा रहा है और ख़ास तौर से औरतों की तरफ़ तवज्जोह है, ताकि उनके अन्दर शर्म का कुछ अंश भी न छोड़ा।

नयी संस्कृति

यह नैतिक अवधारण और यह जीवन-दर्शन मैदान में अकेला नहीं है, इसके साथ पूंजीवादी सांस्कृतिक व्यवस्था और पाश्चात् लोकतंत्र के उसूल भी सामने आ गये हैं और ये ताक़तें मिल-जुल कर ज़िंदगी का वही नक़्शा बना रही हैं, जो पश्चिमी जगत में बन चुका है। सेक्स पर बहुत बुरे क़िस्म का गन्दा लिट्रेचर तैयार किया जा रहा है, जो स्कूलों और कालेजों के पढ़नेवालों और पढ़ने वालियों तक ज़्यादा से ज़्यादा पहुँचता है। नंगी तस्वीरें और बेहया औरतों की शक्लें हर अख़बार, हर रिसाले, हर घर और हर दुकान की ज़ीनत बन रही हैं। घर-घर और बाज़ार-बाज़ार ग्रामोफ़ोन के वे रिकार्ड बज रहे हैं, जिन में बड़े घटिया और गन्दे गीत भरे जाते हैं। सिनेमा का सारा कारोबार वासना भरी भावनाओं को भड़काने पर चल रहा है और परदे पर बेहयाई और गन्दगी को इतना सजा कर पेश किया जाता है कि हर लड़की और लड़के की निगाह में ऐक्टरों और ऐक्टरेसों की ज़िंदगी आदर्श बन कर रह जाती है। इन शौक़ और तमन्ना बढ़ानेवाले खेलों को देखकर औरतों और मर्दों के नवजवान जब तमाशा घर से निकलते हैं तो उन की बेचैन तमन्नाए हर ओर इश्क़ और रोमान के मौक़े ढूंढने लगती है। ये सब फ़ायदा उठाने की पूंजीवाद की अलग-अलग शक्लें हैं। ज़िंदगी की इसी पूंचीवादी व्यवस्था की वजह से बड़े शहरों में वे हालात तेज़ी के साथ पैदा होते चले जा रहे हैं, जिन में औरतों के लिए अपनी रोज़ी आप कमाना

ज़रूरी हो जाता है और इसी ज़ालिमाना व्यवस्था की मदद पर गर्भ-निरोध का प्रोपगंडा अपनी दवाओं और अपने सामानों के साथ मैदान में आ गया है।

आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था ने, जिस की बरकतें ज़्यादातर इंग्लैंड और फ़्रांस के वास्ते से पूर्वी देशों तक पहुँची हैं, एक ओर औरतों के लिए राजनीतिक और सामूहिक सरगर्मियों के रास्ते खोल दिये हैं, दूसरी ओर ऐसी संस्थाएं क़ायम की हैं, जिन में औरतों और मर्दों के गड्ड-मड्ड होने की शक्लें लाज़मी तौर से पैदा होती हैं और तीसरी तरफ़ क़ानून के बन्धन इतने ढीले कर दिये हैं कि बेहयाई केवल ज़ाहिर ही नहीं की जाती, बल्कि उस पर अमल करना भी अक्सर व बेशतर हालात में जुर्म नहीं है।

इन हालात में जो लोग खुले दिल के साथ ज़िंदगी के इस रास्ते पर जाने कच फ़ैसला कर चुके हैं, उन के चरित्र और उन के रहन-सहन में क़रीब-क़रीब पूरा इन्क़िलाब हो चुका है। उन की औरतें अब ऐसे पहनावों में निकल रही हैं कि हर औरत पर फ़िल्म ऐक्ट्रेस का धोखा होता है। उनके अन्दर पूरी बेबाकी पायी जाती है, बल्कि पहनावों का नंगापन और रंगों की शोख़ी, बनाव-सिंगार के एहतिमाम और एक-एक अदा से साफ़ मालूम होता है कि सेक्सी चुम्बक बनने के सिवा कोई दूसरा मक़सद उन औरतों की नज़र के सामने नहीं है। हया का यह हाल है कि नहाने का कपड़ा पहन कर मर्दों के साथ नहाना, यहाँ तक कि इस हाल में अपने फोटो खिंचवाना और अख़बारों में छपवा देना भी इस वर्ग की किसी शरीफ़ औरत के लिए शर्म की बात नहीं है, बल्कि शर्म का सवाल वहाँ सिरे से पैदा ही नहीं होता। नयी अख़्लाक़ी सोचों के हिसाब से इंसानी जिस्म के सब हिस्से बराबर हैं। अगर हाथ की हथेली और पाँव के तलवे को खोला जा सकता है, तो आख़िर शर्मगाह और पिस्तान की नोक ही को खोल देने में क्या हरज है? ज़िंदगी का मज़ा जिस के ज़ाहिर होने का नाम आर्ट है, उन लोगों के नज़दीक हर अख़्लाक़ी क़ैद से परे, बल्कि अपने आप में अख़्लाक़ का पैमाना है, उसी वजह से बाप और भाई उस वक़्त ख़ुशी और घमंड के मारे फूले नहीं समाते, जब उन की आँखों के सामने कुंवारी बेटी और बहन स्टेज पर नाच-गाना और माशुक़ाना अदाकारी के कमालात दिखा कर सैकड़ों जोशीले देखने और सुननेवालों से वाहवाही लूटती है। भौतिक कामयाबी, जिस का दूसरा नाम 'ज़िंदगी का मक़सद' है, उन की राय में हर उस मुम्किन चीज़ से ज़्यादा क़ीमती है, जिसे क़ुर्बान करके यह चीज़ हासिल की जा सकती हो। जिस लड़की ने इस

मक़्सद को हासिल करने की क़ाबिलियत और सोसाइटी में मक़्बूल होने की योग्यता जुटा ली, उसने अगर पाकदामनी गंवादी, तो गोया कुछ भी नहीं खोया, बल्कि सब कुछ पा लिया। इसी लिए यह बात किसी तरह उन की समझ में आती ही नहीं कि किसी लड़की का लड़के के साथ स्कूल या कालेज में पढ़ना या जवानी की हालत में अकेले तालीम हासिल करने के लिए यूरोप जाना आख़िर क्यों एतराज़ के क़ाबिल है।

पाश्चात्य-विशेषज्ञों से फैसला

ये हैं वे लोग, जो परदे पर सबसे ज़्यादा एतराज़ करते हैं। उनके नज़दवीक यह परदा एक ऐसी गिरी हुई, बल्कि इंतिहाई घटिया चीज़ है कि इस का मज़ाक़ उड़ा देना और फ़बतियाँ कस देना ही इसे रद्द करदेने के लिए काफ़ी दलील है। लेकिन यह रवैया बिल्कुल ऐसा ही है, जैसे कोई नक-कटा आदमी इंसानी चेहरे पर सिरे से नाक की ज़रूरत ही का क़ायल न हो, और इस वजह से वह हर उस आदमी का मज़ाक़ उड़ाए, जिस के चेहरे पर उसे नाक नज़र आये। इस तरह की जिहालत भरी बातों से सिर्फ़ जाहिल ही रोब खा सकता है। उनको, अगर वे अक़्ल से काम लें, यह समझना चाहिए कि हमारे और उनके दर्मियान असल में मूल्यों का बुनियादी मतभेद है। जिन चीज़ों को हम क़ीमती समझते हैं, वे उन के नज़दीक बे-क़ीमती हैं, इस लिए अपने मूल्यों के मेयार के लिहाज़ से जिस काम को हम ज़रूरी समझते हैं, वे यक़ीनन उन की निगाह में क़तई तौर पर ग़ैर-ज़रूरी, बल्कि बेकार की चीज़ ठहरना ही चाहिए, पर बुनियादी मतभेद की शक्ल में वह सिर्फ़ एक अक़्ल का कोरा आदमी ही हो सकता है, जो मतभेद की असल बुनियाद पर बात करने के बजाए छोटी-छोटी बातों पर हमला शुरू कर दे।

इंसानी मूल्यों के तै करने में फ़ैसला कर देनेवाली चीज़ अगर कोई है तो वे प्रकृति के क़ानून हैं। प्रकृति के क़ानूनों के लिहाज़ से इंसान की बनावट जिस चीज़ का तक़ाज़ा करे और जिस चीज़ में इंसान की भलाई और उस का हित हो, वही असल में क़द्र की हक़दार है। आओ इस मेयार पर जांच कर देख लें कि मूल्यों के मतभेद में हम सही रास्ते पर है या तुम? दलीलें जो कुछ तुम्हारे पास हों, तुम लाओं और जो दलीलें हम रखते हैं, उन्हें हम पेश करते हैं। फिर सीधे-सच्चे और अक़्ल से सोचने-समझनेवाले इंसानों की तरह देखो कि वज़न किस तरफ़ है। इस तरीक़े से अगर हम अपने मूल्यों के पैमाने को सही साबित कर दें, तो तुम्हें अख़्तियार है, चाहे इन मूल्यों को अपनाओं, जो अक़्ल और इल्म पर

आधारित हैं चाहे उन्ही मुल्यों के पीछे पड़े रहो जिन्हें सिर्फ़ नफ़्स की ख़्वाहिश की वजह से तुमने पसन्द किया है। पर इस दूसरी शक़्ल में तुम्हारी अपनी स्थिति इतनी कमज़ोर हो जाएगी कि हमारे तरीक़ों की हंसी उड़ाने के बजाए तुम ख़ुद हंसी उड़ाने के हक़दार बनकर रह जाओगे।

दूसरा गिरोह

इस के बाद हमारे सामने दूसरा गिरोह आता है। पहले गिरोह में तो ग़ैर-मुस्लिम और कथित मुसलमान, दोनों क़िस्म के लोग शामिल हैं। पर इस दूसरे गिरोह में तमाम मुसलमान शामिल हैं। इन लोगों में आजकल आधा-परदा और आधी बे-परदगी का एक अजीब माजून इस्तेमाल हो रहा है। ये जैसे बीच में लटके हुए लोग हैं, न इधर के हैं, न उधर के हैं। एक ओर तो ये अपने भीतर इस्लामी भावनाएं रखते हैं। अख़्लाक़, तह्ज़ीब, शराफ़त और अच्छे चरित्र की उन कसौटियों को मानते हैं, जिनको इस्लाम ने पेश किया है। अपनी औरतों को शर्म और पाकदामनी के ज़ेवरों से सजा हुआ और अपने घरों को अख़्लाक़ी गन्दगियों से पाक रखने के ख़्वाहिशमंद हैं और उन नतीजों को क़ुबूल करने के लिए तैयार नहीं हैं, जो पाश्चात्य रहन-सहन और संस्कृति के नियमों के पालन से पैदा हुए हैं और होने चाहिएं, पर दूसरी ओर रहन-सहन की इस्लामी व्यवस्था के नियमों को और क़ानूनों को तोड़कर कुछ रुकते, कुछ झिझकते उसी रास्ते की ओर अपनी बीवियों, बहनों, और बेटियों को लिये चले जा रहे हैं, जो पच्छिमी सभ्यता का रास्ता है। ये लोग इस ग़लफ़मी में हैं कि आधे पच्चिमी आधे इस्लामी तरीक़ों को जमा कर के ये सभ्यताओं के फ़ायदे और नफ़ा इकट्ठे कर लेंगे, यानी इनके घरों में इस्लामी अख़्लाक़ भी बचे रहेंगे, इन की ख़ानदानी ज़िंदगी की व्यवस्था भी बची रहेगी और इसके साथ इनका रहन-सहन अपने भीतर पच्छिमी रहन-सहन की बुराइयां नहीं, बल्कि सिर्फ़ उसकी मनमोहकता, उसकी लज़्ज़तों और उसके भौतिक फ़ायदों को जमा की लेगा, लेकिन एक तो अलग-अलग मक़्सदवाली और अलग-अलग बुनियादोंवाली सभ्यताओं की आधी-आधी शाखाएं काटकर पैवन्द लगाना ही ठीक नहीं, क्योंकि इस तरह के बे-जोड़ मेलसे दोनों के फ़ायदों के जमा होने के बजाए दोनों के नुक़्सानों के जमा हो जाने की ज़्यादा संभावना है। दूसरे यह भी अक़्ल और प्रकृति के ख़िलाफ़ है कि एक बार इस्लाम की मज़बूत अख़्लाक़ी व्यवस्था के बन्धन ढीली करने और लोगों को क़ानून तोड़ने का मज़ा दिला देने के बाद आप इस सिलसिले को उसी

हद पर रोक रखेंगे, जिस को आपने नुक़्सान से ख़ाली समझ रखा है। यह आधे नंगे पहनावों का रिवाज, यह ज़ीनत व आराइश का शौक़, यह दोस्तों की महफ़िलों में बेबाकी के इब्तिदाई सबक़, यह सिनेमा और नंगी तस्वीरों और इश्क़ी कहानियों से बढ़ती हुइम दिलचस्पी, यह पश्चिमी ढंग पर लड़कियों की तालीम बहुत मुम्किन है कि अपना फ़ौरी असर न दिखाये, बहुत मुम्किन है कि मौजूदा नस्ल उसके नुक़्सानों से बच जाए, लेकिन यह समझना भी कि आगे की नस्लें भी इससे बची रहेंगी, एक खुली नादानी है। संस्कृति और रहन-सहन में हर ग़लत तरीक़े की शुरूआत बहुत मासूम होती है, पर एक नस्ल से दूसरी नस्ल और दूसरी से तीसरी नस्ल तक पहुंचते-पहुंचते वही छोटी-सी शुरूआत एक भयानक ग़लती बन जाती है। ख़ुद यूरोप और अमरीका में भी जिन ग़लत बुनियादों पर रहन-सहन को नये सिरे से संगठित किया गया था, इसके नतीजे फ़ौरन नहीं हो गये थे, बल्कि इसके पूरे-पूरे नतीजे अब तीसरी और चौथी पीढ़ी में ज़ाहिर हुए हैं। पस यह पच्छिमी और इस्लामी तरीक़ों का मेल और यह आधी बे-परदगी असल में कोई मुस्तक़िल आश्र पायदार चीज़ नहीं है। असल में इसका फ़ितरी रुझान बहुत ज़्यादा पच्छिमवाद की ओर है और जो लोग इस तरीक़े पर चल रहे हैं, उनको समझ लेना चाहिए कि उन्होंने फ़िलहाल इस सफ़र की शुरूआत की है, जिसकी आख़िरी मंज़िल तक अगर वह नहीं तो उनकी औलाद और औलाद की औलाद पहुँचकर रहेगी।

असल सवाल

ऐसी हालत में क़दम आगे बढ़ानेसे पहले इन लोगों को ख़ूब सोच- विचार करके एक बुनियादी सवाल का फ़ैसला कर लेना चाहिए, जो थोड़े से शब्दों में नीचे दिया जा रहा है

क्या आप पच्छिमी रहन-सहन के इन नतीजों को क़ुबूल करने के लिए तैयार हैं, जो यूरोप और अमरीका में ज़ाहिर हो चुके हैं और जो रहन-सहन के इस तरीक़े के फ़ितरी और यक़ीनी नतीजे हैं? क्या आप इस को पसन्द करते हैं कि आपके समाज में भी वही वासना को भड़कानेवाला और वासना भरा हुआ माहौल पैदा हो? आप की क़ौम में भी इसी तरह बे-हयाई, ग़ैर-पाकदामनी और बे-शर्मी की बहुतात हो? गुप्त रोगों की वबाएं फैलें? ख़ानदान और घर की व्यवस्था बिखर जाए? तलाक़ और अलगाव का ज़ोर हो? नवजवान मर्द और औरतों आज़ादाना तौर पर अपनी वासना पूरी करने लगें? हमल के रोकने, हमल

के गिराने और औलाद के क़त्ल करनेसे नस्लें रुक जाएं? नवजवान लड़के और लड़कियाँ हदसे बढ़ी हुई वासनाओं में अपनी बेहतरीन अमली ताक़तों को बर्बाद और अपनी सोहबतों को ख़राब करें? यहाँ तक कि कमसिन बच्चों तक में वक़्त से पहले सेक्स भरे रुझान पैदा होने लगें और इससे उनके दिमाग़ी और जिस्मानी बढ़वार में शुरू ही से गड़बड़ी पैदा हो जाया करे?

अगर भौतिक फ़ायदों और लज़्ज़तों के लिए आप इन सब चीज़ों को गवारा करने के लिए तैयार हैं, तो बे-झिझक पाश्चिमी रास्ते पर तशरीफ़ ले जाइए और इस्लाम का नाम भी ज़ुबान पर न लाइए। इस रास्ते पर जाने से पहले आप को इस्लाम से ताल्लुक़ तोड़ने का एलान करना होगा, ताकि आप बाद में इस नाम को इस्तेमाल करके किसी को धोखा न दे सकें और आपकी रुसवाइयाँ इस्लाम और मुसलमानों के लिए खाने की वजह न बन सकें।

लेकिन अगर आप नतीजों को कुबूल करने के लिए तैयार नहीं हैं, अगर आपको एक ऐसी नेक और पाकीज़ा संस्कृति की ज़रूरत है, जिसमें अच्छे अख़्लाक़ और ख़ूबियाँ परवरिश पा सकें, जिसमें इंसान को अपनी अक़्ली और रूहानी और माद्दी तरक़्क़ी के लिए एक सुकून भरा माहौल मिल सके, जिस में औरत और मर्द हैवानी भावनाओं की ख़ललअंदाज़ी से बचा कर अपनी बेहतरीन क़ाबिलियत के मुताबिक़ अपने-अपने सांस्कृतिक कर्त्तव्य अंजाम दे सकें, जिस में संस्कृति की आधारशिला, यानी ख़ानदान, पूरी मज़बूती के साथ क़ायम हो, जिसमें नस्लें वची रहें और नस्ल की अपभ्रष्टता का फ़ित्ना पैदा न हो, जिस में इंसान की घरेलू ज़िंदगी, उस के लिए सुकून व राहत की जन्नत और उसकी औलाद के लिए मुहब्बत भरी तर्बियत का गहवारा और ख़ानदान के तमाम लोगों के लिए आपसी सहकारिता हो, तो इन मक़्सदों के लिए आपको रास्ते का रुख़ भी न करना चाहिए, क्योंकि वह बिल्कुल मुख़ालिफ़ दिशा को जा रहा है और पच्छिम की ओर हक़ीक़त में आप का मक़्सद यही हैं, तो आप को इस्लाम का रास्ता अपनाना चाहिए।

पर इस रास्ते पर क़दम रखने से पहले आप को उन हदों से आगे बढ़ते भौतिक फ़ायदों और लज़्ज़तों की तलब अपने दिलसे निकालनी होगी, जो पच्छिमी रहन-सहन के मनमोहक चमक-दमक को देख कर पैदा हो गयी हैं। उन सोचों और कामनाओं से भी दिमाग़ को निकालदेना होगा, जो यूरोप से उसने उधार ले रखी हैं। उन तमाम उसूलों और मक़्सदों को भी तलाक़ देना पड़ेगा, जो

पच्छिमी रहन-सहन और संस्कृति से लिए गये हैं। इस्लाम अपने अलग उसूल और मक़्सद रखता है। उसके अपने मुस्तक़िल सामाजिक सिद्धांत हैं। उसने वैसी ही रहन-सहन की एक व्यवस्था गढ़ी है, जैसा कि उसके मक़्सदों, उसके उसूलों और उसके सामाजिक सिद्दान्तों का फ़ितरी तक़ाज़ा है। फिर रहन-सहन की इस व्यवस्था की हिफ़ाज़त वह एक ख़ास डिसिपलिन और एक ख़ास ज़ाब्ते के ज़रिए से करता है, जिसको मुक़र्रर करने में हद दर्जे की हिक्मत और इंसानी मनोविज्ञान की पूरी हिदायत ध्यान में रखी गयी है, जिसके बिना रहन-सहन की व्यवस्था बिखराव और टूट-फूट से बची नहीं रह सकती। यह अफ़लातून के लोकतंत्र की तरह कोई काल्पनिक व्यवस्था (र्णौंळिर) नहीं है, बल्कि साढ़े तेरह सदियों के ज़बरदस्त इम्तिहान में पूरा उतर चुका है और इस लम्बी मुद्दत में किसी मुल्क और किसी क़ौम के अन्दर भी उसके असर की वजह से उन ख़राबियों का सौंवा हिस्सा भी ज़ाहिर नहीं हुआ है, जो पच्छिमी रहन-सहन के असर से सिर्फ़ एक सर्दी के अन्दर पैदा हो चुकी हैं। अत: अगर रहन-सहन की इस मज़बूत और आज़मायी हुई व्यवस्था से आप फ़ायदा उठाना चाहते हैं, तो आपको उसके नियम और उसके संयम की पूरी पाबंदी करनी होगी और यह हक़ आपको हरगिज़ हासिल न होगा कि अपनी अक्ल से निकाले हुए या दूसरों से सीखे हुए अधपके विचारों और बिना आज़माये हुए तरीक़ों को, जो रहन-सहन की इस्लामी व्यवस्था स्वभाव के बिल्कुल ख़िलाफ़ हों, ख़ामख़ाही उस में ठूसने की कोशिश करे।

तीसरा गिरोह चूँकि मूर्खों और ग़फ़लत के शिकार लोगों का है, जिन में ख़ुद सोचने-समझने और राय क़ायम करने की योग्यता ही नहीं है, इस लिए कि वह किसी तवज्जोह का हक़दार नहीं। बेहतर यही है कि हम उसे नज़रंदाज़ करके आगे बढ़ें।

प्रकृति के कानून

प्रकृति ने तमाम जीवों की तरह इंसान को भी 'जोड़ो' यानी दो ऐसे लिंगो में पैदा किया है, जो एक-दूसरे की ओर स्वाभाविक झुकाव रखते हैं। पर दूसरे जीवधारियों को जिस हद तक समझने की कोशिश की गई, उससे मालूम होता है कि उनमें इस लिंगीय (नर-मादा के) बटवारे और इस स्वाभाविक झुकाव का मक़्सद सिर्फ़ नस्ल को बाक़ी रखना है। इसीलिए उनमें यह झुकाव केवल इस हद तक रखा गया है, जो हर जाति को बाक़ी रखने के लिए ज़रूरी है और उसकी प्रकृति में ऐसी नपी-तुली ताक़त रख दी गई है जो काम-सम्बन्धनों में उसे मुक़र्रर हद से आगे नहीं बढ़ने देती। इसके ख़िलाफ़ इंसान में यह झुकाव बहुत ज़्यादा और तमाम दूसरे जीवों से बढ़ा हुआ है। इसके लिए वक़्त और मौसम की कोई क़ैद नहीं है। इसके स्वभाव में कोई ऐसी रोक लगाने वाली ताक़त नहीं है जो उसे किसी हद पर रोक दे। मर्द और औरत एक-दूसरे के लिए मुस्तक़िल झुकाव रखते हैं। उनके भीतर एक-दूसरे की ओर खिंचने-खिंचाने के बहुत ज़्यादा साधन जुटा दिए गए हैं। उनके मन में आपसी प्रेम और मुहब्बत की एक ज़बरदस्त भावना रख दी गई है। उनके जिस्म की बनावट और उसका सुडोलपन, रंग-रूप और उसके स्पर्श और उसके एक-एक अंग में विपरीत लिंग के लिए आकर्षण पैदा कर दिया गया है। उन की आवाज़, रफ़्तार, चाल-ढाल, अदा हर एक चीज़ में खींच लेने की ताक़त भर दी गई है और आस-पास की दुनिया में भी बहुत-सी ऐसी चीज़ें पैदा कर दी गई है जो दोनों की वासनाओं को उभारती और उन्हें एक-दूसरे की ओर खींचती हैं। हवा की सरसराहट, पनी का बहाव, घासों की हरियाली, फूलों की महक, चिड़ियों के चहचहे, गगन की घटायें, चांदनी रात की मिठास, मतलब यह कि प्रकृति के हुस्न की कोई भी अदा और कयनात की सुन्दरता की कोई भी छवि ऐसी नहीं है जो ज़ाहिर में या भीतर से इस को उभारने का साधन न बनती हो।

फिर इंसान की जिस्मानी व्यवस्था का जायज़ा लीजिए तो मालूम होगा कि इस में ताक़त का जो बहुत बड़ा ख़ज़ाना रखा गया है, वह एक ही वक़्त में ज़िंदगी की ताक़त भी है, अमल की ताक़त भी है और काम-संबंध की ताक़त भी। वही ग्रंथियां, जो उसके अंगो को जीवन-रस देती हैं और उसमें चुस्ती, ताक़त, अक़्ल और काम की ताक़त पैदा करती हैं, उन्हीं के सुपुर्द यह सेवा भी की गई है कि

उसमें काम-सम्बन्ध की ताक़त भी पैदा करें, इस ताक़त को हरकत में लाने वाली भावनाओं को उभारें, इन भावनाओं को भड़काने के लिए हुस्न, रूप, निखार और फबन की अलग-अलग चीज़ें जुटाएं और इन चीज़ों से आनन्द लेने की क्षमता उसकी आंखों, उसके कानों और उसकी सूंघने और छूने वाली इन्द्रियों, यहाँ तक कि उसकी कल्पना-शक्ति तक में जुटा दें।

प्रकृति की यही कारेंफ़रमाई इंसान की भीतरी ताक़तों में भी दिखाई देती है। उसके मन में जितनी उत्तेजक सबका नाता दो मज़बूत इरादों से होता है। एक वह इरादा जो उसे ख़ुद अपने वजूद की हिफ़ाज़त और अपनी निजी सेवा पर उभारता है, दूसरा वह इरादा जो विपरीत लिंग से ताल्लुक़ रखने पर मजबूर करता है। जवानी के दिनों में जबकि इंसान की अमली ताक़ते अपने शबाब पर होती हैं, यह दूसरा इरादा इतना मज़बूत होता है कि कभी-कभी वह पहले इरादे को भी दबा लेता है और इंसान इतना ज़्यादा उसका असर लेता है कि उसे अपनी जान तक गंवा देने और अपने आपको जानते-बूझते तबाही के गढ़े में डाल देने में कोई झिझक महसूस नहीं होती।

संस्कृति-रचना में यौनाकर्षण का असर

यह सब कुछ किस लिए है ? क्या सिर्फ़ नस्ल को बाक़ी रखने के लिए ? नहीं-क्योंकि इंसानी नस्ल को बाक़ी रखने के लिए मात्रा में नस्ल पैदा करने की भी ज़रूरत नहीं, जितनी मछली, बकरी या ऐसे ही दूसरे जानदारों के लिए है। फिर क्या वजह है कि प्रकृति ने सब जानदारों से ज़्यादा वासना इंसान में रखी है और उसके लिए सबसे ज़्यादा उभारने-उकसाने के साधन जुटा दिए हैं ? क्या यह सिर्फ़ इंसान के भोग-विलास और लज़्ज़त लेने क़ो मक़्सद नहीं बनाया है। यह तो इंसान और दूसरे जानदारों को किसी बड़े मक़्सद की सेवा पर मजबूर करने के लिए लज़्ज़त और मज़े को सिर्फ़ चाशनी के तौर पर लगा देती है ताकि वे इसे पराया नहीं, अपना काम समझ कर करें। अब सोचिए कि इस मामले में कौन-सा बड़ा मक़्सद प्रकृति के सामने है ? आप जितना सोचेंगे कोई और वजह इसके सिवा समझ में न आएगी कि प्रकृति, दूसरे जीवों से भिन्न, इंसानी नस्ल को सभ्य बनाना चाहती है। इसीलिए इंसान के दिल में काम-वासना का वह भाव रखा गया है, जो न केवल जिस्मानी मेल तथा नस्ल बढ़ाने ही का तक़ाज़ा करता है, बल्कि स्थाई सहवास, हार्दिक मिलाप और रूहानी लगाव की मांग भी करता है।

इसीलिए इंसान में यौन-भावना उसकी यौन-क्रिया-शक्ति से बहुत ज़्यादा रखी गई है। अगर उसी अनुपात बल्कि एक और दस के अनुपात वह नस्ल बढ़ाने में लगे, तो उसकी सेहत बिगड़ जाए और एक उम्र तक पहुंचने से पहले ही उसकी जिस्मानी ताक़तें खत्म हो जाएं। यह बात इस बात की खुली हुई दलील है कि मर्द-औरत में एक-दूसरे के लिए आकर्षण की बहुतात का मतलब यह नहीं है कि वह दूसरे जीवों से यौन-क्रिया करे, बल्कि इस का मक़्सद औरत और मर्द को एक-दूसरे के साथ बांधे रखना, और उनके आपसी ताल्लुक़ में मज़बूती पैदा करना है।

इसीलिए औरत के स्वभाव में यौनाकर्षण और वासना के साथ-साथ शर्म, हया, झिझक और रूकावट का माद्दा रखा गया है जो कम व बेश हरेक औरत में पाया जाता है। यह संकोच और झिझक का भाव अगरचे दूसरे जानदारों की मादाओं में भी दीख पड़ता है, परन्तु इसांन की औरत-जाति में यह बहुत ज़्यादा है और उसको शर्म व हया की भावनाओं से और ज़्यादा उभार दिया गया है। इससे भी मालूम होता है कि मर्द-औरत में एक-दूसरे के लिए खिंचाव का मक़्सद मुस्तक़िल ताल्लुक़ पैदा करना है, न यह कि हरेक खिंचाव का नतीजा यौन-क्रिया ही हो।

इसीलिए इंसान के बच्चे को तमाम बच्चों से ज़्यादा कमज़ोर और मजबूर पैदा किया गया है। दूसरे जानदारों से भिन्न, इंसान का बच्चा कई साल तक मां-बाप की हिफ़ाज़त और देख-रेख का मुहताज होता है और उस में अपने आप को संभालने और अपनी मदद आप करने की क़ाबिलियत बहुत देर में पैदा होती है। इस का मक़्सद यह है कि औरत मर्द का ताल्लुक़ सिर्फ़ वासना का ताल्लुक़ न रहे, बल्कि इस का नतीजा यह निकले कि वे आपस में जुड़े रहें, एक दूसरे का साथ दें और एक दूसरे की मदद करते रहें।

इसीलिए इंसान के दिल में औलाद के लिए मुहब्बत तमाम जानदारों से ज़्यादा रखी गयी है। दूसरे जानदार कुछ दिनों तक अपने बच्चों की देख-रेख करने के बाद उनसे अलग हो जाते हैं, फिर उनमें कोई नाता बाक़ी नहीं रहता, बल्कि वे एक-दूसरे को पहचानते भी नहीं। इसके ख़िलाफ़ इंसान शुरू के पालने-पोसने का समय बीत जाने के बाद भी औलाद की मुहब्बत के जाल में जकड़ा रहता है, यहां तक कि यह जुहब्बत औलाद की औलाद तक चलती रहती है और इंसान का स्वार्थी स्वभाव भी इस मुहब्बत के असर में इतना ज़्यादा

रहता है कि वह जो कुछ सिर्फ़ अपने लिए ही चाहता है, उससे कहीं ज़्यादा अपनी औलाद के लिए चाहता है, और उसके दिल में भीतर से यह उमंग पैदा होती है कि जहां तक हो सके, औलाद के लिए ज़िंदगी का अच्छे से अच्छा सामान जुटाए और अपनी मेहनतों के फल उनके लिए छोड़ जाए। इस ज़्यादा से ज़्यादा मुहब्बत के पैदा कर देने से प्रकृति का मक़्सद सिर्फ़ यही हो सकता है कि औरत और मर्द के वासना वाले ताल्लुक़ को एक मुस्तक़िल ताल्लुक़ में बदल दे, फिर उस मुस्तक़िल ताल्लुक़ को एक ख़ानदान जोड़ने का ज़रिया बनाए, फिर नातों-रिश्तों से मुहब्बत का सिलसिला बहुत से ख़ानदानों को शादी-विवाह के ताल्लुक़ से आपस में बाँधता चला जाए, फिर मुहब्बतों और महबूबों के जोड़ उनको एक साथ और मिल-जुल कर रहने-सहने पर मजबूर करे। इस तरह एक संस्कृति-व्यवस्था वजूद में आ जाए।

संस्कृति का बुनियादी मस्ला

इससे मालूम हुआ कि यह यौन-स्वभाव, जो इंसानी जिस्म की नस-नस और उसके दिल के कोने-कोने में रखा गया है और जिसकी मदद के लिए ज़्यादा बड़े पैमाने पर कायनात के कोने-कोने में उभारने वालीं चीज़ें जुटाई गई हैं, इसका मक़्सद मनुष्य की निजत्व को सामाजिकता पर उभारना है प्रकृति ने इस रूझान को इंसानी संस्कृति का असल प्रेरक बनाया है। इसी रूझान व खिंचाव के ज़रिए इंसान की दो जातियों औरत मर्द में लगाव पैदा होता है और फिर इस लगाव से सामाजिक ज़िंदगी की शुरूआत होती है।

जब यह बात साबित हो गई, तो यह बात भी स्वत: ज़ाहिर हो गई कि औरत-मर्द के ताल्लुक़ का मसला असल में संस्कृति का बुनियादी मसला है और इसी के सही या ग़लत हल पर संस्कृति का सुधार या बिगाड़, उसकी तरक़्क़ी या गिरावट और उसकी मज़बूती या कमज़ोरी टिकी हुई है। इंसान के इन दोनों हिस्सों में एक ताल्लुक़ हैवानी (या दूसरे शब्दों में ख़ालिस वासनाओं से भरा हुआ) है, जिस का मक़्सद इंसानी नस्ल को बाक़ी रखने के अलावा और कुछ नहीं और दूसरा ताल्लुक़ इंसानी है, जिस का मक़्सनद यह है कि दोनों मिल कर अपने-अपने स्वार्थों के लिए अपनी अपनी क़ाबिलिबतों के मुताबिक़ काम करें। इस काम के लिए मर्द-औरत का वासना भरा ताल्लुक़ उन्हें मिलाने का काम करता है और वे हैवानी तथा इंसानी मामले, दोनों मिल कर एक ही वक़्त में उनसे संस्कृति का कारोबार चलाने की सेवा भी लेते हैं और इस कारोबार को

जारी रखने के लिए अधिकतर व्यक्तियों को इकट्ठा करने की सेवा भी। संस्कृति का बनाव व बिगाड़ इस पर टिका हुआ है कि इन दोनों का मेल ठीक और संतुलित हो।

अच्छी संस्कृति के लिए ज़रूरी चीज़ें

आइए, अब हम इस मसले का जायज़ा लेकर यह मालूम करें कि अच्छी संस्कृति के लिए औरत और मर्द के हैवानी और इंसानी ताल्लुक़ में ठीक, सही और जंचे-तुले मेल की शक्ल क्या है और इस मेल पर असन्तुलन की किन-किन शक्लों के पैदा होने से संस्कृति में बिगाड़ पैदा हो जाता है।

१. यौन-भावना में बीच का रास्ता

सबसे अहम और ज़रूरी सवाल ख़ुद उस यौन-प्रेरणा का है कि उसे किस तरह क़ाबू में रखा जाए ? ऊपर बयान किया जा चुका है कि इंसान के भीतर यह रूझान तमाम जानदारों से ज़्यादा ताक़तवर है न सिर्फ़ यह कि इंसानी जिस्म के भीतर यौन-भाव पैदा करने वाली ताक़तें ज़्यादा तेज़ हैं, बल्कि बाहर भी इस फैली हुई कायनात में हर ओर अनगिनत वासना-उत्तेजक चीज़ें फैली हुई हैं। यह चीज़ जिसके लिए प्रकृति ने ख़ुद ही इतने इन्तिज़ाम कर रखे हैं, अगर इंसान भी अपनी तवज्जोह और नई- नई चीज़ें पैदा करने की ताक़त से काम लेकर उसके बढ़ाने और तरक़्क़ी देने की वज्हें जुटाने लगे और रहन-सहन का ऐसा तरीक़ा अपनाए, जिस में उस की वासना की प्यास बढ़ती चली जाए और फिर उस प्यास को बुझाने की आसानियां भी पैदा की जाती रहें, तो ज़ाहिर है कि फिर चाह भी हद से बहुत ज़्यादा आगे बढ़ जाएगी। इंसान की हैवानी प्रवृत्ति उसकी इंसानी प्रवृत्ति पर पूरी तरह छा जाएगी और यह हैवानियत उसकी इंसानियत और उसकी संस्कृति दोनों को खा जाएगी।

यौन-संबंध और उस मूल उत्प्रेरकों में से एक-एक चीज़ को प्रकृति ने लज़्ज़तदार बनाया है, पर जैसा कि हम पहले इशारा कर चुके हैं, प्रकृति ने यह लज़्ज़त की चाह सिर्फ़ अपने मक़सद यानी संस्कृति की तामीर के लिए लगाई है। इस चाह का हद से बढ़ जाना और उसी में इंसान का लग जाना न सिर्फ़ संस्कृति, बल्कि ख़ुद इन्सान की भी तबाही और बिगाड़ की वजह हो सकती है, हो रही है और बार-बार हो चुकी है। जो क़ौमें तबाह हो चुकी हैं, उन की निशानियां और

उन के इतिहास को देखिए, काम-वासना उनमें हद से आगे बढ़ चुकी है, उनके लिट्रेचर इसी क़िस्म के यौन-उत्तेजक लेखों से भरे पाए जाते हैं, उनके विचार, उन की कल्पनाएं, उनकी कविताएं, उनकी तस्वीरें, उनकी मूर्तियां, उनके इबादतख़ाने, उन के महल, सब के सब इसी पर गवाह हैं।

जो क़ौमें अब तबाही की ओर जा रही हैं, उन के हालात भी देख लीजिए। वे अपनी वासनाओं को आर्ट, साहित्य और ऐसे कितने ही सुन्दर नाम दे लें, पर नाम बदल जाने से हक़ीक़त नहीं बदला करती। यह क्या चीज़ है कि समाज में औरत को औरतों से ज़्यादा मर्द की सोहबत और मर्द को मर्द से ज़्यादा औरतों की सोहबत पसन्द है ? यह क्यों है कि औरतों और मर्दों में साज-सज्जा और बनने-संवरने का ज़ौक बढ़ता जा रहा है ? इसकी क्या वजह है मिली-जुली सोसाइटी में औरत का जिस्म लिबास से बाहर निकला पड़ता है? वह कौन-सी चीज़ है जिस की वजह से औरत अपने जिस्म के एक-एक हिस्से को खोल-खोल कर पेश कर रही है और मर्दों की ओर से 'कुछ और' का तक़ाज़ा है? इस की क्या वजह कि नंगी तस्वीरें, नंगी मूर्तियां और नंगे नाच सब से ज़्यादा पसन्द किए जाते हैं ? इसकी क्या वजह है कि सिनेमा में उस वक़्त तक मज़ा ही नहीं आता, जब तक इश्क़ व मुहब्बत की चाशनी न हो और उस पर यौनाचार व यौन-संबंध की बहुत-सी बातें बढ़ा न दी जाएं?

ये और ऐसे ही बहुत-सी बातें अगर काम-वासना नहीं ज़ाहिर करतीं, तो क्या ज़ाहिर करती हैं ? जिस संस्कृति में ऐसा असंतुलित कामुक वातावरण पैदा हो जाए, उस का अंजाम तबाही के सिवा और क्या हो सकता है ?

ऐसे माहौल में यौन-प्रेरणा में तेज़ी और भड़काने और उभारने वाली चीज़ों की वजह से ज़रूरी है कि नस्लें कमज़ोर हो जाएं, जिस्म और अक़्ल की ताक़तों की तरक़्क़ी रूक जाए, सोच और विचार में गन्दगी आ जाए,[२७] बेहयाई बढ़

[27] EH $SmŠQa {bIVm h¡
"~m{bµJ hmoZo H$m ewê$ H$m µO_mZm ~‹Sr Ah_ VãXrbr`m| Ho$ gmW AmVm h¡ & _Z Am¡a Xoh Ho$ ~hwV-go H$m_m| _| Bg dµŠV EH$ B§{µH$bm~r {ñW{V n¡Xm hmo OmVr h¡ Am¡a V_m_ h¡{g`Vm| go Am_ ~‹Tm¡Îmar hmoVr h¡$& AmX_r H$mo Cg dµŠV BZ VãXr{b`m| Ho$ ghZo Am¡a Bg ~‹Tm¡Îmar H$mo

जाए, गुप्त रोगों की बवाएं फैलें, हमल रोकने, हमल गिराने और बच्चों के क़त्ल जैसे आन्दोलन वजूद में आएं, मर्द और औरत जानवरों की तरह मिलने लगें, बल्कि प्रकृति ने उनके भीतर जो यौन-भावना तमाम जानदारों से बढ़ कर रखी है उस को वे प्रकृति के मक़सद के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करें और हैवानियत में तमाम

---

hm{gb H$aZo Ho$ {bE AnZr V_m_ VmµH$V Mm{hE hmoVr h¡ & Bgr dOh go ~r_m[a`m| Ho$ _wµH$m~bo H$s VmµH$V Cg µO_mZo _| AmX_r Ho$ ^rVa ~hwV H$_ hmoVr h¡ & Am_ ~‹Tm¡Îmar, A§Jm| H$s VaµŠµH$s Am¡a _Z d Xoh H$s VãXr{b`m| H$m `h b§~m A_b, {OgHo$ ~mX AmX_r ~ÀMo go OdmZ ~ZVm h¡, EH$ Eogm WH$m XoZo dmbm A_b h¡, {OgHo$ Xm¡amZ V{~`V H$‹Sr H$mo{eem| _| bJr hmoVr h¡ & Bg hmbV _| Cg na H$moB© µJ¡a-_m_ybr ~moP SmbZm Om`µO Zht, ˜mgVm¡a go goŠgr A_b Am¡a dmgZm ^ar ~mV| Vm| CgHo$ {bE V~mhr H$m gm_mZ h¢ &

gmBŠbmoOr (_Zmo{dkmZ) Am¡a gmo{e`mbmoOr (g_mO emñÌ) H$m _ehya O_©Z Am{b_ {bIVm h¡

"goŠgr A§Jm| H$m Vmëbwµ H$ My§{H$ bµÁµOV Am¡a OmoE Ho$ µJ¡a-_m_ybr ^‹SH$mdm| (Sensations) Ho$ gmW h¡, Bg dOh go `o A§J h_mao µOohZ H$s VmµH$Vm| _| go EH$ ~‹Sm {hñgm AnZr Amoa ItM boZo `m Xygao eãXm| _| CZ na SmH$m _ma XoZo Ho$ {bE h_oem V¡`ma ahVo h¢ & AJa BÝh| µJb~m hm{gb hmo OmE, Vmo `h AmX_r H$mo g§ñH¥$ {V H$s godm Ho$ ~OmE AbJ-AbJ bµÁµOV hm{gb H$aZo _| bJm X| & `h VmµH$Vda nmoµOreZ Omo CZ H$mo B§gmZr {Oñ_ _| hm{gb h¡, AmX_r H$s goŠgr qµOXJr H$mo µOam-gr µJµ\$bV _| gÝVw{bV hmbV go AgÝVwbZ H$s Amoa bo OmH$a µ\$m`Xo_§X go ZwŠgmZXoh ~Zm gH$Vr h¡ & Vmbr_ H$m g~ go Ah_ _µŠgX `h hmoZm Mm{hE {H$ Bg ˜Vao H$s amoH$-Wm_ H$s OmE &'

हैवानों से बाज़ी ले जाएं, यहां तक कि बन्दरों और बकरों को भी मात कर दें। निश्चय ही, ऐसी घोर हैवानियत इन्सानी संस्कृति और सभ्यता, बल्कि ख़ुद मानवता को भी तबाह कर देगी और जो लोग इसके शिकार होंगे उनकी गिरावट उनको ऐसी पस्ती में गिराएगी, जहां से वे फिर कभी न उठ सकेंगे।

ऐसा ही अंजाम उस संस्कृति का भी होगा जो दूसरी इन्तिहा (एींशाश) अपनाएगी। जिस तरह यौन-भावनाओं का सन्तुलित सीमा से निकल जाना नुक़्सानदेह है, उसी तरह उस को हद से ज़्यादा दबाना और कुचल देना भी नुक़्सानदेह है। संस्कृति की जो व्यवस्था इंसान को सन्यास और ब्रहमचर्य और रहवानियत की ओर ले जाना चाहती है, वह प्रकृति से लड़ती है और प्रकृति अपने मुक़ाबले में आजाने वाली किसी चीज़ से नहीं हारती, बल्कि ख़ुद उसी को तोड़ कर रख देती है। ख़ालिस सन्यास और रहबानियत का विचार तो ज़ाहिर है कि किसी संस्कृति की बुनियाद बन ही नहीं सकता, क्योंकि असल में तो वह संस्कृति और सभ्यता का ही इंकार है, हां राहिबाना विचारों को दिलों में बिठा कर संस्कृति-व्यवस्था में एक ऐसा माहौल ज़रूर पैदा किया जा सकता है, जिसमें यौन-संबंध को अपने आप में एक ज़लील, नफ़रत करने के क़ाबिल और घिनौनी चीज़ समझा जाए। इससे परहेज़ करने को अख़्लाक़ का आदर्श समझा जाए और हर मुम्किन तरीक़े से इस झुकाव को दबाने की कोशिश की जाए। पर यौन-भावनाओं का दबना असल में इन्सानियत का दबना है, वह अकेला नहीं दबेगा बल्कि अपने साथ इन्सान की ज़िहानत, अमल की ताक़त, हौसला, इरादा और हिम्मत व बहादुरी सब को लेकर दब जाएगा, उसके दबने से इन्सान की सारी ताक़तें ठिठुर कर रह जाएंगी, उसका ख़ून ठंडा और जम कर रह जाएगा, उसमें उभरने की कोई सलाहियत बाक़ी न रहेगी, क्योंकि इन्सान की सबसे बड़ी उत्प्रेरक शक्ति यही यौन- शक्ति है।

अत: यौन-भावना को इंतिहाओं से रोक कर बीच के रास्ते पर लाना और उसे एक मुनासिब क़ानून और ज़ाब्ते से बांधना एक अच्छी संस्कृति की पहली ज़िम्मेदारी है। सामूहिक ज़िंदगी की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि वह एक ओर असंतुलित (अलपींारश्र) उत्तेजना के उन सारे साधनों की उन को रोक दे, जिन को इन्सान ख़ुद अपने इरादे और अपनी लज़्ज़तपरस्ती से पैदा करता है और दूसरी ओर फ़ितरी (छींारश्र) उत्तेजना की तस्कीन व तृप्ति के लिए ऐसा रास्ता खोल दे जो ख़ुद प्रकृति की मंशा के मुताबिक़ हो।

२. ख़ानदान की बुनियाद

अब यह सवाल स्वत: ज़ेहन में पैदा होता है कि प्रकृति की मंशा क्या है ? क्या इस मामले में हम को बिल्कुल अंधेरे में छोड़

दिया गया है कि आंखें बन्द करके हम जिस चीज़ पर चाहें हाथ रख दें और वही प्रकृति का मंशा क़रार पा जाए ? या प्रकृति की बातों पर विचार करने से हम प्रकृति की मंशा तक पहुंच सकते हैं ? शायद बहुत से लोग पहली ही बात के क़ायल हैं और इसीलिए वे प्रकृति की बातों पर नज़र किये बग़ैर ही जिस चीज़ को चाहते हैं, प्रकृति की मंशा कह देते हैं, तो कुछ ही क़दम चल कर उसे यों मालूम होने लगता है जैसे प्रकृति आप ही अपनी मंशा की ओर साफ़ उंगली उठा कर इशारा कर रही है।

यह तो मालूम है कि तमाम जानदारों की तरह इन्सान को भी जोड़ा बनाने और उनके औरतों और मर्दों के दर्मियान आकर्षण पैदा करने से प्रकृति का पहला मक़्सद नस्ल का बाक़ी रखना है। लेकिन इन्सान से प्रकृति की मांग सिर्फ़ इतनी ही नहीं है, बल्कि वह इस से भी बढ़ कर कुछ दूसरी मांगें भी उससे करती है और थोड़ी सी कोशिश से हमें मालूम हो सकता है कि वे मांगें क्या हैं ? और किस शक्ल की हैं?

सबसे पहले जिस चीज़ पर हमारी नज़र पड़ती है, वह यह है कि तमाम जानदारों से भिन्न, इन्सान का बच्चा देख-भाल और परवरिश के लिए बहुत ज़्यादा वक़्त, मेहनत और तवज्जोह मांगता है। अगर उसको सिर्फ़ एक हैवान की हैसियत ही से लिया जाए, तब भी हम देखते हैं कि एक हैवान की हैसियत से अपनी ज़रूरत पूरी करने, यानी खाना खाने औरअपनी रक्षा के क़ाबिल होते-होते वह कई साल ले लेता है और शुरू के दो-तीन साल तक तो वह इतना बेबस होता है कि मां की बराबर तवज्जोह के बग़ैर वह ज़िंदा ही नहीं रह सकता।

लेकिन यह ज़ाहिर है कि इन्सान चाहे असभ्यता के कितने ही आरंभिक चरण में हो, बहरहाल निरा हैवान नहीं है। किसी न किसी स्तर की संस्कृति का होना बहरहाल उस की ज़िंदगी के लिए ज़रूरी है और यही चीज़ है जिसकी वजह से औलाद की परवरिश के स्वाभाविक तक़ाज़े पर दो और तक़ाज़ों की बढ़ौत्तरी ज़रूरी हो जाती है। एक यह कि बच्चे की परवरिश में संस्कृति के उन तमाम साधनों से काम लिया जाए, जो उसके पालने वाले को मिल सकें। दूसरे यह कि

बच्चे को प्रशिक्षण दिया जाए कि रहन-सहन के जिस माहौल में वह पैदा हुआ है, वहां संस्कृति के कारख़ाने को चलाने, और पिछले चलाने वालों की जगह लेने के लिए वह तैयार हो सके।

फिर संस्कृति जितनी ज़्यादा तरक़्क़ी पायी हुई और ऊंचे दर्जे की होती है, ये दोनों तक़ाज़े भी उतनी ही ज़्यादा भारी और बोझल होते चले जाते हैं। एक ओर औलाद पालने के ज़रूरी साधन बढ़ते जाते हैं और दूसरी ओर संस्कृति न सिर्फ़ अपने को ज़िंदा रखने के लिए अपने स्तर के अनुकूल अच्छे व सक्षम कार्यकर्ता मांगती है, बल्कि अपने पलने-बढ़ने के लिए यह मांग भी करती है कि हर नस्ल पहली नस्ल से बेहतर उठे, यानी दूसरे शब्दों में हर बच्चे का निगहबान उस को ख़ुद अपने आप से बेहतर बनाने की कोशिश करे उच्चतम त्याग, जो इन्सान से स्वयं उस के स्वार्थों की क़ुर्बानी मांगता है।

ये हैं इन्सानी प्रकृति की मांगें और ये मांगें पहले औरत हीं को संबोधित कर रही हैं। मर्द एक क्षण के लिए औरत से मिल कर हमेशा के लिए उस से और उस मुलाक़ात की ज़िम्मेदारी से अलग हो सकता है, लेकिन औरत को तो इस मुलाक़ात का क़ुदरती नतीजा वर्षों के लिए, बल्कि उम्र भर के लिए पकड़ कर बैठ जाता है। हमल क़रार पा जाने के बाद से कम से कम पांच वर्ष तक तो यह नतीजा उसका पीछा किसी तरह छोड़ता ही नहीं और अगर संस्कृति की सारी मांगें पूरी करनी हों, तो इसका मतलब यह है कि अगले पंद्रह साल तक वह औरत, जिसने एक लम्हे के लिए मर्द के साथ सोने का मज़ा लिया था, उस की ज़िम्मेदारियों का बोझ संभालती रहे। सवाल यह है कि एक मिले-जुले काम की ज़िम्मेदारी क़ुबूल करने के लिए अकेला एक फ़रीक किस तरह तैयार हो सकता है ? जब तक औरत को अपने काम में शरीक व्यक्ति की बेवफ़ाई के डर से निजात न मिले, जब तक उसे अपने बच्चे की परवरिश का पूरा इत्मीनान न हो जाए, जब तक उसे ख़ुद अपनी ज़िंदगी की ज़रूरतों के जुटाने के काम से भी बड़ी हद तक छूट न दे दी जाए, वह इतने भारी काम का बोझ उठाने पर कैसे तैयार हो जाएगी ? जिस औरत का कोई सिरधरा (झींशर्लींी, झींींळवशी) न हो, उस के लिए हमल तो यक़ीनन एक दुर्घटना, एक मुसीबत, बल्कि एक ख़तरनाक बला है, जिस से छुटकारा पाने की ख़्वाहिश उसमें फ़ितरी तौर पर पैदा होनी ही चाहिए। आख़िर वह उस का किस तरह स्वागत कर सकती है ?

यक़ीनी तौर पर यह ज़रूरी है अगर नस्ल का बाक़ी रखना और संस्कति का क़ायम रहना तथा उन्नति करना ज़रूरी है कि जो मर्द जिस औरत को बोझल करे, वही इस बोझ को संभालने में उसका शरीक भी हो, पर इस शिर्कत पर उसे राज़ी कैसे किया जाए ? वह तो फ़ितरी तौर पर स्वार्थी है, जहां तक नस्ल को बाक़ी रखने की फ़ितरी ज़िम्मेदारी का ताल्लुक़ है, उसके हिस्से का काम तो उसी लम्हे पूरा हो जाता है, जब कि वह औरत को बोझल बना देता है, इसके बाद वह बोझ अकेले औरत के साथ लगा रहता है और मर्द उस से आज़ाद ही रहता है। जहां तक यौन-आकर्षण का ताल्लुक़ है, वह भी उसे मजबूर नहीं करता कि उसी औरत के साथ जुड़ा रहे। वह चाहे तो उसे छोड़ कर दूसरी और दूसरी को छोड़ कर तीसरी से ताल्लुक़ पैदा कर सकता है और हर ज़मीन में बीज फेंकता फिर सकता है। इसलिए अगर यह मस्ला उस की मर्ज़ी पर छोड़ दिया जाए, तो कोई वजह नहीं कि वह ख़ुशी के साथ इस भार को संभालने के लिए तैयार हो जाए आख़िर कौन-सी चीज़ उसे मजबूर करने वाली है कि वह अपनी मेहनतों का फल उस औरत और उस बच्चे पर लगाए ? क्यों वह एक दूसरी सुंदर युवती को छोड़ कर उस पेट फूली औरत से अपना दिल लगाए रखे ? क्यों वह हाड़-मांस के एक बेकार लोथड़े को अनायास अपने ख़र्च पर पाले ? क्यों उस की चीख़ों से अपनी नींद हराम करे ? क्यों इस छोटे से शैतान के हाथों अपना नुक़्सान कराए, जो हर चीज़ को तोड़ता-फोड़ता और घर भर में गन्दगी फैलाता फिरता है और किसी की सुन कर नहीं देता ?

प्रकृति ने किसी हद तक इस मसले के हल पर ख़ुद भी ध्यान दिया है, उस ने औरत में हुस्न, मिठास, मन लुभाने की ताक़त और मुहब्बत के लिए त्याग और बलिदान की क्षमता पैदा की है, ताकि इन हथियारों से मर्द के स्वार्थ भरे अपनेपन को जीत सके और उसे अपना क़ैदी बना ले। उस ने बच्चे के अन्दर मोह लेने की एक अनोखी ताक़त भर दी है, ताकि वह अपनी कष्टदायक, हरकतों के बावजूद मां-बाप को अपनी मुहब्बत के जाल में गिरफ़्तार रखे, पर सिर्फ़ यही चीज़ें ऐसी नहीं हैं उन का ज़ोर इंसान को अपने अख़्लाक़ी, फ़ितरी और रहन-सहन की ज़िम्मेदारियों को अदा करने के लिए अपने आप वर्षों नुक़्सान, तक्लीफ़ और क़ुर्बानी सहन करने पर मजबूर कर सके। आख़िर इन्सान के साथ उस का वह हमेशा का दुश्मन शैतान भी तो लगा हुआ है, जो उसे स्वाभाविक रास्ते से हटाने की हर वक़्त कोशिश करता रहता है, जिस की मक्कारी के थैले में हर

ज़माने और हर नस्ल के लोगों को बहकाने के लिए तरह-तरह की दलीलों और चावों का अनंत ख़ज़ाना भरा हुआ है।

यह धर्म का चमत्कार है कि वह इन्सान मर्द और औरत दोनों को नस्ल और संस्कृति के लिए क़ुर्बानी पर तैयार करता है और इस स्वार्थी जानवर को आदमी बना कर त्याग के लिए तैयार कर देता है। वे ख़ुदा के भेजे हुए नबी ही थे, जिन्होंनें प्रकृति की मंशा को ठीक-ठीक समझ कर औरत और मर्द के दर्मियान ताल्लुक़ और रहन-सहन में आपसी मदद की सही शक्ल, निकाह (विवाह) तज्वीज़ की। उन्हीं की तालीम व हिदायत से दुनिया की हर क़ौम और धरती के कोने-कोने में निकाह का तरीक़ा जारी हुआ। उन्हीं के फैलाए हुए अख़्लाक़ी उसूलों से इन्सान के अन्दर इतनी रूहानी सलाहियत पैदा हुई कि वह इस सेवा की तक्लीफ़ें और नुक़्सान सहे, वरना तो, मां और बाप से ज़्यादा बच्चे का दुश्मन और कोई नहीं हो सकता था। नबियों के क़ायम किये हुए सामाजिक नियमों से पारिवारिक व्यवस्था की नींव पड़ी, जिसकी मज़बूत पकड़ लड़कों और लड़कियों को इस ज़िम्मेदाराना ताल्लुक़ और सहकारिता व सहवास पर मजबूर करती है, वरना जवानी के हैवानी तक़ाज़ों का ज़ोर इतना सख़्त होता है कि सिर्फ़ अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारी का एहसास किसी बाहरी डिसिपलिन के बग़ैर उन को वासना की आज़ादाना पूर्ति से न रोक सकता था। वासना की भावना अपने आप में समाज-विरोधी (अपींळ डेलळरश्र) है। स्वार्थ व्यक्तिवाद और निराज (अपरीलहू) का रूझान रखने वाली भावना है। इसमें ठहराव नहीं, इसमें ज़िम्मेदारी का एहसास नहीं, यह सिर्फ़ वक़्ती आनंद पाने के लिए उभारती है। इस राक्षस को क़ाबू में करके इस से सामाजिक ज़िंदगी की उस ज़िंदगी की जो सब्र, ठहराव, मेहनत, क़ुर्बानी, ज़िम्मेदारी और निरंतर परिश्रम चाहती है ख़िदमत लेना कोई आसान काम नहीं। वह विवाह का क़ानून और ख़ानदान की व्यवस्था ही है जो इस दैत्य को शीशे में उतार कर उससे शरारत और अव्यवस्था की एजेंसी छीन लेती है और मर्द और औरत को उस स्थायी सहकारिता का एजेंट बना देती है जो सामूहिक ज़िंदगी को बनाने-संवारने के लिए ज़रूरी है। वह न हो तो इंसान सामूहिक जीवन ख़त्म हो जाए, इन्सान हैवान की तरह रहने लगे और आख़िरकार इन्सानी नस्ल इस दुनिया से ग़ायब हो जाए।

अत:, यौन-भावना को निराज और असन्तुलन से रोक कर उसकी स्वाभाविक मांगों की पूर्ति के लिए जो रास्ता ख़ुद प्रकृति चाहती है कि खोला

जाए, वह सिर्फ़ यही है कि औरत और मर्द के दर्मियान विवाह की शक्ल में लगाव और ताल्लुक़ हो और इस लगाव से ख़ानदान की व्यवस्था की बुनियाद पड़े। संस्कृति के बड़े कारख़ाने को चलाने के लिए जिन पुर्ज़ों की ज़रूरत है, वे ख़ानदान के इसी छोटे कारख़ाने में तैयार किए जाते हैं। यहाँ लड़कों और लड़कियों के जवान होते ही कारख़ाने के इन्तिज़ाम करने वालों को ख़ुद ही यह चिन्ता लग जाती है कि यथासंभव उनसे ऐसे जोड़ लगायें, जो एक दूसरे के लिए ज़्यादा मुनासिब हों, ताकि उनके मिलाप से ज़्यादा से ज़्यादा बेहतर नस्ल पैदा हो सके। फिर उन से जो नस्ल निकलती है, उस कारख़ाने का हर कार्यकर्त्ता अपने दिल के सच्चे जज़्बे से कोशिश करता है कि उस को जितना बेहतर बना सकता हो, बनाए। ज़मीन पर अपनी ज़िदगी का पहला क्षण शुरू करते ही बच्चे के आस-पास मुहब्बत, ख़बरगीरी, हिफ़ाज़त और तर्बियत का वह माहौल मिलता है, जो उसके आगे बढ़ने के लिए अमृत जैसा है। हक़ीक़त में ख़ानदान ही में बच्चे को ऐसे लोग मिल सकते हैं, जो उससे न सिर्फ़ मुहब्बत करने वाले हों, बल्कि जो अपने दिल की उमंग से यह चाहते हों कि बच्चा जिस स्तर पर पैदा हुआ है, उससे ऊंचे स्तर पर पहुंचे।

दुनिया में सिर्फ़ मां और बाप ही के भीतर यह भावना पैदा हो सकती है कि वे अपने बच्चे को हर लिहाज़ से ख़ुद अपने-से बेहतर हालत में और अपने से बढ़ा हुआ देखें। इस तरह वे बिना इसादे के ही, अनजाने तौर पर अगली नस्ल को मौजूदा नस्ल से बेहतर बनाने और इंसानी तरक़्क़ी का रास्ता प्रशस्त करने की कोशिश करते हैं। उनकी इस कोशिश में स्वार्थ का निशान तक नहीं होता। वे अपने लिए कुछ नहीं चाहते, वे बस अपने बच्चे का हित चाहते हैं और उसके एक कामियाब और अच्छे इंसान बन कर उठने ही को अपनी मेहनत का पूरा बदला समझते हैं। ऐसे मुख़्लिस कारकुन (ड्रलींीशीं) और ऐसे बे-ग़रज़ सेवक (थींझशीं) ख़ानदान के इस कारख़ाने के बाहर कहां मिलेंगे, जो इन्सानी नस्ल की बेहतरी के लिए न सिर्फ़ बिना मुआवज़ा मेहनत करें, बल्कि अपना वक़्त, अपना आराम, अपनी ताक़त व क़ाबिलियत और अपनी मेहनत की कमाई, सब कुछ इस सेवा में लगा दें ? जो उस चीज़ पर अपनी हर क़ीमती चीज़ क़ुर्बान करने के लिए तैयार हों, जिस का फल दूसरे खाने वाले हैं ? जो अपनी मेहनतों का बदला सिर्फ़ इसे समझें कि दूसरों के लिए उन्होंने बेहतर कार्यकर्त्ता और सेवक पैदा किए? क्या इससे ज़्यादा पवित्र और उत्कृष्ट संस्था में कोई दूसरा भी है?

हर साल इन्सानी नस्ल को अपने अस्तित्व के लिए और इन्सानी संस्कृति को अपने बराबर जारी रहने से लिए ऐसे लाखों और करोड़ों जोड़ों की ज़रूरत होती है जो अपनी ख़ुशी से अपने आपको इस ख़िदमत और इसकी ज़िम्मेदारियों के लिए पेश करें और निकाह करके इस क़िस्म के और कारख़ानों की बुनियाद डालें। यह शानदार कारख़ाना जो दुनिया में चल रहा है, इसी तरह फल और बढ़ सकता है कि इस क़िस्म के सेवक बराबर सेवा के लिए उठते रहें और इस कारख़ाने के लिए काम के आदमी जुटाते रहें। अगर नई भर्ती न हो और क़ुदरती वज्हों से पुराने कार्यकत्ता बेकार होकर हटते जाएं, तो काम के आदमी कम और कमतर होते जाएंगे और एक दिन ज़िंदगी का यह बाजा बे-राग होकर रह जाएगा। हर आदमी जो इस संस्कृति की मशीन को चला रहा है, उसका कर्त्तव्य सिर्फ़ यही नहीं है कि अपने जीते जी उसको चलाए जाए, बल्कि यह भी है कि अपनी जगह लेने के लिए अपने ही जैसे लोगों को तैयार करने की कोशिश करे।

इस लिहाज़ से अगर देखा जाए तो निकाह की हैसियत सिर्फ़ यही नहीं है कि वह यौन-भावनाओं की तुष्टि व तस्कीन के लिए एक ही जायज़ शक्ल है, बल्कि असल में यह एक मिली-जुली ज़िम्मेदारी है, यह व्यक्ति पर समूह का स्वाभाविक हक़ है और व्यक्ति को इस बात का अख़्तियार हरगिज़ नहीं दिया जा सकता कि वह निकाह करने, न करने का फ़ैसला ख़ुद अपने लिए बचाये रखे। जो लोग बिना किसी उचित कारण के निकाह से इंकार करते हैं, वे समूह के निकम्मे व्यक्ति (झरीरीळींशी) बल्कि ग़द्दार और लुटेरे हैं। हर व्यक्ति जो ज़मीन पर पैदा हुआ है, उसने ज़िंदगी की पहली सांस लेने के बाद से जवानी की उम्र को पहुंचने तक इस असीम पूंजी से फ़ायदा उठाया है, जो पिछली नस्लों ने जुटाया था। उनकी क़ायम की हुई पारिवारिक व सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से ही उसको ज़िंदा रहने, बढ़ने, फलने-फूलने और पलने-बढ़ने का मौका मिला। इस बीच वह लेता ही रहा, उसने दिया कुछ नहीं। समूह ने इस उम्मीद पर उसकी अधूरी ताक़तों को पूरा कराने में अपनी पूंजी और अपनी ताक़त लगाई कि जब वह ख़ुद कुछ देने के क़ाबिल होगा, तो देगा, अब अगर वह बड़ा होकर अपनी निजी आज़ादी और ख़ुद-मुख़्तारी की मांग करता है और कहता है कि मैं सिर्फ़ अपनी ख़्वाहिशें पूरी करूंगा, पर इन ज़िम्मेदारियों और इन फ़र्ज़ों का बोझ न उठाऊंगा, जो इन ख़्वाहिशों से जुड़ी हुई हैं, तो असल में वह समूह के साथ ग़द्दारी और धोखेबाज़ी करता हैं, उस की ज़िंदगी का हर क्षण हो, तो इस मुज्रिम को

जेन्टिलमैन या लेडी या मुक़द्दस बुज़ुर्ग समझने के बजाए इस नज़र से देखे, जिस से वह चोरों डाकुओं और जालसाज़ों को देखती है। हम ने ख़ुद चाहा हो या न चाहा हो, बहरहाल हम उस तमाम पूंजी और भंडार के वारिस हुए हैं, जो हमसे पहले की नस्लों ने छोड़ा है। अब हम इस फ़ैसले में आज़ाद कैसे हो सकते हैं कि जिस साभाविक क़ानून के मुताबिक़ ये चीज़ें हम तक पहुंची हैं, उस की मांगों और लक्ष्य को पूरा करें या न करें जो इंसानी नस्ल की इस पूंजी और भंडार की वारिस हो? उसे संभालने के लिए दूसरे आदमी इसी तरह तैयार करें या न करें जिस तरह हम ख़ुद तैयार किए गए हैं?

३. यौन-अनाचार पर रोक

निकाह, और ख़ानदान की बुनियाद रखने के साथ-साथ यह भी ज़रूरी है कि निकाह के घेरे से बाहर वासना पूरी करने का दरवाज़ा सख़्ती के साथ बन्द किया जाए, क्योंकि इसके बग़ैर प्रकृति का वह लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता, जिसके लिए वह निकाह और ख़ानदान की बुनियाद डालने का तक़ाज़ा करती है।

पुरानी जाहिलियत की तरह इस नई जाहिलियत के दौर में भी अक्सर लोग व्यभिचार को एक प्राकृतिक काम समझते हैं और

निकाह उनके नज़दीक सिर्फ़ संस्कृति की ईजाद की हुई चीज़ों में से एक चीज़ है। उनका ख़्याल यह है कि प्रकृति ने जिस तरह हर बकरी को हर बकरे के लिए और हर कुतिया को हर कुत्ते के लिए पैदा किया है, उसी तरह हर औरत को हर मर्द के लिए पैदा किया है और स्वाभाविक तरीक़ा यही है कि जब ख़्वाहिश हो, जब मौक़ा मिल जाए और जब दोनों में से कोई भी दो व्यक्ति आपस में राज़ी हों, तो उनके दर्मियान उसी तरह वासना पूरी कर ली जाए, जिस तरह जानवरों में होता है। लेकिन सच तो यह है कि यह इन्सानी प्रकृति के बारे में बिल्कुल ग़लत सोच है। इन लोगों ने इन्सान को सिर्फ़ एक जानवर समझ लिया है[२८]। इसलिए जब कभी ये लोग प्रकृति का शब्द बोलते हैं, तो इस से उन का मतलब जानवरों की प्रकृति। जिस बिखरे हुए यौन-संबंध को ये प्राकृतिक कहते हैं, वह जानवरों के लिए तो ज़रूर प्राकृतिक है, पर इंसान के लिए हरगिज़ प्राकृतिक नहीं। वह न

[28] Bg {bE, "ZB© Om{hbr`V' Zo B§gmZ Ho$ {bE "gm_m{OH$ new' (Social Animal) H$m eãX ~Zm`m nŒHmeH

सिर्फ़ इन्सानी प्राकृति के ख़िलाफ़ है, बल्कि अपने आख़िरी नतीजों के एतबार से उस हैवानी प्रकृति के भी ख़िलाफ़ हो जाता है, जो इन्सान के अन्दर मौजूद है, इसलिए कि इन्सान के अन्दर इन्सानियत और हैवानियत और हैवानियत (मानवता और पशुता) दो अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं। असल में एक अस्तित्व के अन्दर दोनों मिल कर एक ही व्यक्तित्व बनाती हैं और दोनों के तक़ाज़े आपस में एक दूसरे के साथ इस तरह जुड़ जाते हैं कि जहां एक की मंशा से मुंह मोड़ा गया, दूसरी की मंशा भी अपने आप ख़त्म हो कर रह जाती है।

ज़ाहिर में तो व्यभिचार में आदमीं को ऐसा महसूस होता है कि यह हैवानी प्रकृति के तक़ाज़े को तो पूरा कर ही देती है, क्योंकि नस्ल बढ़ाने और बाक़ी रखने का मक़सद यौन-क्रिया से ही पूरा हो जाता है, चाहे वह निकाह के अन्दर हो या बाहर। लेकिन इससे पहले जो कुछ हम बयान कर चुके हैं, उस पर फिर एक निगाह डाल कर देख लीजिए, आप को मालूम हो जाएगा कि यह काम जिस तरह इंसानी प्रकृति के मक़सद को नुक़्सान पहुंचाता है, उसी तरह हैवानी प्रकृति के मक़सद को भी नुक़्सान पहुंचाता है। इंसानी प्रकृति चाहती है कि यौन-संबंध में मज़बूती और पायदारी हो, ताकि बच्चे को मां और बाप मिल कर पालें-पोसें और एक लम्बी मुद्दत तक मर्द न सिर्फ़ बच्चे की, बल्कि बच्चे की मां की भी देखभाल करे। अगर मर्द को यक़ीन न हो कि बच्चा उसी का है, तो वह उस की परवरिश के लिए क़ुर्बानी क्यों देगा, और तक्लीफ़ें नहीं सहेगा ? वह यह भी गवारा न करेगा कि बच्चा बड़ा होकर उस की छोड़ी हुई संपत्ति का वारिस हो। इसी तरह अगर औरत को यक़ीन न हो कि जो मर्द उसे बोझल बना रहा है, वह उस की और उसके बच्चे के पालने-पोसने की ज़िम्मेदारी लेने को तैयार है, तो वह गर्भाधान की मुसीबत उठाने के लिए तैयार ही न होगी। अगर बच्चे की परवरिश में मां और बाप साथ न दें, तो उस की शिक्षा-दीक्षा और उस की अख़्लाक़ी, ज़ेहनी और आर्थिक हैसियत कभी उस स्तर पर न पहुंच सकेगी, जिस से वह इंसानी रहन-सहन और संस्कृति के लिए हितकारी बन सके। ये सब इंसानी प्रकृति के तक़ाज़े हैं और जब इन तक़ाज़ों से मुंह मोड़ कर सिर्फ़ जानवरों (हैवानों) की तरह मर्द और औरत अस्थिर संबंध क़ायम करते हैं, तो वे ख़ुद हैवानी प्रकृति के तक़ाज़ों (यानी औलाद बढ़ाने और नस्ल बाक़ी रखने) से भी मुंह मोड़ जाते हैं, क्योंकि उस वक़्त नस्ल बाक़ी रखना और बढ़ाना उनकी नज़र में नहीं होता और नहीं हो सकता। उस वक़्त उनके दर्मियान यौन-संबंध सिर्फ़

वासना को पूरा करने और आनंद लेने के लिए होता है, जो प्रकृति की मंशा के बिल्कुल ख़िलाफ़ है।

नई जाहिलियत के ठेकेदार इस पहलू को ख़ुद भी कमज़ोर पाते हैं, इसलिए वे इस पर एक और दलील सामने लाते हैं। वे कहते हैं कि अगर समूह के दो व्यक्ति आपस में मिल कर कुछ क्षण आनंद व मनोरंजन में बिता दें, तो इस में आख़िर समाज का क्या बिगड़ता है कि वह इसमें दख़ल दे ? सोसाइटी उस समय तो ज़रूर दख़ल देने का हक़ रखती है, जबकी एक पक्ष दूसरे से ज़बरदस्ती करे या धोखे और फ़रेब से काम ले या किसी सामूहिक झगड़े की वजह बने, लेकिन जहां इन में से कोई बात भी न हो और सिर्फ़ दो व्यक्तियों के बीच आनंद लेने का ही मामला हो, तो सोसाइटी को उनके बीच में रोक बनने का क्या हक़ है ? लोगों के ऐसे प्राइवेट मामलों में भी अगर दख़ल दिया जाए तो निजी आज़ादी सिर्फ़ एक निरर्थक शब्द होकर रह जाएगा।

निजी आज़ादी की यह सोच अठारवीं और उन्नीसवी सदी की उन जिहालतों में से एक है, जिन का अंधकार शोध की पहली किरन फूटते ही ख़त्म हो जाती है। थोड़े-से सोच-विचार के बाद ही आदमी इस बात को समझ सकता है कि जिस आज़ादी की मांग व्यक्तियों के लिए की जा रही है, उसके लिए कोई गुंजाइश सामूहिक ज़िंदगी में नहीं है। जिसे ऐसी आज़ादी चाहिए, उसे जंगल में जाकर जानवरों की तरह रहना चहिए। इंसानी जमाव तो असल में ताल्लुक़ात और रिश्तों के ऐसे जाल का नाम है, जिसमें हर व्यक्ति की ज़िंदगी दूसरे बहुत-से लोगों के साथ जुड़ी हुई होती है, उन पर असर डालती है और उनसे असर क़ुबूल करती है। इस आपसी ताल्लुक़ में इंसान के किसी काम को भी सिर्फ़ निजी और बिल्कुल ही व्यक्तिगत नहीं कहा जा सकता। किसी ऐसे निजी काम के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता, जिस का असर कुल मिला कर पूरे समाज और समूह पर न पड़ता हो। अंगों और इन्द्रियों की बात तो दूर, दिल में छुपा हुआ कोई ख़्याल भी ऐसा नहीं जो हमारे अस्तित्व पर और उससे पलट कर दूसरों पर प्रभाव न डालता हो। हमारे दिल और शरीर की एक-एक हरकत के नतीजे हम से निकल कर इतनी दूर तक पहुंचते हैं कि हमारा ज्ञान किसी तरह उन्हें अपने घेरे में ले नहीं सकता। ऐसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि एक आदमी का अपनी किसी ताक़त को इस्तेमाल करना उस के अपने व्यक्तित्व के अलावा किसी पर असर नहीं डालता, इसलिए किसी को इस से कोई वास्ता नहीं और

उसे अपने मामले में पूरी आज़ादी हासिल होनी चाहिए। अगर मुझे यह आज़ादी नहीं दी जा सकती कि हाथ में लकड़ी लेकर जहां चाहूं घुमाऊं, अपने पांवों को हरकत देकर जहां चाहूं, घुस जाऊं, अपनी गाड़ी को जिस तरह चाहूं, चलाऊं, अपने घर में जितनी गन्दगी चाहूं, जमा कर लूं। अगर ये और ऐसे ही अनगिनत निजी मामले सामूहिक नियमों के पाबन्द होने ज़रूरी हैं, तो आख़िर मेरी वासना की ताक़त ही अकेले इस की हक़दार क्यों ठहराई जाए कि उसे किसी सामूहिक नियम का पाबन्द न बनाया जाए और मुझे बिल्कुल आज़ाद छोड़ दिया जाए कि उसे जिस तरह चाहूं, इस्तेमाल करूं ?

यह कहना कि एक मर्द और एक औरत आपस में मिल कर एक छिपी हुई जगह पर सब से अलग जो मज़ा लेते हैं, उसका कोई असर सामूहिक ज़िंदगी पर नहीं पड़ता, सिर्फ़ बचकानी बात है। असल में इस का असर सिर्फ़ उस समाज ही पर नहीं पड़ता, जिससे वे सीधे-सीधे मुताल्लिक़ हैं, बल्कि पूरी इंसानियत पर पड़ता है और इस का असर सिर्फ़ मौजूद लोगों ही पर नहीं पड़ता, बल्कि अगली नस्लों पर भी पड़ता है। जिस समाज और उस के आपसी ताल्लुक़ में पूरी इंसानियत बंधी हुई है, उससे कोई आदमी किसी हाल में, किसी छिपी और अलग-थलग जगह पर भी अलग नहीं है, बन्द कमरों में, दीवारों की हिफ़ाज़त में भी, वह उसी तरह सामूहिक जीवन से जुड़ी हुई है, जिस तरह बाज़ार या महफ़िल में है, जिस वक़्त वह अकेले में अपनी नस्ल बढ़ाने की ताक़त को एक वक़्ती और बे-नतीजा मज़ा लेने पर बर्बाद कर रहा होता है, उस वक़्त असल में वह सामूहिक ज़िंदगी में बिखराव फैलाने और नस्ल का हक़ मारने और समाज को अनगिनत नुक़्सान पहुंचाने में लगा होता है, चाहे इस नुक़्सान का ताल्लुक़ अख़्लाक़ से हो, धन-दौलत से हो या रहन-सहन से। वह अपनी ख़ुदग़रज़ी से उन तमाम सामूहिक संस्थाओं पर चोट लगाता है, जिनसे उस ने समूह का एक व्यक्ति होने की हैसियत से फ़ायदा तो उठाया, पर उनके क़ायम और बाक़ी रखने में अपना हिस्सा अदा करने से इंकार कर दिया। समूह ने म्युनिसिपैलटी से लेकर स्टेट तक, स्कूल से लेकर फ़ैज तक, कारख़ानों से लेकर ज्ञान भरी खोजों तक, जितनी भी संस्थाएं बना रखी हैं, सब इसी भरोसे पर क़ायम किये हैं कि हर व्यक्ति, जो उन से फ़ायदा उठा रहा है, स्थापना व उन्नति में अपना अपेच्छित योगदान देगा। लेकिन जब इस बेईमान ने अपनी वासना-शक्ति को इस तरह इस्तेमाल किया कि उस में नस्ल बढ़ाने और बच्चों की तर्बियत की ज़िम्मेदारियां

अदा करने की बिल्कुल नीयत ही न थी, तो उसने एक ही चोट में अपनी हद तक इस पूरी व्यवस्था की जड़ काट दी। उसने उस सामूहिक समझौते को तोड़ डाला, जिसमें वह ठीक अपने इंसान होने की हैसियत ही से शरीक था। उसने अपने ज़िम्में का बोझ ख़ुद उठाने के बजाए दूसरों पर डालने की कोशिश की। वह कोई शरीफ़ आदमी नहीं है, बल्कि एक चोर, ख़ियानत करने वाला और लुटेरा है। उसके साथ रियायत करना पूरी इंसानियत पर ज़ुल्म करना है।

सामूहिक ज़िंदगी में व्यक्ति की जगह क्या है, इस चीज़ को अच्छी तरह समझ लिया जाए, तो इस मामले में कोई शक बाक़ी नहीं रह सकता कि एक-एक ताक़त जो हमारे नफ़्स और जिस्म में भर दी गयी है, सिर्फ़ हमारे ज्ञान के लिए नहीं है, बल्कि पूरी इंसानियत के लिए हमारे पास अमानत है और हम उस में से हरेक के लिए पूरी इंसानियत के हक़ में जवाब-देह हैं। अगर हम ख़ुद अपनी जान को या अपनी ताक़तों में से किसी को बर्बाद करते हैं या अपनी ग़लतकारी से अपने आप को नुक़्सान पहुंचाते हैं, तो हमारे इस काम की असली हैसियत यह नहीं है कि जो कुछ हमारा था, उसको हमने बर्बाद किया या नुक़्सान पहुंचा दिया, बल्कि असल में उसकी हैसियत यह है कि पूरी इंसानी दुनिया के लिए जो अमानत हमारे पास थी उसमें हमने ख़ियानत की और अपनी हरकत से पूरी इंसानियत को नुक़्सान पहुंचाया। हमारा दुनिया में मौजूद होना ख़ुद इस बात की गवाही है कि दूसरों ने ज़िम्मेदारियों और तक्लीफ़ों का बोझ उठा कर ज़िंदगी का नूर हम तक पहुंचाया, तभी हम इस दुनिया में आ सके। फिर स्टेट की तंज़ीम (संगठन) ने हमारी जान की हिफ़ाज़त की, सेहत की हिफ़ाज़त के मुहकमें हमारी ज़िंदगी को बचाने में लगे रहे। लाखों-करोड़ों इंसानों ने मिल कर हमारी ज़रूरतें जुटाई, तमाम सामूहिक संस्थाओं ने मिल कर हमारी ताक़तों की संवारने और तर्बियत देने की कोशिश की और हमें वह कुछ बनाया जो हम हैं, क्या इन सब का यह जायज़ बदला होगा, क्या यह इंसाफ़ होगा कि जिस जान और जिन ताक़तों के वजूद में और पालने-बढ़ाने में दूसरों का इतना हिस्सा है, उसको हम बर्बाद कर दें या फ़ायदेमंद बनाने के बजाए बेकार बनाए ? आत्महत्या इसीलिए हराम है। हस्तमैथुन करने वाले को इसी वजह से दुनिया के सब से बड़े विवेकी (हज़रत मुहम्मद स.) ने ऐसा व्यक्ति कहा है, जिस पर लानत भेजी जानी चाहिए। कुकर्म इसी बुनियाद पर सब से भयानक जुर्म क़रार दिया गया है और व्यभिचार

भी इसी वजह से निज के मन बहलावे की चीज़ या ख़ुश वक़्ती नहीं है, बल्कि पूरी इंसानी जमाअत पर ज़ुल्म है।

ग़ौर कीजिए, व्यभिचार के साथ कितने सामूहिक ज़ुल्मों का क़रीबी और गहरा रिश्ता है।

१. एक व्यभिचारी सब से पहले अपने आपको गुप्त रोगों के ख़तरे में डालता है और इस तरह न सिर्फ़ अपनी जिस्मानी

ताक़तों की सामूहिक उपयोगिता में कमज़ोरी पैदा करता है, बल्कि समाज और नस्ल को भी नुक़्सान पहुंचाता है। सूज़ाक के बारे में हर डाक्टर आपको बता देगा कि पेशाब जारी रखने वाला यह घाव बहुत ही कम पूरी तरह सही होता है। एक बड़े डाक्टर का क़ौल है कि

'एक बार सूज़ाक हमेशा के लिए सूज़ाक।'

इस से जिगर, मसाना, गुप्तांग वग़ैरह भी कभी-कभी आफ़त में पड़ जाते हैं। गठिया और कुछ दूसरे रोगों की भी यह वजह बन जाता है। इससे स्थायी बांझपन पैदा हो जाने का ख़तरा हो सकता है और यह छूत का रोग भी होता है। रहा आतशक, तो किसे नहीं मालूम कि इस जिस्म की पूरी व्यवस्था ज़हर से भर जाती है। सिर से पांव तक कोई अंग, ऐसा नहीं जिसमें इस का ज़हर न फैल जाता हो। यह न ख़ुद रोगी की जिस्मानी ताक़तों को बर्बाद करता है, बल्कि एक आदमी से न जाने कितने आदमियों तक अलग-अलग ज़रियों से पहुंच जाता है,[२९] फिर इस की वजह से रोगी की औलाद और औलाद की औलाद तक बे-क़सूर सज़ा भुगतती है। बच्चों का अंधा, गूंगा, बहरा, अक़्ल से कोरा पैदा होना, आनन्द की उन कुछ घड़ियों का एक मामूली फल है, जिन्हें ज़ालिम बाप ने अपनी ज़िंदगी की क़ीमती पूंजी समझा था।

---

[29] gyµOmH$ ({g\$ {bg) Am¡a AmVeH$ (JZmo[a`m) Zm_H$ amoJm| na EH$ AmYw{ZH$ d¥{Õ ES²g (Aids) H$s h¡, {Og go nyar _mZdOm{V nŒ^m{dV, {M{ÝVV d ^`^rV h¡$&
nŒHmeH

२. गुप्त रोगों का तो हर व्यभिचारी का शिकार हो जाना यक़ीनी नहीं है, पर उन अख़्लाक़ी कमज़ोरियों से किसी का बचना मुम्किन नहीं, जो इस काम से अनिवार्यत: हैं। बेहयाई, फ़रेब कारी, झूठ, बद-नीयती, स्वार्थ, ख़्वाहिशों की ग़ुलामी, मन पर कन्ट्रोल की कमी, विचारों में आवारापन, तबियत में हरजाईपन और नावफ़ादारी, ये सब व्यभिचार के वे नैतिक दुष्प्रभाव हैं जो ख़ुद व्यभिचारी पर पड़ते हैं। जो आदमी इन दोषों को अपने भीतर पालता है, उसकी कमज़ोरियों का असर सिर्फ़ यौनाचार की हद तक नहीं रहता, बल्कि ज़िंदगी के हर हिस्से में उसकी ओर से यही तोहफ़ा समाज को मिलता है। अगर समाज में ये दोष ज़्यादा से ज़्यादा लोगों में पैदा हो गए हों, तो इनकी वजह से कला और साहित्य, मनोरंजन की चीज़ें और खेल, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग-धंधे, रहन-सहन और खान-पान, राजनीति और अदालत, फ़ौजी ख़िदमतें और देश का शासन, हर चीज़ कम या ज़्यादा उलट कर रहेगी। ख़ास तौर से तो व्यक्तियों के एक-एक नैतिक दोष का पूरी क़ौम की ज़िंदगी में ज़ाहिर होना यक़ीनी है। जिस क़ौम के बहुत-से लोगों के स्वभाव में कोई ठहराव न हो और जो क़ौम वफ़ा, क़ुर्बानी और आत्म-संयम की ख़ूबियां अपने भीतर न पाल-बढ़ा सके, उसकी राजनीति में ठहराव आख़िर आयेगा कहां से ?

३. व्यभिचार को जायज़ रखने के साथ यह भी ज़रूरी हो जाता है कि समाज में वेश्याओं का कारोबार जारी रहे। जो आदमी यह कहता है कि एक जवान मर्द को 'मन बहलाने' का हक़ हासिल है, वह मानों, साथ ही यह भी कहता है कि सामूहिक ज़िंदगी में एक बड़ी तादाद ऐसी औरतों की मौजूद रहनी चाहिए, जो हर हैसियत से इंतिहाई पस्ती और ज़िल्लत की हालत में हों। आख़िर ये औरतें अयेंगी कहां से ? इसी समाज ही में तो पैदा होंगी, बहरहाल किसी की बेटी और बहन ही तो होंगी, वे लाखों औरतें, जो एक-एक घर की मालकिन, एक-एक ख़ानदान की बुनियाद डालने वाली और कई-कई बच्चों की तर्बियत करने वाली बन सकती थीं, उन्हीं को तो लाकर बाज़ार में बिठाना पड़ेगा, ताकि म्युनिसिपैलटी के पेशाबख़ानों की तरह वे आवारामिज़ाज मर्दों के लिए टट्टी घर (ज़रूरत पूरी करने की जगह) बनें। उनसे औरत की तमाम शरीफ़ाना ख़ूबियां छीन ली जाएं, उन्हें अदा दिखाने की ट्रेनिंग दी जाए, उन्हें इस काम के लिए तैयार किया जाए कि अपनी

मुहब्बत, अपने दिल, अपने जिस्म, अपने हुस्न और अपनी अदाओं को हर क्षण एक नये ख़रीदार के हाथ बेचें और कोई फ़ायदेमंद और फलदायक ख़िदमत के बजाए तमाम उम्र मर्दों की नफ़्स-परस्ती के लिए खिलौना बनी रहें।[३०]

४. व्यभिचार को जायज़ कर देने से विवाह के सांस्कृतिक नियम को अनिवार्यत: नुक्सान पहुंचता है, बल्कि अंजाम यह होता है कि विवाह ख़त्म होकर बस व्यभिचार ही व्यभिचार रह जाता है। एक तो व्यभिचार का रूझान रखने वाले मर्दों और औरतों में यह ख़ूबी ही बहुत कम रह जाती है कि सही दम्पति रह कर ज़िंदगी गुज़ार सकें, क्योंकि जो बद-नीयती, बद-नज़री और आवारापन इस स्वभाव से पैदा होता है और ऐसे लोगों की भावनाओं में जो ठहराव की कमी और मनकी ख़्वाहिश पर क़ाबू न रखने की जो कमज़ोरी परवरिश पाती है, वह उन ख़ूबियों के लिए जानलेवा ज़हर है, जो एक कामियाब घरेलू ज़िंदगी के लिए ज़रूरी हैं। वे अगर पति-पत्नी के रिश्ते में बंधेंगे भी, तो उनके बीच, वह व्यवहार, वह सहयोग, वह आपसी भरोसा और वह मेहर व वफ़ा का ताल्लुक़ कभी मज़बूत न होगा, जिस से अच्छी नस्ल पैदा होती है और एक ख़ुशियों भरा घर वजूद में आता है। फिर जहां व्यभिचार की आसानियां हों, वहां अमली तौर पर यह नामुम्किन है कि विवाह का, संस्कृति को पालने वाला तरीक़ा क़ायम रह सके, क्योंकि जिन

---

[30] A~, AmYw{ZH$ `wJ _|, dh nwamZr doí`m-ì`dñWm, H$mµ\$s g§jmo{YV, "CÝZV' Am¡a ì`mnH$ hmo MwH$s h¡$& g_mMma-nÌm| _| Eogo {dkmnZm| H$s ^a_ma hmoVr h¡ {H$, h_mao Bg goÝQa, Bg hmoQb, Bg JoñQ hmCg, Bg _m{be Ka (Massage Centre) na AË`§V gw§Xa, AmH$f©H$, OdmZ, goŠgr `wd{V`m± CnbãY h¢ & h_mar godmE§ 24 KÊQo Ho$ {bE h¢ & AJñV 2004 _| EH$ amîQ´r` ñVa Ho$ g_mMma nÌ Zo ~‹So Jd© Ho$ gmW Xmo `wd{V`m| Ho$ {MÌm| Ho$ gmW, {dñVma nyd©H$ [anmoQ© Nmnr {H$ A~ ^maVr` H$Ý`mE± A_arH$m H$s "goŠg BÊSñQ´r' (doí`m-ì`dñWm) _| OJh ~ZmZo bJr h¢ &
nŒHmeH

लोगों को ज़िम्मेदारियां क़ुबूल किये बग़ैर मनोकामनाएं पूरी करने के मौक़े मिल रहे हों, उन्हें क्या ज़रूरत पड़ी है कि विवाह करके अपने सर पर भारी बोझ लाद लें ?

५. व्यभिचार के जायज़ कर देने और रिवाज पा जाने से न सिर्फ़ संस्कृति की जड़ कटती है, बल्कि ख़ुद इंसानी नस्त की भी जड़ कटती है। जैसा कि पहले ही साबित किया जा चुका है, स्वच्छंद यौन-संबंध में मर्द और औरत दोनों में से किसी की भी यह ख़्वाहिश नहीं होती और न ही हो सकती कि नस्ल को बाक़ी रखने की क़िदमत अंजाम दें।

६. व्यभिचार से नस्ल और समाज को अगर बच्चे मिलते भी हैं, तो हरामी बच्चे होते हैं। नसब में हराम व हलाल का अन्तर सिर्फ़ एक भावनात्मक चीज़ नहीं है, जैसा कि कुछ नादान लोग सोचते हैं, असल में बहुत सी हैसियतों से हराम का बच्चा पैदा करना ख़ुद बच्चे पर और पूरी इंसानी संस्कृति पर एक भारी ज़ुल्म है। एक तो ऐसे बच्चे का वीर्य ही उस हालत में क़रार पाता है, जबकि माँ और बाप दोनों पर ख़ालिस हैवानी भावनाएं छाई होती हैं। एक शादीशुदा जोड़े में यौन-क्रिया के वक़्त जो पाक इंसानी भावनाएं होती हैं, वे नाजायज़ ताल्लुक़ रखने वाले जोड़े को कभी मिल ही नहीं सकतीं। उनको तो ख़ालिस हैवानी जोश एक दूसरे से मिलाता है और उस वक़्त तमाम इंसानी ख़ूबियां हटी हुई होती हैं, इसलिए एक हरामी बच्चा अपने स्वभाव से अपने मां-बाप की हैवानियत ही का वारिस होता है। फिर वह बच्चा जिस का स्वागत करने के लिए न मां तौयार हो, न बाप, जो एक चाही गयी चीज़ की हैसियत से नहीं, बल्कि एक अचानक आ पड़ी मुसीबत की हैसियत से मां-बाप के बीच आया हो, जिसको बाप की मुहब्बत और उसके साधन आम तौर से न मिलें, जो सिर्फ़ मां की यकतरफ़ा तर्बियत पाए और वह भी ऐसी, जिसमें बे-दिली और बेज़ारी शामिल हो, जिस को दादा-दादी, नाना-नानी, चचा, मामूं और ख़ानदान वालों की सरपरस्ती हासिल न हो, वह बहरहाल एक अधूरा और ना-मुकम्मल इंसान ही बन कर उठेगा। न उसका सही कैरेक्टर बन सकेगा, न उसकी योग्यताएं फल-फूल सकेंगी, न उसकी तरक़्क़ी ही सही तौर पर हो सकेगी। वह ख़ुद भी अधूरा, बे-वसीला, बे-यार व मददगार और मज़्लूम होगा और संस्कृति के लिए भी किसी तरह

इतना फ़ायदेमंद न बन सकेगा, जितना वह हलाली होने की शक्ल में हो सकता था।

स्वच्छंद वासना-पूर्ति के हिमायती कहते है कि बच्चों की परवरिश और तालीम के लिए एक नेशनल (राष्ट्रीय) व्यवस्था होनी

चाहिए, ताकि बच्चों को उनके मां-बाप अपने आज़ादाना ताल्लुक़ से जन्म दें और क़ौम उनको पाल-पोस कर संस्कृति की ख़िदमत के लिए तैयार करे[३१]। इस तज्वीज़ से उन लोगों का मक़्सद यह है कि औरतों और मर्दों की आज़ादी और उनकी पहचान बची रहे, और उन के काम-वासनाओं को ब्याह की पाबन्दियों में जकड़े बग़ैर नस्ल बढ़ाने और बच्चों की तर्बियत करने का मक़्सद हल हो जाए, लेकिन यह अजीब बात है कि जिन लोगों की, मौजूदा नस्ल की पहचान इतनी प्यारी है, वे आगे की नस्ल के लिए क़ौमी तालीम या सरकारी तर्बियत का ऐसा सिस्टम तज्वीज़ करते हैं, जिनमें एक एक के व्यक्तित्व के फलने-फूलने की कोई शक्ल नहीं है। इस क़िस्म के एक सिस्टम में जहां हज़ारों लाखों बच्चे एक वक़्त, एक नक़्शे, एक नियत और एक ही ढंग पर तैयार किये जाएं, बच्चों का निजी व्यक्तित्व कभी उभर और निखर ही नहीं सकता। वहां तो उनमें ज़्यादा यहरंगी और बनावटी समानता पैदा होगी। इस कारख़ाने से बच्चे उसी तरह एक-सी पहचान लेकर निकलेंगे जिस तरह किसी बड़ी फैक्ट्री से लोहे

---

[31] A~ nmíMmV² Xoem| _| Eogo ham_r ~ƒm| Ho$ nmbZ-nmofU H$s ì`dñWm µH$m`_ hmo MwH$s h¡ & E{e`m..._w»`V: ^maV...A^r BVZr "CÝZVr' Zht H$a gH$m h¡ AV: `m Vmo J^©nmV Bg H$m g_mYmZ h¡, `m {\$a H$ht H$ht Eogo A§dm{NV `m ham_r ~ƒo, OÝ_ Ho$ Vwa§V ~mX Kmo¨Q H$a _ma {XE OmVo, ZJa nm{bH$m Ho$ Hy$‹SoXmZ, `m JQa _| \|H {XE OmVo h¢ & 2003 H$mo EH$ g_mMma nÌ-[anmoQ© Ho$ _wVm{~H$ `y. nr. Ho$ EH$ ZJa _| ~agmV AmZo go nhbo, ZJa nm{bH$m Ho$ bmoJ JQa H$s g\$mB© H$aVo hwE, AmíM`©M{H$V ah JE ZJadmgr ñVãY, {H$ JQa Ho$ AÝXa ZdOmV {eewAm| H$s H$B© g‹Sr Jbr bme| Am¡a hS²Sr Ho$ Tm±Mo {_bo & nŒHmeH

के पुर्ज़े एक जैसे ढले हुए निकलते हैं। इंसान के बारे में इन कम-अक़्ल लोगों की सोच कितनी पस्त और कितनी घटिया है। ये बाटा के जूतों की तरह इंसानों को तैयार करना चाहते हैं। इन को मालूम नहीं कि बच्चे के व्यक्तित्व को तैयार करना एक बड़ा नाज़ुक आर्ट है। यह आर्ट एक छोटी सी चित्रशाला ही में अंजाम पा सकता है, जहां चित्रकार की तवज्जोह एक-एक चित्र पर टिकी हुई हो। एक बड़ी फैक्ट्री में जहां किराए के मज़दूर एक ही ढंग का चित्र लाखों की तादाद में तैयार करते हों, यह आर्ट तबाह होगा, न कि तरक़्क़ी करेगा।

फिर क़ौमी तालीम व तर्बियत के इस सिस्टम में आप को बहरहाल ऐसे कार्यकर्त्ताओं की ज़रूरत होगी, जो समाज की ओर से बच्चों की परवरिश का काम संभालें और यह भी ज़ाहिर है कि इस ख़िदमत को अंजाम देने के लिए ऐसे ही कार्यकर्त्ता सही हो सकते हैं जो अपनी भावनाओं और ख़्वाहिशों पर क़ाबू रखते हों और जो ख़ुद नैतिक अनुशासन में बंधे हों, वरना वे बच्चों में नैतिक अनुशासन कैसे पैदा कर सकेंगे ? अब सवाल यह है कि ऐसे आदमी आप लाएंगे कहां से ? आप तो क़ौमी तालीम व तर्बियत का सिस्टम क़ायम ही इसलिए कर रहे हैं कि मर्दों और औरतों को अपनी ख़्वाहिश पूरी करने के लिए आज़ाद छोड़ दिया जाए। इस तरह जब आपने समाज में से नैतिक अनुशासन और ख़्वाहिशों को क़ाबू में रखने की ख़ूबी का बीज ही मार दिया, तो अंधों की बस्ती में आंखों वाले मिलेंगे कहां से कि वे नई नस्लों को देख कर चलना सिखाएं।

७. व्यभिचार के ज़रिए से एक स्वार्थी इंसान जिस औरत को बच्चे की मां बना देता है, उस की ज़िंदगी हमेशा के लिए तबाह हो जाती है और उस पर ज़िल्लत, आम नफ़रत और मुसीबतों का ऐसा पहाड़ टूट पड़ता है कि जीते जी वह उसके बोझ तले से निकल नहीं सकती। नए अख़्लाक़ी नियमों में इस परेशानी का हल यह निकाला गया है कि हर क़िस्म के मातृत्व (चेंींहशीहेव) को बराबर की हैसियत दे दी जाए, चाहे वह विवाह के भीतर हो या बाहर।

कहा जाता है मातृत्व बहरहाल आदर्णीय है और यह कि जिस लड़की ने सीधेपन या बे-एहितयाती से मां बनने की ज़िम्मेदारी क़ुबूल कर ली है, उस पर यह ज़ुल्म है कि समाज में उस पर ताने दिये जाएं।

लेकिन एक तो यह हल ऐसा है कि उस में बेहया औरतों के लिए चाहे कितनी ही आसानी हो, सोसाइटी के लिए कुल मिला कर मुसीबत ही मुसीबत है

। समाज स्वाभाविक रूप से हरामी बच्चे की मां को जिस नफ़रत और ज़िल्लत की निगाह से देखता है, वह एक और व्यक्ति को गुनाह और बदकारी से रोकने के लिए एक बड़ी रूकावट है और दूसरी ओर वह ख़ुद समाज में भी अख़्लाक़ी एहसास के ज़िंदा होने की निशानी है। अगर हरामी बच्चे की मां और हलाली बच्चे की मां को बराबर का समझा जाने लगा, तो इस का मतलब यह है कि समाज से भलाई और बुराई, नेकी और बदी और गुनाह और सवाब का फ़र्क़ ही ख़त्म हो गया। फिर अगर मान लिया जाए कि यह हो भी जाए, तो क्या इस से वे परेशानियां हल हो जाएंगी, जो हरामी बच्चे की मां को पेश आती हैं। कोई व्यक्ति अपने नज़रिए में हराम और हलाल दोनों क़िस्म मातृत्व को बराबर क़रार दे सकता है, पर प्रकृति इन दोनों को बराबर नहीं करती और हक़ीक़त में वे कभी बराबर हो ही नहीं सकतीं। उन की बराबरी, बुद्धि, तर्क, इंसाफ़, हक़ीक़त हर चीज़ के ख़िलाफ़ है। आख़िर वह मूर्ख औरत, जिस ने वासना की भड़कती भावनाओं की धारा में बहकर अपने आप को एक ऐसे स्वार्थी आदमी के हवाले कर दिया, जो उस की और उस के बच्चे की ज़िम्मेदारी लेने को तैयार न था, उस अक़्लमंद औरत के बराबर कैसे हो सकती है, जिसने अपनी भावनाओं को उस वक़्त तक अपने क़ाबू में रखा, जब उक उसे एक शरीफ, सज्जन पुरूष न मिल गया ? कौन-सी अक़्ल इन दोनों को बराबर कह सकती है ? नुमाइशी तौर पर इन्हें बराबर कर दिया जा सकता है, पर उस मूर्ख औरत को वह ज़िम्मेदारी और हिफ़ाज़त, वह हमदर्दी भरा साथ, वह मुहब्बत भरी निगरानी, वह भलाई चाहने वाली देख-भाल और वह सुकून और इत्मीनान कहां से दिलाया जा सकता है, जो सिर्फ़ एक शौहर वाली औरत ही को मिल सकता है ? उस के बच्चे को बाप की मुहब्बत और अन्य पैतृक (झरींशुीरश्र) रिश्तों की मुहब्बत और मेहरबानी किस बाज़ार से लाई जाएगी? ज़्यादा से ज़्यादा क़ानून के ज़ोर से उस को गुज़ारा-भत्ता दिलाया जा सकता है, पर क्या एक माँ और एक बच्चे को दुनिया में सिर्फ़ गुज़ारा-भत्ते ही की ज़रूरत हुआ करती है ? अत: तथ्य यह है कि हराम व हलाल के मातृत्व को बराबर कर देने से गुनाह करने वालियों को बाहरी तसल्ली चाहे कितनी ही मिल जाए, बहरहाल यह चीज़ उन को उन की मूर्खता के फ़ितरी नतीजों से और उन के बच्चों को इस तरह की पैदाइश के हक़ीक़ी नुक़्सानों से नहीं बचा सकती।

इन वज्हों से यह बात सामूहिक ज़िंदगी के क़ायम करने और उसकी सही तरक़्क़ी के लिए अहम ज़रूरतों में से है कि समाज में यौनाचर के बिखराव को बिल्कुल रोक दिया जाए और काम भावनाओं की तृप्ति व तुष्टि के लिए सिर्फ़ एक ही दरवाज़ा   शादी का दरवाज़ा   खोला जाए। व्यक्तियों को व्यभिचार की आज़ादी देना उन के साथ अनुचित रियायत और सोसाइटी पर ज़ुल्म, बल्कि सोसाइटी का क़त्ल है । जो सोसाइटी इस हमले को मामूली समझती है और व्यभिचार को सिर्फ़ व्यक्तियों का मनोरंजन व कौतूहल (क्रींळपस र सेव ींळाश) समझ कर नज़रंदाज़ कर देना चाहती है और 'आज़ादाना बीज बोने' (डेुळपस थळश्रव जरींी) के साथ उदारता बरतने के लिए तैयार है, वह असल में एक जाहिल सोसाइटी है, उस को अपने अधिकारों का एहसास नहीं है। वह आप अपने साथ दुश्मनी करती है। अगर उसे अपने अधिकारों का एहसास हो और वह जाने और समझे कि यौन-संबंधो के मामले में व्यक्ति की आज़ादी का असर समाज के हितों पर क्या पड़ता है, तो वह उस अमल को उसी नज़र से देखे, जिस से चोरी, डकैती और क़त्ल को देखती है, बल्कि यह चोरी आदि से ज़्यादा गंभीर है । चोर, क़ातिल और डाकू ज़्यादा से ज़्यादा एक व्यक्ति या कुछ लोगों का नुक़्सान करते हैं, पर व्यभिचार करने वाला पूरे समाज पर और उस की अगली नस्लों पर डाका मारता है। वह एक ही वक़्त में लाखों-करोड़ों इंसानों की चोरी करता है। उस के जुर्म के नतीजे इन सब मुज्रिमों से ज़्यादा दूर तक असर डालने वाले और ज़्यादा फैले हुए हैं। जब यह मानी हुई बात है कि व्यक्तियों स्वार्थी अग्रसरता के मुक़ाबले में क़ानून की ताक़त समाज की मदद करने के लिए होनी चाहिए और जब इसी बुनियाद पर चोरी, क़त्ल, लूट-मार, जालसाज़ी और अन्य अत्याचारों को जुर्म क़रार देकर सज़ा के बल पर उन का रास्ता रोका जाता है, तो कोई वजह नहीं कि व्यभिचार के मामले में क़ानून समाज की हिफ़ाज़त करने वाला न हो और उसे सज़ा का भागी जुर्म न क़रार दिया जाए।

उसूली हैसियत से भी यह खुली हुई बात है कि विवाह और अविवाह दोनों एक ही वक़्त में एक ही सामाजिक व्यस्था का हिस्सा नहीं हो सकते। अगर एक आदमी के लिए ज़िम्मेदारियाँ क़ुबूल किए बिना काम-वासनी का तुष्टिकरण जायज़ रखा जाए, तो इसी काम के लिए विवाह का नियम बनाना बिल्कुल निरर्थक बात है। यह बिल्कुल ऐसा ही है जैसे रेल में बे-टिकट सफ़र करने को जायज़ भी रखा जाए और फिर सफ़र के लिए टिकट लेने का उसूल भी बना दिया

जाए। कोई अक़्ल वाला आदमी इन दोनों तरीक़ों को एक ही वक़्त में नहीं --- अख़्तियार कर सकता। सही बात यही है कि या तो टिकट का क़ायदा सिरे से उड़ा दिया जाए या अगर यह क़ायदा मुक़र्रर करना है, तो बे-टिकट सफ़र करने को जुर्म क़रार दिया जाए। इसी तरह विवाह और अविवाह के मामले में दोअमली एक बिल्कुल ग़ैर-माक़ूल चीज़ है। अगर संस्कृति के लिए विवाह का नियम ज़रूरी है, जैसा कि पहले दलीलों से साबित किया जा चुका है, तो इस के साथ यह भी ज़रूरी है कि अविवाहित संबंध (छेप-ारीळींरश्र ीशश्ररींळेपी) को जुर्म क़रार दिया जाए।[३२]

---

32 EH$ Am_ µJbVµ\$h_r `h h¡ {H$ {ddmh go nhbo EH$ OdmZ AmX_r H$mo H$m_wH$Vm V¥{ßV H$m Wmo‹Sm ~hwV _m¡µH$m µOê$a hm{gb hmoZm Mm{hE, Š`m|{H$ OdmZr _| ^mdZmAm| Ho$ nŒdmh H$mo amoH$Zm _w{íH$b h¡ Am¡a amoH$m OmE Vmo gohV H$mo ZwµŠgmZ nhw§MVm h¡ & bo{H$Z `h ZVrOm {OZ ~mVm| go {ZH$mbm J`m h¡, do g~ µJbV h¢ & ^mdZmAm| H$m Eogm nŒdmh, Omo amoH$m Z Om gHo$, EH$ µJ¡a_m_ybr (Abnormal) hmbV h¡ Am¡a _m_ybr (Normal) B§gmZm| _| `h hmbV {gµ\©$ Bg dOh go n¡Xm hmoVr h¡ {H$ g§ñH¥$[V H$s EH$ µJbV ì`dñWm BZ H$mo µO~aXñVr ^‹SH$mVr h¡ & h_mao {gZo_m, h_mam {bQo´Ma, h_mar Vñdra| h_mam g§JrV Am¡a Bg {_br-Owbr gmogmBQr _| ~Zr-RZr Am¡aVm| H$m ha OJh _Xm] go QH$amZm, `hr dÁh| h¢, Omo _m_ybr B§gmZm| H$mo H$m_moÎmoOZm _| µJ¡a-_m_ybr ~Zm XoVo h¢, daZm EH$ nwagwHy$Z _mhm¡b _| Am_ _Xm] Am¡a Am¡aVm| H$mo Eogo ^‹SH$md H$m H$^r Zht gm_Zm H$aZm hmoVm {H$ µOohZ Am¡a A˜bmµH$s V{~©`V go Cg na µH$m~y Z nm`m Om gHo$ & Am¡a `h ™`mb {H$ "OdmZr Ho$ µO_mZo _| `m¡Z {HŒ$`m Z H$aZo go gohV H$mo ZwµŠgmZ nhw§MVm h¡, Bg{bE gohV ~mµH$s aIZo Ho $ {bE ì`{^Mma H$aZm Mm{hE' EH$ ^Œ_ Ho$ {gdm Hw$N

जाहिलियत (अज्ञानता) की ख़ास बातों में से एक बात यह भी है कि जिन चीज़ों के नतीजे खुले होते हैं और जल्दी और महसूस शक्ल में सामने आ जाते हैं, तो उन्हें महसूस कर लिया जाता है, पर जिन के नतीजे फैले हुए और दूर-दूर तक पहुंचे हुए होते हैं जिस की वजह से ग़ैर-महसूस रहते हैं और देर में सामने आते हैं, उन्हें कोई अहमियत नहीं दी जाती, बल्कि नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। चोरी, क़त्ल और डकैती जैसे मामलों को अहम और व्यभिचार को ग़ैर-अहम समझने की वजह यही है। जो आदमी अपने घर में प्लेग के चूहे जमा करता है, या छूत की बीमारियां फैलाता है, जाहिलियत की व्यवस्था उसे तो माफ़ी के क़ाबिल नहीं समझती, क्योंकि उसका काम खुले-तौर पर नुक़्सान पहुंचाने वालज्ञा नज़र आता है, पर जो व्यभिचारी अपनी ख़ुदग़रज़ी से संस्कृति की जड़ काटता है, उस के नुक़्सान चूंकि महसूस होने के बजाए अक़्ल में आने वाले हैं, इसलिए वह जाहिलों को हर रियायत का हक़दार नज़र आता है, बल्कि उन की समझ में यह आता ही नहीं कि इस के करने में जुर्म की आख़िर कौन-सी बात है। अगर संस्कृति की बुनियाद जाहिलियत के बजाए अक़्ल और प्रकृति के ज्ञान पर हो, तो व्यवहार कभी न अपनाया जाए।

४. बे-हयाई की रोक-थाम के उपाय

संस्कृति के लिए जो काम हानिकारक हो, उसे रोकने के लिए सिर्फ़ इतना ही काफ़ी नहीं है कि उसे बस क़ानूनन जुर्म क़रार दिया जाए और उस के लिए एक सज़ा मुक़र्रर कर दी जाए, बल्कि इसके साथ चार क़िस्म के उपाय अपनाने भी ज़रूरी हैं

€ एक यह कि तालीम व तर्बियत के ज़रिए से लोगों का ज़ेहन ठीक किया जाए और उन की मनोस्थिति इतनी सुधार दी जाए कि वे ख़ुद इस काम से नफ़रत

Zht h¡ & Agb _| gohV Am¡a A™bmµH$ XmoZm| H$s {hµ\$mµOV Ho ${bE µOê$ar h¡ {H$ gm_m{OH$Vm H$s Bg µJbV ì`dñWm Am¡a ˜wehmb qµOXJr Ho$ CZ µJbV n¡_mZm| H$mo ~Xbm OmE, {OZ H$s dOh go {ddmh _w{íH$b Am¡a ì`{^Mma AmgmZ hmoH$a ah J`m h¡ &

करने लगें, इसे गुनाह समझें और उन की अपनी नैतिक चेतना उन्हें ऐसा करने से रोके रखे।

€ दूसरे यह कि सामूहिक नैतिकता और आम राय को इस गुनाह या जुर्म के ख़िलाफ़ इस हद तक तैयार कर दिया जाए कि आम लोग इसे ऐब और शर्म का काम समझने लगें और इस के करने वालों को नफ़रत की निगाह से देखने लगें, ताकि जिन लोगों की तर्बियत अधूरी रह गई हो या जिन की नैतिक चेतना कमज़ोर हो, उन्हें आम राय की ताक़त जुर्म करने से रोक सके।

€ तीसरे यह कि संस्कृति-व्यवस्था में ऐसे सारे प्रेरकों की रोकथाम की जाए, जो इस जुर्म पर उकसाने वाले और इस का चाव दिलाने वाले हों और इस के साथ ही उन प्रेरकों को भी, यथासंभव दूर किया जाए, जो लोगों को इस काम पर मजबूर करने वाले हों।

€ चोथे यह कि सांस्कृतिक जीवन में ऐसी रूकावटें और कठिनाइयां पैदा कर दी जाएं कि अगर कोई आदमी यह जुर्म करना भी चाहे, तो आसानी से न कर सके।

ये चरों उपाय ऐसे हैं, जिनके सही होने और ज़रूरी होने पर अक़्ल गवाही देती है, प्रकृति उनकी मांग करती है और पूरी दुनिया का अमल भी यही है कि समाज का क़ानून जिन-जिन चीज़ों को जुर्म क़रार देता है, उन सब को रोकने के लिए सज़ा के अलावा ये चारों उपाय भी ज़रूर इस्तेमाल किये जाते हैं। अब अगर यह बात मान्य है कि यौन-संबंधो का बिखराव संस्कृति को हलाक कर देने वाला है और समाज के ख़िलाफ़ एक भयानक जुर्म की हैसियत रखता है, तो अवश्य ही यह भी मानना पड़ेगा कि उसे रोकने के लिए सज़ा के साथ-साथ वे सब सुधार के और रोक-थाम के उपाय अपनाने ज़रूरी हैं, जिन का ज़िक्र ऊपर किया गया है। इसके लिए व्यक्तियों की तर्बियत भी होनी चाहिए, आम राय को भी उस की मुख़ालफ़त के लिए तैयार करना चाहिए, संस्कृति के दायरे से उन तमाम चीज़ों को भी निकाल देना चाहिए, जो व्यक्तियों की वासना को भड़काती हैं, सामाजिक व्यवस्था से उन रूकावटों को भी दूर करना चाहिए, जो विवाह के लिए मुश्किलें पैदा करती हैं और मर्दों और औरतों के ताल्लुक़ात पर ऐसी पाबन्दियां भी लगानी चाहिए कि अगर वे विवाह से बाहर यौन-संबंध क़ायम करने पर तत्पर हों, तो उनकी राह में बहुत से मज़बूत परदे रोक बन जाएं।

व्यभिचार को जुर्म और गुनाह मानने केबाद कोई भी अक़्लमंद आदमी इन उपायों के ख़िलाफ़ एक शब्द भी नहीं कह सकता।

कुछ लोग उन तमाम अख़्लाक़ी और सामूहिक उसूलों को मानते हैं, जिन की बुनियाद पर व्यभिचार को जुर्म क़रार दिया गया है, पर उनका आग्रह यह है कि इसके ख़िलाफ़ सज़ा और रोक-थाम के उपायों को अपनाने के बजाए सिर्फ़ सुधार के उपायों को काफ़ी समझना चाहिए। वे कहते हैं कि तालीम और तर्बियत के ज़रिए से लोगों में इतना भीतरी एहसास, उन की अन्तरात्मा की आवाज़ में इतनी ताक़त और उन की नैतिक चेतना में इतना ज़ोर पैदा कर दो कि वे इस गुनाह से रूक जाएं, वरना आंतरिक सुधार के बजाए सज़ा और रोक-थाम के वाह्य उपाए अपनाने का मतलब तो यह होगा कि तुम आदमियों के साथ बच्चों का-सा सुलूक करते हो, बल्कि इंसानियत की तौहीन करते हो। हम भी उन की इस बात को इस हद तक मानते हैं कि इंसानियत के सुधार का ऊंचा और बेहतर तरीक़ा वही है, जो वे बयान करते हैं। सभ्यता का मक़्सद वास्तव में यही है कि लोगों के भीतर ऐसी ताक़त पैदा हो जाए, जिससे वे अपने आप समाज के नियमों की इज़्ज़त करने लगें और ख़ुद उनकी अपनी अन्तरात्मा उनको अख़्लाक़ी पाबन्दियों के ख़िलाफ़ चलने से रोक दे। इसी मक़्सद के लिए व्यक्तियों की तालीम व तर्बियत पर सारा ज़ोर लगाया जाता है, पर क्या सच में सभ्यता अपनी इस इंतिहा को पहुंच चुकी है ? क्या हक़ीक़त में तालीम और अख़्लाक़ी तर्बियत के ज़रियों से इंसानों को इतना सभ्य बनाया जा चुका है कि उनके भीतर पर पूरा भरोसा किया जा सकता हो और सामाजिक व्यवस्था की हिफ़ाज़त के लिए बाहर से किसी रोक-थाम के उपाय और सज़ा की ज़रूरत बाक़ी न रही हो ? पुराने ज़माने का ज़िक्र छोड़िये कि आप की ज़ुबान में वह 'अंधकारमय युग' था, यह बीसवीं सदी, 'प्रकाशमान शताब्दी' आप के सामने मौजूद है। इस ज़माने में यूरोप और अमरीका के सबसे ज़्यादा सभ्य देशों को देख लीजिए, जिनका हर आदमी पढ़ा-लिखा है जिनको अपने नागरिकों की ऊंची तर्बियत पर गर्व है, क्या वहां तालीम और नफ़्स की इस्लाह ने जुर्म और क़ानूनशिकनी को रोक दिया है ? क्या वहां चोरियां नहीं होतीं ? डाके नहीं पड़ते ? क़त्ल नहीं होते, जाल, फरेब और ज़ुल्म व फ़साद के वाक़िए नहीं होते ? क्या वहां पुलिस, अदालत, जेल, किसी चीज़ की भी ज़रूरत बाक़ी नहीं रही ? क्या वहां लोगों के भीतर अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारी का इतना एहसास पैदा हो गया है कि अब उनके साथ 'बच्चों का-सा

सुलूक' नहीं किया जाता ? अगर यह सच नहीं है, अगर इस चमक-दमक वाले रोशन ज़माने में भी समाज के क़ानून व व्यवस्था को सिर्फ़ व्यक्तियों की नैतिक सूझ-बूझ पर नहीं छोड़ा जा सका है, अगर अब भी हर जगह 'मानवता का यह अपमान' हो रहा है कि अपराधों की रोक-थाम के लिए सज़ाओं और एहतियाती उपायों, दोनों क़िस्म के तरीक़ों से काम लिया जाता है, तो आख़िर क्या वजह है कि सिर्फ़ यौन-संबन्ध ही के मामले में आप को यह पसंद नहीं है ? सिर्फ़ इसी के मामले में क्यों इन 'बच्चों' से 'बड़ों' का-सा सुलूक किये जाने पर आपको ज़िद और इतनी ज़िद है ? तनिक टटोल कर देखिए, कहीं मन में कोई चोर तो छिपा हुआ नहीं है !

कहा जाता है कि जिन चीज़ों को तुम वासना-उत्प्रेरक कह कर संस्कृति के दायरे से अलग कर देना चाहते हो, वे तो सब आर्ट -और कला की जान हैं, उन्हें निकाल देने से तो इंसानी ज़िंदगी में आनन्द का स्रोत ही सूख कर रह जाएगा, इसलिए तुम्हें संस्कृति की हिफ़ाज़त और रहन-सहन में सुधार, जो कुध भी करना है, इस तरह करो कि कला और सौन्दर्य को ठेस न लगने पाए। हम भी इन लोगों के साथ इस हद तक तो हैं कि आर्ट और कला सच में क़ीमती चीज़ें हैं, जिनकी हिफ़ाज़त बल्कि तरक़्क़ी ज़रूर होनी चाहिए, पर समाज की ज़िंदगी और समाज का हित इन सबसे ज़्यादा क़ीमती चीज़ है, इसको किसी आर्ट और किसी कला पर क़ुर्बान नहीं किया जा सकता। आर्ट और कला को अगर फलना-फूलना है, तो अपने लिए फलने-फूलने का वह रास्ता ढूंढे, जो समाज की ज़िंदगी और समाज की भलाई से मेल खाता हो। जो आर्ट और कला ज़िंदगी के बजाए तबाही और बनाव के बजाए बिगाड़ की ओर ले जाने वाला हो, उसे समाज के दायरे में हरगिज़ फलने-फूलने का मौक़ा नहीं दिया जा सकता। यह कोई हमारे निज का और हमारे घर का सिद्धान्त नहीं है। बल्कि यही अक़्ल और प्रकृति का तक़ाज़ा है, तमाम दुनिया इसको उसूली तौर पर मानती है और इसी पर हर जगह अमल भी हो रहा है। जिन चीज़ों को भी दुनिया में सामूहिक जीवन के लिए तबाही और बिगाड़ की वजह समझा जाता है, उन्हें कहीं आर्ट और कला के नाम पर पसन्द नहीं किया जाता, मिसाल के तौर पर जो लिट्रेचर फ़ित्ना व फ़साद और क़त्ल व ग़ारतगरी पर उभारता हो, उसे कहीं भी सिर्फ़ उसके साहित्यिक गुणों के लिए जायज़ नहीं रखा जाता। जिस साहित्य में प्लेग या हैज़ा फैलाने पर उकसाया जाए, उसे कहीं बर्दाश्त नहीं किया जाता, जो सिनेमा या थिएटर शान्ति भंग करने

और बग़ावत करने पर उभारता हो, उसको दुनिया की कोई हुकूमत आम स्टेज पर लाने की इजाज़त नहीं देती, जो तस्वीरें ज़ुल्म, फ़साद और शरारत की घोटक हों या जिन में अख़्लाक़ के जाने-माने उसूल तोड़े गए हों, उनमें चाहे कितनी ही कलाकारी हो, कोई क़ानून और किसी समाज की अन्तरात्मा उनको आदर व सराहना की निगाह से देखने के लिए तैयार नहीं होती। जेब काटने की कला, भले ही एक बारीक कला है और हाथ की सफ़ाई का इससे बेहतर कमाल शायद ही कहीं पाया जाता हो, फिर भी कोई इसके फलने-फूलने का हामी नहीं होता। जाली नोट और चेक और दस्तावेज़ें तैयार करने में अनोखी ज़ेहानत और निपुणता दिशाई जाती है, पर कोई इस कला की तरक़्क़ी को जायज़ नहीं समझता। ठगी में इंसानी दिमाग़ ने अपनी अक़्ल के कैसे-कैसे कमाल दिखाए हैं, पर कोई सभ्य समाज इन कमालों की सराहना के लिए तैयार नहीं होता। अत: यह नियम स्वयंसिद्ध है कि सामूहिक जीवन, उसकी शांति, उसका हित व कल्याण, हर कला और हर आर्ट से ज़्यादा क़ीमती है और किसी आर्ट पर उसे क़ुर्बान नहीं किया जा सकता। हां, टकराव जिस मामले में है, वह सिर्फ़ यह है कि एक चीज़ को हम सामूहिक जीवन और हित के लिए नुक़्सानदेह समझते हैं और दूसरे ऐसा नहीं समझते, अगर इस मामले में उनका दृष्टिकोण भी वही हो जाए, जो हमारा हैं, तो उन्हें भी आर्ट और कला पर बही पाबन्दियां लगाने की ज़रूरत महसूस होने लगेगी, जिनकी ज़रूरत हम महसूस करते हैं।

यह भी कहा जाता है कि नाजायज़ यौन-संबंध रोकने के लिए औरतों और मर्दों के दर्मियान दीवारें खड़ी करना और समाज में उन के आज़ादाना मेल-जोल पर पाबन्दियां लगाना असल में उनके चरित्र व आचरण पर हमला है। इससे यह पाया जाता है कि मानो तमाम लोगों को बद-चलन मान लिया गया है और यह कि ऐसी पाबन्दियां लगाने वालों को न अपनी औरतों पर भरोसा है, न मर्दों पर। बात अक़्ल में आती है। पर इसी तर्क को ज़रा आगे बढ़ाइए। हर ताला, जो किसी दरवाज़े पर लगाया जाता है, मानो इस बात का एलान है कि उसके मालिक ने तमाम दुनिया को चोर मान लिया है। हर पुलिसमैन का वजूद इस बात की गवाही दे रहा है कि सरकार अपनी पूरी जनता को बदमाश समझती है। हर लेन-देन में, जो दस्लावेज़ लिखवायी जाती है, वह इस बात की दलील है कि एक पक्ष ने दूसरे पक्ष को बेईमान समझ लिया है। हर वह उपाय, जो जुर्म की रोकथाम के लिए अपनाया जाता है, उस का यह मतलब है कि उन सब लोगों

को संभावित मुजरिम मान लिया गया है, जिन पर इस उपाय का असर पड़ता हो। तर्क देने के इस तरीक़े से तो आप हर आम चोर, बदमाश, बेईमान और संदिग्ध चाल-चलन के आदमी क़रार दिये जा सकते हैं, पर आप के स्वाभिमान को तनिक भी ठेस नहीं लगती, फिर क्या वजह है कि सिर्फ़ इसी एक मामले में आप भी भावनाएं इतनी नाज़ुक हो गई हैं ?

असल बात वही है, जिस की ओर हम ऊपर इशारा कर चुके हैं। जिन लोगों के ज़ेहन में पुराने अख़्लाक़ी विचारों का बचा-खुचा असर अभी बाक़ी है, वे व्यभिचार और यौन-निराज (डर्ीुरिश्र अपरीलह्) को बुरा तो समझते हैं, पर ऐसा ज़्यादा बुरा नहीं समझते कि उस की पूरी रोक-थाम की ज़रूरत महसूस करें। इसी वजह से सुधार और रोक-थाम के उपायों में हमारे और उनके दृष्टिकोण अलग-अलग है। अगर प्रकृति की हक़ीक़तें उन पर पूरी तरह खुल जाएं और वे इस मामले को सही शक्ल समझ लें, तो उन्हें हमारे साथ इस बात में साथ देना पड़ेगा कि इंसान जब तक इंसान है और उसके भीतर जब तक हैवानियत का तत्व मौजूद है, उस वक़्त तक कोई ऐसी संस्कृति, जो व्यक्तियों की ख़्वाहिशों और उनके आनन्द व स्वाद से बढ़ कर सामूहिक जीवन के हित को प्रिय रखता हो, इन उपायों से ग़ाफ़िल नहीं हो सकती।

५. पति-पत्नी-संबध का सही रूप

ख़ानदान की बुनियाद मज़बूत करने और यौनाचार-संबंधी बिगाड़ की रोक-थाम करने के बाद एक भली संस्कृति के लिए जो चीज़ ज़रूरी है, वह यह है कि सामाजिक व्यवस्था में मर्द और औरत के ताल्लुक़ की सही शक्ल तै की जाए, उनके हक़ ठीक-ठीक इंसाफ़ के साथ मुक़र्रर किए जाएं, उन के दर्मियान ज़िम्मेदारियां सही ढंग से बांटी जाएं और ख़ानदान में उनके दर्जों और ज़िम्मेदारियों को इस तौर पर तै किया जाए कि इंसाफ़ और दुरूस्ती में फ़र्क़ न आने पाये। संस्कृति की तमाम समस्याओं में यह समस्या सब से ज़्यादा जटिल है, पर इंसान को इस गुत्थी के सुलझाने में अक्सर नाकामी हुई है।

कुछ क़ौमें ऐसी हैं, जिन में औरत को मर्द पर क़व्वाम (सिरधरा) बनाया गया है, पर हमें एक मिसाल भी ऐसी नहीं मिलती कि इस क़िस्म की क़ौमों में से कोई क़ौम सभ्यता और संस्कृति के किसी ऊंचे दर्जे पर पहुंची हो। कम से कम इतिहास की जानकारियों के रिकार्ड में तो किसी ऐसी क़ौम का निशान पाया नहीं

जाता, जिसने औरत को हाकिम बनाया हो, फिर दुनिया में इज़्ज़त और ताक़त हासिल की हो या कोई बड़ा काम अंजाम दिया हो।

दुनिया की ज़्यादातर क़ौमों ने मर्द को औरत पर क़व्वाम बनाया है, पर इस तर्जीह ने अक्सर ज़ुल्म की शक्ल अपना ली है, औरत को लौंडी बना कर रखा गया, उसे ज़लील और रूसवा किया गया। उसको किसी क़िस्म के आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार न दिए गए। उस को ख़ानदान में एक मामूली ख़िदमतगार और मर्द के लिए वासना पूरी करने का यंत्र बना कर रखा गया और ख़ानदान से बाहर औरतों के एक गिरोह को किसी हद तक ज्ञान और सभ्यता के ज़ेवरों से सजाया भी गया, तो सिर्फ़ इसलिए कि वे मर्दों की कामुक-भावनाओं को ज़्यादा लुभावने अन्दाज़ में पूरी करें, अपनी संगीत से उनके कानों में मधुरता भरें, अपने नाच और नाज़ व अदा से आँखों में ठंडक पहुंचाएं और अपने यौवन से उन के लिए शारीरिक स्वाद व आनंद बन जाएं। यह औरत की ज़िल्लत व रूसवाई का सब से ज़्यादा शर्मनाक तरीक़ा था, जो मर्द की नफ़्सपरस्ती ने ईजाद किया और जिन क़ौमों ने यह तरीक़ा अपनाया, वे ख़ुद भी नुक़्सान से न बच सकीं।

आज की पाश्चात् संस्कृति ने तीसरा तरीक़ा अपनाया है, यानी यह कि मर्दों और औरतों में बराबरी हो, दोनों की ज़िम्मेदारियां बराबर और क़रीब-क़रीब एक जैसी हों, दोनों एक हीं कार्य-क्षेत्र में होड़ करें, दोनों अपनी रोज़ी आप कमाए और अपनी ज़रूरतों को पूरा करने की आप ज़िम्मेदार हों। रहन-सहन के विधानों का यह अन्दाज़ अभी पूरा नहीं हो सका है, क्योंकि मर्द की बरतरी अब भी मौजूद है। ज़िंदगी के किसी विभाग में भी औरत मर्द की बराबर नहीं है और उस को वे तमाम हक़ हासिल नहीं हुए हैं, जो मुकम्मल बराबरी की शक्ल में उस को मिलने चाहिएं, लेकिन जिस हद तक भी बराबरी की शक्ल में उस को मिलने चाहिएं, लेकिन जिस हद तक भी बराबरी क़ायम की गयी है, उस ने अभी से संस्कृति-व्यवस्था में बिगाड़ पैदा कर दिया है। इससे पहले हम बहुत खुल कर उसके नतीजे बयान कर चुके हैं, इसलिए यहां इस पर कुछ और लिखने की ज़रूरत नहीं।

इन तीनों क़िस्म की संस्कृतियों में न न्याय है, न सन्तुलन, क्योंकि इन्होंने प्रकृति की रहनुमाई को समझने और ठीक-ठीक उसके मुताबिक़ तरीक़ा अपनाने में कोताही की है। अगर सद्-बुद्धि से काम लेकर विचार किया जाए, तो मालूम होगा कि प्रकृति ख़ुद इन समस्याओं का सही हल बता रही है बल्कि यह भी

असल में प्रकृति की ज़बरदस्त ताक़त है, जिस के असर से औरत न तो इस हद तक गिर सकी, जिस हद तक उसे गिराने की कोशिश की गई और न इस हद तक बढ़ सकी, जिस हद तक उसके बढ़ना चाहा या मर्द ने उसे बढ़ाने की कोशिश की। इस या उस अति (एुीशाश) के ये दोनों पहलू इंसान ने अपनी दुर्बुद्धि और अपने बहके हुए विचारों के असर से अपनाए हैं, पर प्रकृति तो न्याय और सन्तुलन चाहती है और ख़ुद उसकी शक्ल बताती है।

इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि इंसान होने में मर्द-औरत दोनों बराबर हैं। दोनों मानव-जाति के दो बराबर-बराबर हिस्से हैं। संस्कृति के बनाने, संवारने और सभ्यता को ढालने और मानवता की सेवा में दोनों बराबर के शरीक हैं। दिल, दिमाग़, बुद्धि, भावनाएं, इच्छाएं और इंसानी ज़रूरतें दोनों रखते हैं। संस्कृति की बेहतरी के लिए दोनो का सभ्य होना, दोनों की दिमाग़ी तर्बियत होना और दोनों में मानसिक विकास का होना, समान रूप से ज़रूरी है, ताकि संस्कृति की ख़िदमत में हर एक अपना पूरा पूरा हिस्सा अदा कर सके। इस एतवार से बराबरी का दावा बिल्कुल सही है और भली संस्कृति का फ़र्ज़ यही है कि मर्दों की तरह औरतों को भी अपनी प्राकृतिक योग्यता व क्षमता के मुताबिक़ ज़्यादा से ज़्यादा तरक़्क़ी करने का मौक़ा दे, अच्छे इल्म (ज्ञान) और ऊंची तर्बियत से सजाये, उन्हें भी मर्दों की तरह सांस्कृतिक व आर्थिक हक़ दे और उन्हें रहन-सहन के दायरे में इज़्ज़त का दर्जा दे, ताकि उनमें आत्म-सम्मान पैदा हो और उनके भीतर वे बेहतरीन इंसानी ख़ूबियां पैदा हो सकें, जो सिर्फ़ आत्मसम्मान के एहसास ही से पैदा हो सकती हैं। जिन क़ौमों ने इस क़िस्म की बराबरी से इंकार किया है, जिन्होंने अपनी औरतों को जाहिल, बिना तर्बियत की, ज़लील और संस्कृति के हक़ों से महरूम कर रखा है, वे ख़ुद पस्ती के गढ़े में गिर गयी हैं क्योंकि इंसानियत के पूरे आधे हिस्से को गिरा देने का मतलब ख़ुद इंसानियत को गिरा देना है। ज़लील माओं की गोद से इज़्ज़त वाले और बिना तर्बियत वाली माओं की गोद से ऊंची तर्बियत वाले और पस्त ख़्याल माओं की गोद से ऊंचे ख़्याल वाले इंसान नहीं निकल सकते।

लेकिन बराबरी का दूसरा पहलू यह है कि मर्द और औरत दोनों का कार्य-क्षेत्र एक ही हो। दोनों एक ही जैसे काम करें। दोनों पर ज़िंदगी के तमाम विभागों की ज़िम्मेदारियां बराबर-बराबर डाल दी जाएं और संस्कृति-व्यवस्था में दोनों की हैसियतें बिल्कुल एक सी हों। इस की ताईद में साइंस के तजुर्बों से यह

साबित किया जाता है कि औरत और मर्द अपने देह की क्षमता और ताक़त के लिहाज़ से बराबर (एीींळोींशिपींळरश्र) हैं, पर सिर्फ़ यह बात कि इन दोनों में इस क़िस्म की बराबरी पायी जाती है, इस बात का फ़ैसला करने के लिए काफ़ी नहीं है कि प्रकृति का अभिप्राय भी दोनों से एक ही तरह के काम लेना है। ऐसी राय क़ायम करना उस वक़्त तक ठीक नहीं हो सकता, जब तक यह साबित न कर दिया जाए कि दोनों की शारीरिक व्यवस्था भी एक जैसी है। दोनों पर प्रकृति ने एक ही जैसी सेवाओं का बोझ भी डाला है और दोनों की मनौवैज्ञानिक दशा भी एक दूसरे से मिलती-जुलती है। इंसान ने अब तक जितनी साइंसी ख़ोजें की हैं, उन से इन तीन बातों का जवाब 'नहीं' में मिलता है।

जीव विज्ञान (इळेश्रेसू) की खोजों से साबित हो चुका है कि औरत अपनी शक्ल व सूरत और बाहरी अंगों से लेकर अपने शरीर के कणों और कोषाणुओं (झ्रींशळप चेश्रशर्लीश्रशी`ष ढळींीी उशश्रश्री) तक, हर चीज़ में मर्द से अलग है। जिस वक़्त गर्भाशय में बच्चे के अन्दर लैंगिक गठन (डशु ऋीारींळेप) होता है, उसी वक़्त से दोनों लिंगों की शारीरिक बनावट बिल्कुल एक दूसरे से अलग शक्ल में तरक़्क़ी करती है। औरत की पूरी शरीर-व्यवस्था इस ढंग पर बनायी जाती है कि बच्चा जनने और उस की परवरिश करने के लिए मुस्तैद हो। शुरू की गर्भावस्था से लेकर बालिग़ होने तक उस के शरीर का पूरा विकास इसी क्षमता को पूरा करने के लिए होता है और यही चीज़ उस की ज़िंदगी का रास्ता तै करती है।

बालिग़ होने पर महावारी के दिनों का सिलसिला शुरू होता है, जिससे उस के शरीर के अंगों की कार्यशीलता पर असर पड़ता है। जीव विज्ञान और अंग-विज्ञान के विशेषज्ञों के तजुर्बों से मालूम होता है कि माहवारी के दिनों में औरत के भीतर नीचे लिखी तब्दीलियाँ होती हैं

१. जिस्म में ताप को रोकने की ताक़त कम हो जाती है, इसलिए ताप ज़्यादा ख़र्च होता है और तापमान गिर जाता है।

२. नाड़ी सुस्त हो जाती है। ख़ून का दबाव कम हो जाता है। रक्त कोशाओं की तादाद में अन्तर हो जाता है।

३. एपवेलीळपशी, गले की गिलटियों (ढेपीळश्री) और डूाहिरींळल ऋश्चरपवी में तब्दीली हो जाती है।

४. प्रोटीनी घुमाव (झ्रींशळप चशींरलेश्रळीा) में कमी आ जाती है,

५. फास्फेट्स और क्लोराइड्स के निकलने में कमी और हवाई घुमाव (त्र्ब्रीर्शेीी चर्शींरलेश्रळीा) में गिरावट पैदा हो जाती है।

६. पचने में रूकावट होती है और भोजन के प्रोटीनी भागों और चर्बी के जिस्म का हिस्सा बनने में कमी हो जाती है।

७. सांस लेने की क्षमता में कमी और बोलने वाले अंगों में ख़ास तब्दीलियां होती हैं।

८. इन्द्रियों में सुस्ती और एहसास करने में ठिठराव पैदा हो जाता है।

९. ज़ेहानत और ख़्यालों को एक केन्द्र पर जमा करने की ताक़त कम हो जाती है।

ये तब्दीलियां एक तन्दुरूस्त औरत को बीमारी की हालत से इतना क़रीब कर देती हैं कि उस वक़्त सेहत और मरज़ के बीज कोई

रेखा खींचना मुश्किल हो जाता है। सौ में से मुश्किल से २३ औरतें ऐसी होती हैं, जिनको माहवारी के दिन बिना किसी दर्द और तक्लीफ़ के आते हों। एक बार १०२० औरतों को बिना किसी चुनाव के उनके हालात की जांच की गयी, तो उनमें से ८४ फ़ीसदी ऐसी निकलीं जिन को माहवारी के दिनों में दर्द और दूसरी क़िस्म की तक्लीफ़ों का सामना करना पड़ता था। डाक्टर अमील नोविक, जो इस विज्ञान का बड़ा शोधक है, लिखता है

> 'माहवारी वाली औरतों में आम तौर से जो स्थितियाँ पयी जाती हैं, वे ये हैं सिर का दर्द, थकन, अंगों का टूटन, कमज़ोरी, तबियत की गिरावट, मसाने की बेचैनी, पाचन की ख़राबी, कभी-कभी क़ब्ज़, कभी-कभी मतली और क़ै। अच्छी-भली तादाद ऐसी औरतों की है, जिन की छातियों में हल्का-सा दर्द होता है और कभी-कभी वह इतना तेज़ हो जाता है कि टीसें-सी उठती मालूम होती हैं। कुछ औरतों का थाईराइड उस ज़माने में सूज जाता है, जिससे गला भारी हो जाता है। कभी-कभी अपच की शिकायत होती है और अक्सर सांस लेने में कठिनाई होती है। डाक्टर क्रेगर ने जितनी औरतों का मुआयना किया, उनमें आधी ऐसी थीं, जिनको माहवारी के दिनों में अपच की शिकायत हो जाती थी और आख़िरी दिनों में क़ब्ज़ हो

जाता था। डाक्टर गिबहार्ड का बयान है कि ऐसी औरतें बहुत कम देखने में आयी हैं, जिन को माहवारी के ज़माने में कोई तक्लीफ़ न होती हो। ज़्यादातर ऐसी ही देखी गयी हैं, जिन्हें सिर का दर्द, थकन, नाभि के नीचे दर्द और भूख की कमी हो जाती है, तबियत में चिड़चिड़ापन पैदा हो जाता है और रोने को जी चाहता है।'

इन हालात के अनुसार यह कहना बिल्कुल सही है कि माहवारी के दिनों में एक औरत असल में बीमार होती है। यह एक बीमारी है, जो उसे हर महीने होती रहती है।

इन जिस्मानी तब्दीलियों का असर ज़रूर ही औरत की दिमाग़ी ताक़त और उसके अंगों के कार्यों पर भी पड़ता है। सन् १९०९ ई. में डाक्टर तेळलश उहशीीज़ू ने गहराई से जायज़ा लेने से बाद यह नतीजा ज़ाहिर किया था कि माहवारी के दिनों में औरत के अन्दर विचारों को केन्द्रित करने की और दिमागी मेहनत करने की ताक़त कम हो जाती है। प्रोफ़ेसर घीलहळीज्ञ शीीज़ू मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण के बाद इस नतीजे पर पहुंचा कि उस ज़माने में औरत मांसिक स्थिति में उग्रता आ जाती है। एहसास में ठिठराव और ना-हमवारी पैदा हो जाती है। प्रभावित होने की क्षमता कम और कभी-कभी ख़त्म हो जाती है, जिस की वजह से उसके वे काम भी ठीक नहीं रहते, जिन की वह अपनी रोज़ाना की ज़िंदगी में आदी होती है। एक औरत जो ट्राम की कंडक्टर है, उस ज़माने में ग़लत टिकट काट देगीं और रेज़गारी गिनने में उलझेगी। एक मोटर ड्राइवर औरत गाड़ी धीरे-धीरे और डरते-डरते चलायेगी और हर मोड़ पर घबरा जाएगी। एक लेडी टाइपिस्ट ग़लत टाइप करेगी, देर में करेगी, कोशिश के बावजूद शब्द छोड़ जाएगी, ग़लत वाक्य बनायेगी, किसी अक्षर पर उगली मारनी चाहेगी और हाथ किसी पर जा पड़ेगा। एक बैरिस्टर औरत की तर्क-शक्ति ठीक न रहेगी और अपने मुक़दमे को पेश करने में उस का दिमाग़ और उस के वाक-शक्ति दोनों ग़लती करेंगे। एक मजिस्ट्रेट औरत की तर्क-क्षमता और फ़ैसले की ताक़त दोनों पर असर पड़ेगा। एक डेंटिस्ट औरत को अपना काम करते वक़्त अपने चाहे औज़ार मुश्किल से मिलेंगे। एक गाने वाली औरत अपने स्वर और आवाज़ की ख़ूबी खो देगी, यहां तक कि स्वर का एक विशेषज्ञ सिर्फ़ आवाज़ सुन कर बता देगा कि गाने वाली इस वक़्त माहवारी की स्थिति में है। उस ज़माने में औरत के दिमाग़ और अंगों की मशीन बड़ी हद तक सुस्त और बिखरी होती है। उसके अंग पूरी तरह उसके

इरादे के तहत अमल नहीं कर सकते, बल्कि भीतर से एक बेचैन हरकत उसके इरादे पर छा कर उसके इरादे की ताक़त और फ़ैसले की ताक़त को उलट-पलट देती है, उससे मजबूरी वाले काम होने लगते हैं। इस हालत में अमल की उसकी आज़ादी बाक़ी नहीं रहती और वह कोई ज़िम्मेदाराना काम के क़ाबिल नहीं होती।

प्रोफ़ेसर लापिंस्की (डरळिपीज़ू) अपनी पुस्तक ॠढहश ऊशींशश्रेशिपीं `ष झशीीपरश्रळीूं ळप थोरपङ्क में लिखता है कि माहवारी का ज़माना औरत को अमल की उसकी क्रिया-स्वतंत्रता से महरूम कर देता है। वह उस होती है और उस में इरादे के साथ किसी काम को करने या न करने की ताक़त बहुत कम हो जाती है।

ये सभी तब्दीलियां एक तन्दुरूस्त औरत में होती है और आसानी के साथ बढ़ कर के रोग की शक्ल अपना सकती हैं। रिकार्ड पर ऐसी घटनाएं बहुत ज़्यादा मौजूद हैं कि इस हालत में औरत दीवानी-सी हो जाती है। ज़रा सी उत्तेजना पर ग़ुस्से से लाल हो जाना, वहिशयाना और मूर्खता भरी हरकतें कर बैठना, यहां तक कि आत्महत्या तक कर गुज़रना कोई असाधारण बात नहीं। डाक्टर क्राफ्ट एबिंग (घीरषीं अलशळपस) लिखता है कि रोज़मर्रा की ज़िंदगी में हम देखते हैं कि जो औरतें नर्म स्वभाव की, सलीक़ेमंद और अच्छे अख़्लाक़ की होती हैं, उनकी हालत माहवारी आते ही यकायक बदल जाती है। यह ज़माना उनके ऊपर मानो एक तूफ़ान की तरह आता है। वह चिड़चिड़ी, झगड़ालू और कटखनी हो जाती हैं। नौकर और बच्चे और शौहर सब परेशान रहते हैं, यहां तक कि वे अजनबी लोगों से भी बुरी तरह पेश आने लगती हैं। कुछ दूसरे विशेषज्ञ गहरे चिन्तन के बाद इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि औरतों से अक्सर अपराध माहवारी की हालत में होते हैं, क्योंकि वे उस वक़्त अपने क़ाबू में नहीं होतीं। एक अच्छी-ख़ासी नेक़ औरत उस ज़माने में चेरी कर गुज़रेगी और बाद में ख़ुद उस को इस काम पर शर्म आयेगी। वाइन बर्ग (थशळपलशीस) अपने तजुर्बों की बुनियाद पर लिखता है कि आत्म-हत्या करने वाली औरतों में ५० फ़ीसदी ऐसी पायी गयी हैं, जिन्होने माहवारी के दिनों में यह काम किया है। इसी वजह से डा. क्राफ्ट एबिंग की राय यह है कि बालिग़ औरतों पर जब किसी अपराध के लिए मुक़दमा चलाया जाए तो अदालत को इस बात की जांच करा लेनी चाहिए कि जुर्म कहीं माहवारी की हालत में तो नहीं किया गया है।

माहवारी के दिनों से ज़्यादा, गर्भावस्था(हमल) का ज़माना औरत पर सख़्त होता है। डाक्टर रिप्रीफ़ (ठशाशिर्ी) लिखता है कि हमल के ज़माने में औरत के जिस्म से बेकार तत्वों का निकलना कभी-कभी उपवास की हालत से भी ज़्यादा मात्रा में होता है। उस ज़माने में औरत की ताक़त किसी तरह भी जिस्मानी और दिमाग़ी मेहनत का वह बोझ नहीं संभाल सकती जो हमल के अलावा दूसरे दिनों में संभाल सकती है। जो हालात उस ज़माने में गुज़रते हैं, वे अगर मर्द पर गुज़रे या हमल के अलावा के दिनों में ख़ुद औरत पर गुज़रें तो उन्हें निश्चय ही रोग-अवस्था कहा जाएगा। उस ज़माने में कई महीने तक उस की दैहिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त रहती है, उस का दिमाग़ी सन्तुलन बिगड़ जाता है, उसको तमाम अभौतिक तत्व एक निरंतर दुर्व्यवस्था की हालत में होते हैं। वह रोग सेहत के बीच लटकी रहती है और एक छोटी-सी वजह उसे बीमारी की सरहद में पहुंचा सकती है। डाक्टर फ़िशर का बयान है कि एक तन्दुरूस्त औरत भी हमल के ज़माने में सख़्त अन्दरूनी बेचैनी में पड़ी रहती है। उस में झुंझलाहट पैदा हो जाती है, विचार परेशान करते हैं, ज़ेहन में बिखराव होता है। चेतना, सोच-विचार और समझ-बूझ की क्षमता बहुत कम हो जाती है हयूलाक एलियस और अलबर्ट मोल और कुछ दूसरे माहिरों की राय यह है कि हमल के ज़माने का आख़िरी एक महीना तो हरगिज़ इस क़ाबिल नहीं रहता कि उस में औरत से कोई जिस्मानी या दिमाग़ी मेहनत ली जाए।

बच्चा जनने के बाद बहुत-सी बीमारियों के पैदा होने और बढ़ने का डर रहता है। प्रजनन के घाव ज़हरीले असर क़ुबूल करने के लिए मुस्तैद रहते हैं। हमल से पहले की हालत पर वापस जाने के लिए अंगों में एक हरकत शुरू होती है, जो सारी जिस्मानी व्यवस्था को उलट-पलट देती है। अगर कोई ख़तरा न भी पेश आये, तब भी उस को अपनी असली हालत पर आने में कई हफ़्ते लग जाते हैं। इस तरह हमल क़रार पाने के बाद से पूरे एक साल तक औरत हक़ीक़त में बीमार या कम से कम आधी बीमार होती है और उस में कार्य-क्षमता आम हालात के मुक़ाबले में आधी, बल्कि उस से भी क म रह जाती है।

फिर दूध पिलाने का ज़माना ऐसा होता है, जिस में हक़ीक़त में वह अपने लिए नहीं जीती, बल्कि उस अमानत के लिए जीती है, जो प्रकृति ने उस के सुपुर्द की है। उसके जिस्म का जौहर उस के बच्चे के लिए दूध बनता है। जो कुछ खाना

वह खाती है, उसमें सिर्फ़ उतना ही हिस्सा उसके शरीर को मिलता है, जितना उसे ज़िंदा रखने के लिए ज़रूरी है। बाक़ी सब का सब दूध बनने में ख़र्च होता है।

इसके बाद एक लम्बी मुद्दत तक बच्चे की परवरिश, निगरानी, देखभाल और तर्बियत पर उस को अपनी पूरी तवज्जोह लगा देनी पड़ती है।

आज के ज़माने में दूध पिलाने के मस्अले का हल यह निकाला गया है कि बच्चों को ऊपरी भोजन पर रखा जाए, लेकिन यह कोई सही हल नहीं है, इसलिए कि प्रकृति ने बच्चे की परवरिश का जो सामान माँ के सीने में रख दिया है, उस का सही बदल और कोई नहीं हो सकता। बच्चे की उस से महरूम करना ज़ुल्म और स्वार्थ के सिवा कुछ नहीं। जानकारों का कहना है कि बच्चे के सही विकास के लिए मां के दूध से बेहतर कोई भोजन नहीं।[३३]

इसी तरह बच्चों की तर्बियत के लिए भी नर्सिंग होम और बच्चों के ट्रेनिंग सेन्टर्स की तज्वीज़ें निकाली गयी हैं, ताकि माएं अपने बच्चों से बे-फ़िक्र होकर घर से बाहर के कामों में लग सकें, लेकिन नर्सिंग होम और किसी ट्रेनिंग सेन्टर में मां की मुहब्बत नहीं जुटाई जा सकती। बचपन का शुरू का ज़माना जिस मुहब्बत और दर्दमन्दी का मुहताज है, वह किराये की पालने-पोसने वालियों के सीने में कहां से आ सकती है। बच्चों के पालन-पोषण के ये नये तरीक़े अभी तक आज़माये नहीं गये हैं, अभी तक वे नस्लें फल-फूल भी नहीं लायी हैं, जो बच्चे पालने के इन कारख़ानों में तैयार की गयी हैं। अभी तक उन की सीरत, उनके अख़्लाक़, उनके कारनामे दुनिया के सामने नहीं आये हैं कि इस तजुर्बे की कामियाबी और नाकामी के बारे में कोई राय क़ायम की जा सके। इसलिए इस तरीक़े के बारे में यह दावा करना वक़्त से पहले की बात है कि दुनिया ने मां की गोद का सही बदल पा लिया है। कम से कम इस वक़्त तक तो यह हक़ीक़त

---

[33] A~, AZwg§YmZm| go nVm Mbm h¡ ñVZ go ~ƒo H$Mo XyY Z {nbmZo dmbr {ñÌ`m| H$mo ñVZ-H¢$ga hmoZo bJm h¡ AV: Hw$N {ñÌ`m§ A~ Bg Sa go AnZo {eewAm| H$mo ñVZ-Xw½Y-nmZ H$amZo bJr h¢ {H$ÝVw A{YH$Va AnZo `m¡dZ-gm¢X`© H$mo ~hmb aIZo Ho$ {bE ñVZ-nmZ Z H$amZo H$m [añH$ bo boVr h¢ & nŒHmeH

अपनी जगह क़ायम है कि बच्चे का स्वाभाविक दीक्षा-केन्द्र उस की मां की गोद ही है।

अब यह बात एक मामूली-सी अक़्ल का आदमी भी समझ सकता है कि अगर औरत और मर्द दोनों की जिस्मानी और दिमाग़ी ताक़त और क्षमता बिल्कुल बराबर भी है, तब भी प्रकृति ने दोनों पर बराबर बोझ नहीं डाला है। इंसानी नस्ल को बाक़ी रखने के लिए बीज डालने के सिवा और कोई काम मर्द के सुपुर्द नहीं किया गया, इसके बाद वह बिल्कुल आज़ाद है, ज़िंदगी के जिस विभाग में चाहे काम करे। इसके ख़िलाफ इस सेवा का पूरा बोझ औरत पर डाल दिया गया है। इसी बोझ के संभालने के लिए उसको उस वक़्त से मुस्तैद रखा जाता है, जबकि वह मां के पेट में सिर्फ़ गोश्त का एक लोथड़ा होती है, उस के जिस्म की सारी की सारी मशीन उसी काम के लिए ढाल दी जाती है। उसी के लिए उस पर जवानी के पूरे ज़माने में माहवारी के दिनों के दौरे आते हैं, जो हर महीने में तीन से लेकर सात या दस दिन तक उस को किसी बड़ी ज़म्मेदारी का बोझ संभालने और कोई अहम जिस्मानी या दिमाग़ी मेहनत करने के क़ाबिल नहीं रखते। इसी के लिए उस पर हमल और हमल के बाद का पूरा एक साल सख़्तियां झेलते गुज़रता है, जिस में वह आधी जान होती हैं। इसी के लिए उस पर दूध पिलाने के पूरे दो साल इस तरह गुज़रते हैं कि वह अपने ख़ून से इंसानियत की खेती को सींचती है और उसे अपने सीने की नहरों से पानी देती है। इसीके लिए उसपर बच्चे की शुरू की परवरिश के कई साल इस मेहनत व मशक़्क़त में गुज़रते हैं कि रात की नींद और दिन का आराम हराम होता है और वह अपना आराम, अपना आनन्द, अपनी ख़ुशी, अपनी ख़्वाहिश, हर चीज़ को आने वाली नस्ल पर क़ुर्बान कर देती है।

जब हाल यह है तो ग़ौर कीजिए कि न्याय का तक़ाज़ा क्या है ? क्या न्याय यही है कि औरत से उन प्राकृतिक ज़िम्मेदारियां के निभाने की मांग तो की ही जाए, जिन में मर्द उस का शरीक नहीं है लेकिन फिर संस्कृति की उन ज़िम्मेदारियों का बोझ भी उस पर मर्द के बराबर डाला जाए, जिन को संभालने के लिए मर्द को ज़िम्मेदार बनाया गया है ? उससे कहा जाए कि तू वे सारी मुसीबतें भी सहन कर, जो प्रकृति ने तेरे ऊपर डाली हैं और फिर हमारे साथ आकर रोज़ी कमाने की मशक़्क़तें भी उठा, राजनीति और न्यायालय, घरेलू उद्योग धंधे और इंडस्ट्रीज़, व्यापार और खेती, शान्ति-स्थापना और राष्ट्र-सुरक्षा

की सेवाओं में बराबर का हिस्सा ले, हमारी सोसाइटी में आकर हमारा दिल भी बहला और हमारे लिए ऐश, ख़ुशी, आनन्द और राहत के सामान भी जुटा ? यह न्याय नहीं है, अन्याय है। बराबरी नहीं है, खुली नाबराबरी है। न्याय का तक़ाज़ा तो यह होना चाहिए कि जिस पर प्रकृति ने बहुत ज़्यादा बोझ डाला है, उसको संस्कृति के हलके-फुलके काम सुपुर्द किये जाएं और जिस पर प्रकृति ने कोई बोझ नहीं डाला, उस पर संस्कृति की अहम, भारी, और ज़्यादा मेहनत तलब ज़िम्मेदारियों का बोझ डाला जाए और उसी के सुपुर्द यह सेवा भी की जाए कि वह ख़ानदान की परवरिश और उसकी हिफ़ाज़त करे।

सिर्फ़ यही नहीं कि औरत पर घर के बाहर की ज़िम्मेदारियां डालना ज़ुल्म है, बल्कि हक़ीक़त में वह उन मर्दाना सेवाओं को अंजाम देने के पूरी तरह योग्य भी नहीं है, जिन का ज़िक्र ऊपर किया गया है। इन कामों के लिए वही कर्मी सही हो सकते हैं, जिन की कार्य-शक्ति मज़बूत हो, जो लगातार और बराबर अपनी ज़िम्मेदारियों को समान योग्यता के साथ अंजाम दे सकते हों और जिन की दिमाग़ी और जिस्मानी ताक़तों पर भरोसा किया जा सकता हो। लेकिन जिन कर्मियों पर हमेशा हर महीना कई कई दिनों के लिए अयोग्यता के या योग्यता की कमी के दौरे पड़ते हों, और जिन की कार्य-क्षमता बार-बार अभीष्ट स्तर से घट जाया करती हो, वे किस तरह इन ज़िम्मेदारियों का बोझ उठा सकते हैं ? उस फ़ौज या समुद्री बेड़े की हालत का अन्दाज़ा कीजिए जो औरतों पर सम्मिलित हो और जिस में ठीक लड़ाई के वक़्त कई फ़ीसदी तो माहवारी के दिनों की वजह से आधी बेकार हो रही हों, एक अच्छी-भली तादाद बच्चा जनने की हालत में बिस्तरों पर पड़ी हो और एक भारी तादाद गर्भवती होने की वजह से काम करने के क़ाबिल ही न रही हो। फ़ौज की मिसाल को आप कह देंगे कि यह ज़्यादा क़िस्म की ज़िम्मेदारियों से ताल्लुक़ रखती है, पर पुलिस, अदालत, प्रशासनिक विभाग राजदूतीय, रेलवे, इंडस्ट्रीज़ और व्यापार के काम, इन में से किसी की ज़िम्मेदारियां ऐसी हैं, जो लगातार भरोसेमंद कार्य-क्षमता न चाहती हों ? अत: जो लोग औरतों से मर्दाना काम लेना चाहते हैं, उन का मतलब शायद यह है कि या तो सब औरतों को ना-औरत बना कर इंसानी नस्ल का ख़ात्मा कर दिया जाए या यह कि उन में से कुछ फ़ीसदी ज़रूर ही ना-औरत बनने की सज़ा के लिए चुन ली जाती रहें या यह कि संस्कृति के तमाम मामलों के लिए योग्यता का स्तर आम तौर से घटा दिया जाए।

पर आप इन में से चाहे कोई शक्ल भी अपनायें, औरत को मर्दाना कामों के लिए तैयार करना ठीक प्रकृति के तक़ाज़ों और प्रकृति के उसूलों के ख़िलाफ़ है और यह चीज़ न इंसानियत के लिए फ़ायदेमंद है और न ख़ुद औरत के लिए। चूंकि जीव-विज्ञान (इळेश्रेसू) के मुताबिक़ औरत को बच्चे की पैदाइश और परवरिश ही के लिए बनाया गया है, इसलिए मनोविज्ञान के दायरे में भी उस के अन्दर वही क्षमताएं भर दी गयी हैं, जो उस की प्राकृतिक ज़िम्मेदारियों के लिए मुनासिब हैं, यानी मुहब्बत, हमदर्दी, रहम व मुरव्वत, मन की नर्मी और भावुकता और चूंकि यौन- में मर्द को कर्त्ता का और औरत को -------की जगह दी गयी है, इसलिए औरत के अन्दर तमाम वही ख़ूबियां पैदा की गयी हैं, जो उसे ज़िंदगी के सिर्फ़ उसी पहलू में काम करने के लिए तैयार करती हैं। उसके भीतर सख़्ती और तेज़ी के बजाए नर्मी, नज़ाकत और लचक है। वह असर नहीं डाल सकती, असर क़ुबूल ज़रूर करती है। क्रिया के बजाए ----- है। जमने और ठहरने के बजाए झुकने और ढल जाने की क्षमता है, बेबाकी और साहस के बजाए मना व फ़रार और रूकावट है। क्या इन ख़ूबियों को लेकर वह कभी उन कामों के अनुकूल हो सकती है और ज़िंदगी के उन दायरों में कामियाब हो सकती है, जो मज़बूती, हुकूमत, ताक़त और जमाव चाहते हैं, जिन में नरम भावनाओं के बजाए मज़बूत इरादे और बे-लाग राय की ज़रूरत है? संस्कृति के इन विभागों में औरत को घसीट लाना ख़ुद उस को भी बर्बाद करना है और उन विभागों को भी।

इस में औरत के लिए तरक़्क़ी नहीं, बल्कि गिरावट है। तरक़्क़ी इस को नहीं कहते कि किसी की स्वाभाविक क्षमताओं को दबाया और मिटाया जाए और उस में बनावटी तौर पर वे योग्यताएं पैदा करने की कोशिश की जाएं, जो प्राकृतिक तौर पर उस के भीतर न हों, बल्कि तरक़्क़ी इस का नाम है कि स्वाभाविक क्षमताओं को उभारा जाए, उन को निख़ारा और चमकाया जाए और उन के लिए बेहतर अमल के मौक़े पैदा किये जाएं।

इस में औरत के लिए कामियाबी नहीं, नाकामी है। ज़िंदगी के एक पहलू में औरतें कमज़ोर हैं और मर्द बढ़े हुए हैं, दूसरे पहलू में मर्द कमज़ोर हैं और औरतें बढ़ी हुई हैं। तुम ग़रीब औरतों को उस पहलू में मर्द के मुक़ाबले पर लाते हो, जिस में वे कमज़ोर हैं। इस का ज़रूरी नतीजा यही निकलेगा कि औरतें हमेंशा मर्दों से कमतर रहेंगी। तुम चाहे जितने उपाय कर लो, नुम्किन नहीं है कि औरत-

जाति से अरस्तू, इब्ने सीना, कांट, हेगल, ख़य्याम, शेक्सपियर, सिकन्दर, निपोलियन, सलाहुद्दीन, निज़ामुल मुल्क तूसी और बिस्मार्क की टक्कर का एक व्यक्ति भी पैदा हो सके, हां, तमाम दुनिया के मर्द चाहे कितना ही सर मार लें, वे अपनी पूरी जाति में से एक मामूली दर्जे की मां भी पैदा नहीं कर सकते।

इस में ख़ुद संस्कृति का भी फ़ायदा नहीं, नुक़्सान है। इंसानी ज़िंदगी और सभ्यता को जितनी ज़रूरत मज़बूती, सख़्ती और जमाव की है, उतनी ही ज़रूरत नर्मी, बहाव और लचक की भी है। जितनी ज़रूरत अच्छे सेनापतियों, अच्छे प्रशासकों और अच्छे हाकिमों की है, उतनी ही ज़रूरत अच्छी माओं, अच्छी बीवियों और अच्छी गृहस्तनों की भी है। दोनों तत्वों में से जिस को भी गिराया जायेगा, संस्कृति को बहरहाल नुक़्सान उठाना पड़ेगा।

काम का यह वह बंटवारा है, जो ख़ुद प्रकृति ने इंसान की दोनों जातियों के बीच कर दिया है। जीव-विज्ञान, अंग-विज्ञान, मनोविज्ञान और समाज के तमाम विज्ञान इस बंटवारे की ओर इशारा कर रहे हैं। बच्चा जनने और पालने की ख़िदमत का औरत के सुपुर्द होना एक ऐसा निर्णायक तथ्य है, जो अपने आप इंसानी संस्कृति में उस के लिए काम का एक दायरा ख़ास कर देता है और किसी बनावटी तरीक़ेमें यह ताक़त नहीं है कि प्रकृति के इस फ़ैसले को बदल सके। एक भली संस्कृति वही हो सकती है जो एक तो इस फ़ैसले को ज्यों का त्यों क़ुबूल करे, फिर औरत को उस की सही जगह पर रख कर उसे समाज में इज़्ज़त की जगह दे, उस के जायज़ सांस्कृतिक व आर्थिक हक़्क़ों को माने, उस पर सिर्फ़ घर की ज़िम्मेदारियों का बोझ डाले और घर के बाहर की ज़िम्मेदारियों और ख़ानदान का सिरधरापन मर्द के सुपुर्द कर दे। जो संस्कृति इस बंटवारे को मिटाने की कोशिश करेगी, वह अस्थायी रूप से भौतिक उन्नति और शान व शौकत की कुछ चीज़ें पेश कर सकती है, लेकिन आख़िरकार ऐसी संस्कृति की बर्बादी यक़ीनी है, क्योंकि जब औरत पर मर्द के बराबर आर्थिक व सांस्कृतिक ज़िम्मेदारियों का बोझ डाला जाएगा, तो वह अपने ऊपर से स्वाभाविक कर्तव्यों का बोझ उतार फेंकेगी[३४] और उसका नतीजा न सिर्फ़ संस्कृति, बल्कि मानवता

---

[34] `h _mÌ VH©$ `m g§^mdZm hr Zht, ~{ëH$ EH$ ì`mdhm[aH$ VÏ` h¡ & _X© Ho$ ~am~a Am{W©H$ d gm§ñH¥$ {VH$ {Oå_oXm[a`m| H$m ~moP n‹S OmZo Ho$ ~mX hr Am¡aV H$mo AnZr ñdm^m{dH$

की बर्बादी होगी। औरत अपनी कमज़ोर तबियत और अपनी प्राकृतिक बनावट के ख़िलाफ़ अगर कोशिश भी करे, तो किसी न किसी हद तक मर्द के सब कामों को संभाल ले जाएगी, लेकिन मर्द किसी तरह भी अपने आप को बच्चे जनने और पालने के क़ाबिल नहीं बना सकता।

प्रकृति के अमल के इस बंटवारे के अनुसार ख़ानदान का जो गठन होगा, और रहन-सहन में मर्द व औरत की ज़िम्मेदारियों को जिस तरह तै किया जाएगा, उस के ज़रूरी हिस्से अनिवार्यत: इस तरह होंगे

१. ख़ानदान के लिए रोज़ी कमाना, उस की हिमायत व हिफ़ाज़त करना और संस्कृति की श्रमपूर्ण सेवाओं का अदा करना मर्द का काम हो और उस की तालीम व तर्बियत इस तरह हो कि वह इन मक़सदों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदेमदं बन सके।

२. बच्चों की परवरिश, गृहस्ती की ज़िम्मेदारियां और घर की ज़िंदगी को सुकून व राहत की जन्नत बनाना औरत का काम हो और उस को बेहतर से बेहतर तालीम व तर्बियत देकर इन्हीं मक़सदों के लिए तैयार किया जाए।

३. ख़ानदान की व्यवस्था को बनाये रखने और उसको बिखराव और निराज से बचाने के लिए एक व्यक्ति को क़ानूनी हदों के अन्दर ज़रूरी हकिमाना अख़्तियार और अधिकार मिले हुए हों, ताकि ख़ानदान एक बे-सिरी फ़ौज बनकर न रह जाए। ऐसा व्यक्ति सिर्फ़ मर्द हीं हो सकता है, क्योंकि ख़ानदान के जिस मेम्बर के दिमाग़ और दिल की हालत बार-बार माहवारी के दिनों में

{µOå_oXm[a`m± (Zñb H$s CËn{Îm, CRmZ, nmbZ-nmofU Am{X---Am¡a Bg g~ Ho ${bE Kaoby H$m_m| H$s AXmEJr H$aVo hwE Ka _| hr _m¡OyX ahZm) ^mar ~moP ~Z JBª & Bg Ho$ níMmV² J^©-{ZamoY Am¡a J^©nmV² ^r hmoZo bJm & ^ŒU-hË`m (Foeticide) H$m, `h ^r EH$ nŒoaH$ ~Zm & ~ƒm| H$mo nmbZ-nmofU Ho$ {bE _m± H$s JmoX, ñZoh d __Vm H$s OJh XmB©, Am`m Zm¡H$amZr Am¡a {eewnmbZ-J¥hm| (Cratches) Zo bo br, Š`m|{H$ _m± Zo AnZo H$V©ì`m| H$m `h ~moP AnZo D$na go CVma \|Hm nŒHmeH

और हमल के ज़माने में बिगड़ती हो, वह बहरहाल इन अख़्तियारों और अधिकारों को इस्तेमाल करने के क़ाबिल नहीं हो सकता।

४. संस्कृति की व्यवस्था में इस बंटवारे और तर्बियत वग़ैरह को बाक़ी रखने के लिए ऐसे अनिवार्य तथा दृढ़ प्रावधान किए जाएं कि बे-अक़्ल लोग अपनी मूर्खता से मर्दों और औरतों के कार्य-क्षेत्रों को मिला कर इस भली सांस्कृतिक व्यवस्था को तलपट न कर सकें।

इन्सानी कमज़ोरियां

पिछले पन्नों में ज्ञानपूर्ण खोजों और साइंसी तजुर्बों की मदद से हम ने यह दिखाने की कोशिश की है कि अगर इंसानी प्रकृति के तक़ाज़ों और इंसान के ज़ेहन, तबियत और जिस्मानी बनावट के तमाम पहलुओं का विचार कर के संस्कृति की एक सही व्यवस्था बनाई जाए, तो यौनाचार की हद तक उस के ज़रूरी उसूल और बुनियादें क्या होनी चाहिएं। इस बहस में कोई चीज़ ऐसी नहीं बयान की गयी है जो उलझन में डाल दे या जिस पर आपत्ति की गुंजाइश निकलती हो। जो कुछ कहा गया है, वह ज्ञान व विवेक की मज़बूत दलीलों में से है और आम तौर से सभी ज्ञान और विवेक वाले इसे जानते हैं, लेकिन इंसानी मजबूरी का कमाल देखिए कि जितनी संस्कृति-व्यवस्थाएं ख़ुद इंसान ने गढ़ रखी हैं, उनमें से एक में भी प्रकृति की इन जानी-पहचानी हिदायतों को पूरे का पूरा ध्यान में नहीं रखा गया है। यह तो ज़ाहिर है कि इंसान ख़ुद अपनी प्रकृति के तक़ाज़ों को नहीं जानता है। उससे ख़ुद अपनी ज़ेहनी हालत और जिस्मानी ख़ूबियां छिपी हुई नहीं हैं, पर इसके बावजूद यह हक़ीक़त बिल्कुल खुलीं हुई है कि आज तक वह कोई ऐसी संतुलित संस्कृति-व्यवस्था गढ़ने में कामियाब न हो सका, जिसके उसूलों और बुनियादों में इन सब तक़ाज़ों, ख़ूबियों, मस्लहतों और मक़सदों की रियायत की गयी हो।

नाकामी की असल वजह

इस की वजह वही है, जिस की ओर हम इस पुस्तक के शुरू में इशारा कर चुके हैं। इंसान की यह स्वाभाविक कमज़ोरी है कि उस की नज़र किसी मामले के तमाम पहलुओं पर कुल मिला कर हावी नहीं हो सकती। हमेशा कोई एक पहलू उसे ज़्यादा अपील करता है और अपनी ओर खींच लेता है। फिर जब वह एक ओर झुक जाता है, तो दूसरी दिशाएं या तो उस की नज़र से बिल्कुल ही ओझल हो जाती हैं या वह जान-बूझ कर उन्हें अनदेखी कर देता है। ज़िंदगी के छोटे और व्यक्तिगत मामलों तक में इंसान की यह कमज़ोरी साफ़ नज़र आती है। फिर कैसे मुम्किन है कि संस्कृति व सभ्यता की बड़ी-बड़ी समस्याएं, जिन में से हर एक अपने भीतर अनगिनत छिपे-खुले पहलू रखता है, इस कमज़ोरी के असर से बचे रह जाएं। ज्ञान और बुद्धि की दौलत से इंसान को मालामाल तो ज़रूर किया गया है, पर आम तौर से ज़िंदगी के मामलों में मात्र बौद्धिकता इस की रहनुमा नहीं

होती। भावनाएं और रूझान पहले इस को एक रूख पर मोड़ देते हैं, फिर जब वह इस ख़ास रूख़ की ओर मुतवज्जह हो जाता है, तब बुद्धि से दलील लाता है और ज्ञान से मदद लेता है। इस हालत में अगर ख़ुद उस का ज्ञान उस को मामले के दूसरे रूख़ दिखाये और उस की अपनी बुद्धि उसकी यकरूख़ी पर तंबीह करे, तब भी वह अपनी ग़लती नहीं मानता, बल्कि ज्ञान और बुद्धि को मजबूर करता है कि उस के रूझान की ताईद में दलीलें जुटाये।

कुछ खुली मिसालें

रहन-सहन की जिस समस्या से इस वक़्त हम बहस कर रहे हैं, उस में इंसान की यही यकरूख़ी अपनी अतियों की पूरी शान के साथ ज़ाहिर हुई है।

एक गिरोह अख़्लाक़ और रूहानियत के पहलू की ओर झुका और उस में यहां तक अति कर गया कि औरत और मर्द के यौन-संबंध ही को सिरे से नफ़रत के क़ाबिल क़रार दे बैठा। यह असन्तुलन हम को बौद्ध मत, ईसाईयत और कुछ हिन्दू धर्मों में नज़र आता है और इसी का असर है कि अब तक दुनिया के एक बड़े हिस्से में यौन-संबंध को अपने आप में एक बुराई समझा जाता है, चाहे वह निकाह के दायरे में हो या उस से बाहर। उस का नतीजा क्या हुआ ? यह कि सन्यासवाद की अप्राकृतिक व असभ्य ज़िंदगी को अख़्लाक़ और मन की शुद्धता व पवित्रता का लक्ष्य समझा गया। मानव-जाति के बहुत से लोगों ने जिन में मर्द भी हैं और अैरतें भी, अपनी ज़ेहनी और जिस्मानी ताक़तों को प्रकृति से हटने और टकराने में ख़त्म कर दिया और जो लोग प्रकृति के तक़ाज़ो से आपस में मिले भी, तो इस तरह जैसे कोई आदमी मजबूर होकर अपनी किसी गन्दी ज़रूरत को पूरा करता है। ज़ाहिर है कि इस क़िस्म का ताल्लुक़ न तो जोड़ों के दर्मियान मुहब्बत और आपसी मदद का ताल्लुक़ बन सकता है और न इससे कोई भली और विकासशील संस्कृति वजूद में आ सकती है। यही नहीं बल्कि सामाजिक व्यवस्था में औरत के रूत्बे को गिराने की ज़िम्मेदारी भी बड़ी हद तक इसी कथित अख़्लाक़ी विचार पर है। सन्यास के मानने वालों ने यौन-आकर्षण को शैतानी भ्रम और इस आकर्षण की वजह, यानी औरत को शैतान का एजेंट क़रार दिया, और उस को ऐसा नापाक वजूद ठहराया, जिस से नफ़रत करना हर उस आदमी के लिए ज़रूरी है, जो मन की पाकी चाहता हो। ईसाई, बौद्ध और कुछ हिन्दू साहित्य में औरत की यही कल्पना छायी हुई है। जो सामाजिक व्यवस्था

इस कल्पना के तहत तैयार की गयी हो, उस में औरत का रूत्व जैसा कुछ हो सकता है, उस का अन्दाज़ा लगाना कुछ मुश्किल नहीं।

इस के ख़िलाफ़ दूसरे गिरोह ने इंसान के जिस्मानी तक़ाज़ों की रियायत की, तो उसमें इतना आगे निकल गया कि इंसानी प्रकृति तो दूर की बात, हैवानी प्रकृति के तक़ाज़ों को भी नज़रअंदाज़ कर दिया । पाश्चात्य संस्कृति में यह स्थिति में यह स्थिति इतनी स्पष्ट हो चुकी है कि अब छिपाये नहीं छिप सकती। इस के क़ानून में व्याभिचार कोई जुर्म ही नहीं है । जुर्म अगर है, तो ज़ोर-ज़बरदस्ती है, या किसी दूसरे के क़ानूनी हक़ में दख़लंदाज़ी । इन दोनों में से किसी जुर्म में शिर्क त न हो, तो व्यभिचार (यानी यौन-संबंध का हनन) अपने आप में कोई दण्डनीय अपराध यहां तक कि कोई लज्जाजनक नैतिक दोष भी नहीं है। यहां तक तो वह कम से कम हैवानी प्रकृति की हद में था, लेकिन इसके बाद वह इस से भी आगे बढ़ा। उस ने यौन-संबंध के हैवानी मक़्सद यानी बच्चा जनने और नस्ल को बाक़ी रखने को भी नेज़रंदाज़ कर दिया और उसे सिर्फ़ शारीरिक आनंद और स्वाद पाने का ज़रिया बना लिया । यहां पहुंच कर वही इंसान, जो बेहतरीन बनावट पर पैदा किया गया था, सब से निचले गढ़े में गिर जाता है। पहले वह अपनी इंसानी प्रकृति से हट कर के हैवानों का सा बिघटित यौन-संबंध अपनाता है, जो किसी संस्कृति की बुनियाद नहीं बन सकता। फिर वह अपनी हैवानी प्रकृति से भी हटने लगता है और इस ताल्लुक़ के प्राकृतिक नतीजे यानी औलाद की पैदाइश को भी रोक देता है, ताकि दुनिया में उस की नस्ल को बाक़ी रखने वाली नस्लें वजूद ही में न आने पायें।

एक गिरोह ने ख़ानदान की अहमियत को महसूस किया, तो उस का गठन इतने बन्धनों के साथ किया कि व्यक्ति को जकड़ कर रख दिया और अधिकारों और कर्त्तव्यों में कोई सन्तुलन ही बाक़ी न रखा । इस की एक खुली मिसाल हिन्दुओं की ख़ानदानी व्यवस्था है। उस में औरत के लिए इरादे और अमल की कोई आज़ादी नहीं। संस्कृति और आर्थिक मामलों में उस का कोई हक़ नहीं। वह लड़की है तो लौंडी है बीवी है तो लौंडी है,माँ है तो लौंडी है, बेवा है तो लौंडी से भी बदतर, ज़िंदा ही दफ़न की हुई है। उस के हिस्से में सिर्फ़ कर्त्तव्य ही कर्त्तव्य हैं, अधिकारों के ख़ाने में एक शानदार शून्य के सिवा कुछ नहीं। समाज की इस व्यवस्था में औरत को शुरू ही से एक बे-ज़ुबान जानवर बनाने की कोशिश की जाती है, ताकि उस में सिरे से अपने स्वाभिमान का कोई एहसास

पैदा ही न हो। बेशक इस तरीक़े से ख़ानदान की बुनियादों को बहुत मज़बूत कर दिया गया और औरत के विद्रोह की कोई संभावना न रही। लेकिन गिरोह के पूरे आधे हिस्से को ज़लील और पस्त करके इस सामाजिक व्यवस्था ने अपनी तामीर और तरक़्क़ी में ख़राबी की शक्ल और बड़ी ख़तरनाक शक्ल पैदा कर दी, जिस के नतीजों को अब हिंदू भी महसूस कर रहे हैं।

एक दूसरे गिरोह ने औरत के रूत्बे को ऊंचा उठाने की कोशिश की और उसको इरादा व अमल की आज़ादी दी, तो उस में इतना आगे बढ़ गया कि ख़ानदान के बन्धन ही टूट गये। बीवी है तो आज़ाद, बेटी है तो आज़ाद, बेटा है तो आज़ाद, ख़ानदान का हक़ीक़त में कोई सिरधरा नहीं है, किसी का कोई निगरां नहीं। बीवी से शौहर नहीं पूछ सकता कि तूने रात कहां बसर की। बेटी से बाप नहीं पूछ सकता कि तू किस से मिलती है, कहां जाती है। मियाँ-बीवी दो बराबर के दोस्त हैं, जो बराबर की शर्तों के साथ मिल कर घर बनाते हैं और औलाद की हैसियत उस समिति में सिर्फ़ छोटे सदस्यों की-सी है। मिज़ाजों और तबीयतों का ज़रा-सा बे-मेल होना इस बने हुए घर को हर वक़्त बिगाड़ सकता है, क्योंकि आज्ञापालन का ज़रूरी हिस्सा, जो हर व्यवस्था को बाक़ी रखने के लिए ज़रूरी है, इस गिरोह में सिरे से मौजूद ही नहीं। यह पश्चिमी रहन-सहन है। वही पश्चिमी रहन-सहन जिस के अपनाने वालों को संस्कृति और समाज-विज्ञान में पैग़म्बरी का दावा है। उन की पैग़म्बरी का सही हाल आप को देखना हो, तो यूरोप और अमेरिका के निकाह व तलाक़ की किसी अदालत या किसी बाल-अपराध अदालत (गींींशपळश्रश उेीीं) की रिपोर्ट उठा कर देख लीजिए। अभी हाल में इंग्लैंड के होम आफ़िस से अपराधों के जो आंकड़े छपे हैं, उन से मालूम होता है कि कमसिन लड़कों और लड़कियों में अपराधों की तादाद हर दिन बढ़ती चली जा रही है और इसकी ख़ास वजह यह बयान की गयी है कि ख़ानदान का डिसिप्लिन बहुत कमज़ोर हो गया है। देखिए इश्रींश इेज़ ेष उीळाश डींींळींीळली १९३४.

इंसान और ख़ास तौर पर औरत की प्रकृति में शर्म व हया का जो तत्व रखा गया है, उसको ठीक-ठीक समझने और अमलन पहनावे और रहन-सहन के तरीक़े के भीतर उस की सही नुमाइन्दगी करने में तो किसी इंसानी संस्कृति को कामियाबी नहीं हुई, शर्म व हया को इंसान और ख़ास कर औरत की बेहतरीन ख़ूबियों में गिना गया है, पर पहनावे और रहन-सहन में उस की गिनती किसी

अक़्ली तरीक़े और किसी समतल नियम की शक्ल में नहीं हुई। सत्र[३५] की सही हदें तै करने और इस सब को सामंजस्य के साथ ध्यान में रखने की किसी ने कोशिश नहीं की। मर्दों और औरतों के पहनावे और उनके तौर-तरीक़ों में हयादारी की शक्लें किसी उसूल के तहत मुक़र्रर नहीं की गयीं। रहन-सहन में मर्द और मर्द, औरत और औरत, मर्द औरत के बीच परदे और बे-परदगी की मुनासिब और माक़ूल हदबन्दी की ही नहीं की गयी। सभ्यता, शिष्टता और आम अख़्लाक़ की नज़र में यह मामला जितना अहम था, उतना ही उस के साथ जान-बूझ कर ग़फ़लत की गयी। इसे कुछ तो रस्म व रिवाज पर छोड़ दिया गया, हालांकि रस्म व रिवाज सामूहिक हालात के साथ बदल जाने वाली चीज़ हैं और कुछ, व्यक्तियों के निजी रूझान और चुनाव पर छोड़ दिया गया, हालांकि शर्म व हया के जज़्बे के पहलू से न तमाम लोग बराबर हैं और न हर आदमी इतना अच्छा ज़ौक़ और चुनाव की सही ताक़त रखता है कि अपनी इस भावना के अनुसार ख़ुद कोई मुनासिब तरीक़ा अपनाये। इसी का नतीजा है कि विभिन्न गिरोहों के पहनावे और रहन-सहन में हयादारी और बेहयाई की अनोखी मिलावट नज़र आती है, जिस में कोई बराबरी, कोई सामंजस्य किसी उसूल की पाबन्दी नहीं पायी जाती। पूर्वी देशों में तो यह चीज़ सिर्फ़ बे-ढंगेपन ही तक सीमित रही, लेकिन पाश्चात्य क़ौमों के पहनावे और रहन-सहन में जब बेहयाई का तत्व हद से ज़्यादा बढ़ा, तो उन्होंने सिरे से शर्म व हया की जड़ ही काट दी। उन का नया नज़रिया यह है कि शर्म व हया असल में कोई प्राकृतिक भावना ही नहीं है, बल्कि सिर्फ़ कपड़ा पहनने की आदत ने उसे पैदा कर दिया है। सत्र और हयादारी का कोई ताल्लुक़ अख़्लाक़ और शिष्टता से नहीं, बल्कि वह तो हक़ीक़त में इंसान के यौन प्रेरकों को हरकत में लाने वाले कारकों में से एक

---

[35] gV²a = eara Ho$ do A§J Omo Xygam| go NwnmE OmE, TH$ H$a aIo OmE§ & Bñbm_ _| Am¡aV H$m gV²a Moham d hWo{b`m§ Nmo‹S H$a nyam eara h¡, Am¡a _X© H$m gV²a Zm{^ (Naval) Ho$ ZrMo Am¡a KwQZm| Ho$ D$na VH$ H$m {hñgm h¡$& nŒHmeH

कारक है।[३६] बेहयाई के इसी फ़लसफ़े की व्यावहारिक व्याख्याएं हैं वे अधनंगे पहनावे, वे जिस्मानी हुस्न के मुक़ाबले, वे नंगे नाच, वे नंगी तस्वीरें, वे स्टेज पर बेहयाई भरे प्रदर्शन, वह नंगेपन (छींवळीा) का हर दिन बढ़ता आन्दोलन, और वह हैवानियत की ओर इंसान की वापसी।

यही असन्तुलन इस मसले के दूसरे पहलुओं में भी नज़र आता है।

जिन लोगों ने अख़्लाक़ और पाकदामनी को अहमियत दी, उन्होंने औरत की हिफ़ाज़त एक जानदार, सूझ-बूझ वाले जीव के वजूद की हैसियत से नहीं की, बल्कि एक बेजान ज़ेवर, एक क़ीमती पत्थर की तरह की और उस की तालीम व तर्बियत के विषय को नज़रंदाज़ कर दिया, हालांकि सभ्यता व संस्कृति की बेहतरी के लिए यह विषय औरत के हक़ में भी उतना ही अहम था, जितना मर्द के लिए था। इस के ख़िलाफ़, जिन्होंने तालीम व तर्बियत की अहमियत को महसूस किया, उन्होंने अख़्लाक़ और पाकदामनी की अहमियत को नज़ररंदाज़ करके एक दूसरी हैसियत से संस्कृति व सभ्यत की तबाही का सामान जुटा दिया।

जिन लोगों ने प्राकृतिक कार्य-क्षेत्र के बंटवारे को ध्यान में रखा, उन्होंने संस्कृति व सभ्यता की सेवाओं में से सिर्फ़ गृहस्ती और बच्चों की तर्बियत की ज़िम्मेदारियां औरत पर डालीं, और मर्द के ज़िम्मे रोज़ी जुटाने का काम दिया। लेकिन इस बटवारे में वे सन्तुलन बाक़ी न रख सके। उन्होंने औरत से तमाम आर्थिक अधिकार छीन लिये, विरासत में उस को किसी क़िस्म का हक़ न दिया, मिल्कियत के तमाम हक़ मर्दों को दे दिये और इस तरह आर्थिक हैसियत से औरत को बिल्कुल अपाहज करके औरत और मर्द के दर्मियान लौंडी और आक़ा का ताल्लुक़ क़ायम कर दिया। इसके मुक़ाबले में एक दूसरा गिरोह उठा, जिस ने इस बे-इंसाफ़ी को ख़त्म करना चाहा और औरत को उस के आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार दिलाने का इरादा किया, पर वे लोग दूसरी ग़लती कर बैठे। उनके दिमाग़ों पर भौतिकता का ग़लबा था, इसलिए उन्होंने औरत को आर्थिक व सांस्कृतिक ग़ुलामी से निजात दिलाने का मतलब यह समझा कि उस को भी मर्द की तरह ख़ानदान का कमाने वाला व्यक्ति बना दिया जाए और संस्कृति की

---

36 `h RrH$ dhr {dMma h¡ Omo doñQa _mH©$ (Wester Marck) Zo AnZr nwñVH$ The History of Human Marriage _| µOm{ha {H$`m h¡ &

सारी ज़िम्मेदारियों को संभालने में मर्द के साथ उसे बराबर शरीक किया जाए। भौतिकता के हिसाब से इस तरीक़े में बड़ा आकर्षण था, क्योंकि इस से न सिर्फ़ मर्द का बोझ हल्का हो गया, बल्कि रोज़ी कमाने में औरत के शरीक हो जाने से दौलत हासिल करने में और ऐश के सामान जुटाने में क़रीब-क़रीब दोगुने की बढ़ौत्तरी हो गयी। इस के साथ ही क़ौम की आर्थिक और सांस्कृतिक मशीन को चलाने के लिए पहले के मुक़ाबले में दोगुने हाथ और दोगुने दिमाग़ जमा हो गये, जिस से यकायकी संस्कृति की तरक़्क़ी की रफ़्तार तेज़ हो गयी, लेकिन भौतिक और आर्थिक पहलू की ओर इतना हद से ज़्यादा झुक जाने का ज़रूरी नतीजा यह हुआ कि दूसरे पहलू जो अपनी अहमियत में इस एक पहलू से कुछ कम न थे, उन की निगाहों से ओझल हो गये और बहुत से पहलुओं को उन्होंने जानते-बूझते नज़रंदाज़ कर दिया। उन्होंने प्रकृति के क़ानून को जानने के बावजूद जानबूझ कर उस की ख़िलाफ़वर्ज़ी की, जिस पर ख़ुद उन की अपनी साइंसी खोजें गवाही दे रही हैं। उन्होंने औरत के साथ इंसाफ़ करने का दावा किया, पर हक़ीक़त में बे-इंसाफ़ी कर बैठे, जिस पर ख़ुद उनके अपने तजुर्बे गवाह हैं। उन्होंने औरत को बराबरी देने का इरादा किया, पर हक़ीक़त में ना-बराबरी कर बैठे, जिस का सबूत ख़ुद उनके अपने ज्ञान-विज्ञान पेश कर रहे हैं। उन्होंने संस्कृति व सभ्यता में सुधार करना चाहा, पर हक़ीक़त में उस के बिगाड़ के बड़े भयानक साधन जुटा दिए, जिन की सविस्तार जानकारी ख़ुद उन ही की बयान की हुई घटनाओं और ख़ुद उन ही के जुटाये गये आंकड़ों से हमें प्राप्त हुई है। ज़ाहिर है कि वे इन हक़ीक़तों से बे-ख़बर नहीं हैं, पर जैसा कि हम ऊपर बयान कर चुके हैं, यह इंसान की कमज़ोरी है कि वह ख़ुद अपनी ज़िंदगी के लिए क़ानून बनाने में तमाम मस्लहतों की सन्तुलित रियायत का ध्यान नहीं रख सकता। मनोकामनाएं उस को अति के किसी एक रूख़ पर बहा ले जाती हैं और जब वह बह जाता है, तो बहुत-सी मस्लहतें उसकी नज़र से छिप जाती हैं और बहुत-सी मस्लहतों तौर हक़ीक़तों को देखने और जानने के बावजूद वह उनकी ओर से आंखें बन्द कर लेता है। इस इरादी अंधेपन का सबूत हम इससे ज़्यादा कुछ नहीं दे सकते कि ख़ुद एक ऐसे अंधे ही की गवाही पेश कर दें। रूस का एक मशहूर साइंसदां एंतोन नीमलाफ़ (अपींप छळाश्रीं), जो सौ फ़ीसदी कम्युनिस्ट है, अपनी किताब[३७] ढहश इळेश्रेसळलरश्र ढीरसशवू`ष थोरप में साइंस के तजुर्बों से ख़ुद ही औरत

---

[37] Bg {H$Vm~ H$m A§JŒoµOr AZwdmX bÝXZ go

और मर्द की प्राकृतिक ना-बराबरी साबित करने पर लगभग दो सौ पृष्ठ काले करता है, फिर ख़ुद ही इन तमाम साइंसी खोजों के बाद लिखता है

‘आजकल अगर यह कहा जाए कि औरत को संस्कृति-व्यवस्था में सीमित अधिकार दिये जाएं, तो बहुत कम आदमी इस की ताईद करेंगे। हम ख़ुद इस तज्वीज़ के कड़े मुख़ालिफ़ हैं, पर हमें अपने आप को यह धोखा न देना चाहिए कि औरत और मर्द की बराबरी को अमली ज़िंदगी में क़ायम करना कोई सादा और आसान काम है। दुनिया में कहीं भी औरत और मर्द को बराबर कर देने की इतनी कोशिश नहीं की गयी, जितनी सोवियत रूस में की गयी है, किसी जगह इस सिलसिले में इतने निर्पेक्ष व उदार क़ानून नहीं बनाये गये, पर इसके बावजूद सच यह है कि औरत की पोज़ीशन ख़ानदान में बहुत कम बदल सकी है, न सिर्फ़ ख़ानदान में, बल्कि समाज में भी।’

पृ.७६

‘अब तक औरत और मर्द की ना-बराबरी की कल्पना, निहायत गहरी कल्पना, न सिर्फ़ उन वर्गों में, जो ज़ेहनी हैसियत से निचले दर्जे के हैं, बल्कि ऊंचे दर्जे के शिक्षित सोवियत वर्गों में भी जमी हुई है और ख़ुद औरतों में इस कल्पना का इतना गहरा असर है कि अगर उनके साथ ठेठ बराबरी का सुलूक किया जाए, तो वह इसे मर्द के दर्जे से गिरा हुआ समझेंगी, बल्कि इसे मर्द की कमज़ोरी और नामर्दी समझेंगी। अगर हम इस मामले में किसी वैज्ञानिक, किसी लेखक, किसी छात्र, किसी व्यापारी या किसी पक्के कम्युनिस्ट के विचारों की खोज करें, तो बहुत जल्द ही यह हक़ीक़त खुल जाएगी कि औरत को वह अपने बराबर का नहीं समझता। अगर हम आज का कोई नावेल पढ़ें, चाहे वह कैसे हीं आज़ाद ख़्याल लेखक का लिखा हुआ हो, यक़ीनन उस में हम को कहीं न कहीं ऐसे लेख मिलेंगे, जो औरत के बारे में इस कल्पना की चुग़ली खा जाएंगी।’

‘इसकी वजह? इसकी वजह यह है कि यहां इंक़िलाबी उसूल एक बड़ी अहम स्थिति से टकरा जाते हैं, यानी इस हक़ीक़त से कि जीव-

---

1932 B©. _| Nn MwH$m h¡ &

विज्ञान (इळेश्रेसू) के एतबार से दोनों जातियों के बीच बराबरी नहीं है और दोनों पर बराबर बोझ नहीं डाला गया है।'

(पृ. ७७)

एक अंश और देख लीजिए, फिर नतीजा आप ख़ुद निकाल लेंगे

'सच्ची बात तो यह है कि तमाम वर्कर्स (थीज्ञर्शीा) में यौन-निराज (डर्शीरिश्र अपरीलहू) की निशानियां ज़ाहिर हो चुकी हैं। यह एक बड़ी ही ख़तरनाक हालत है जो सोशलिस्ट व्यवस्था को तबाह करने की धमकी दे रही है । हर मुम्किन तरीक़े से इस का मुक़ाबला करना चाहिए, क्योंकि इस मोर्चे पर लड़ने में बड़ी कठिनाइयां हैं। मैं हज़ारों ऐसी घटनाओं का हवाला दे सकता हूं जिन से ज़ाहिर होता है कि वासनामय बेक़ैदी (डर्शीरिश्र ङळलशर्पीळेंीपर्शीा) न सिर्फ़ अनभिज्ञ लोगों में, बल्कि वर्कर्स के अति शिक्षित व बुद्धिजीवी लोगों में भी फैल गयी है।' पृ. २०२-२०३

इन अंशों की गवाही कैसी खुली हुई गवाही है। एक ओर यह माना जा रहा है कि औरत और मर्द के दर्मियान प्रकृति ने ख़ुद ही बराबरी नहीं क़ायम की, अमली ज़िंदगी में भी बराबरी क़ायम करने की कोशिशें कामियाब नहीं हुई और जिस हद तक प्रकृति से लड़ कर इस तरह की बराबरी क़ायम की गयी, उसका नतीजा यह हुआ कि बेहयाइयों की एक बाढ़ आ गयी, जिससे सोसाइटी को सारी व्यवस्था ख़तरे में पड़ गयी। दूसरी ओर यह दावा है कि सामूहिक व्यवस्था में औरत के हक़ों पर किसी क़िस्म की हदबन्दियां न होनी चाहिएं और अगर ऐसा किया जायेगा, तो हम उसका विरोध करेंगे। इससे बढ़ कर और क्या सबूत इस बात का होगा कि इंसान अनपढ़ नहीं, बल्कि पढ़ा-लिखा, अक़्लमंद, जानकार इंसान भी अपने मन के रूझानों का कैसा ग़ुलाम होता है कि ख़ुद अपनी खोज़ों को झुठलाता है, अपने तजुर्बे को नकारता है और सब तरफ़ से आंखें बन्द करके मनोकामनाओं के पीछे एक ही रूख़ पर इंतिहा (अति) को पहुंच जाता है, चाहे इस इन्तिहा के ख़िलाफ़ उसके अपने ही ज्ञान-विज्ञान कितनी ही मज़बूत दलीलें पेश करें, उसके कान कितनी ही घटनाओं को सुन लें और उसकी आंखें कितने

ही बुरे नतीजों को देख लें। क़ुरआन, इस परिस्थिति पर बड़ी सटीक टिप्पणी करता है:

'फिर क्या कभी तुमने उस आदमी के हाल पर भी ग़ौर किया जिस ने अपनी मनोकामनाओं को अपना ख़ुदा बना लिया और अल्लाह ने जानने के बावजूद उसे गुमराही में फेंक दिया और उसके दिल और कानों पर मुहर लगा दी और उसकी आंखों पर परदा डाल दिया ? अल्लाह के बाद अब और कौन है जो उसे हिदायत दे? क्या तुम लोग कोई सबक़ नहीं लेते?

(सूरा अल-जासिया:आयत २३)

इस्लामी क़ानून के सन्तुलन की शान

असन्तुलन और अतियों की इस दुनिया में सिर्फ़ एक संस्कृति-व्यवस्था ऐसी है, जिस में हद दर्जे का सन्तुलन पाया जाता है, जिसमें इन्सानी प्रकृति के एक-एक पहलू यहां तक कि बहुत ज़्यादा छिपे हुए पहलुओं की भी रियायत की गई है। इन्सान की जिस्मानी बनावट और उसके हैवानी स्वभाव और उसकी इन्सानी प्रकृति और उसके मनोवैज्ञानिक गुण और उसकी प्राकृतिक प्रेरणाओं के बारे में पूरी और सविस्तार जानकारी से काम लिया गया है। इन में से एक-एक चीज़ के पैदा करने का, प्रकृति का जो मक़्सद है, उस को पूरे कमाल के साथ इस तरह पूरा किया गया है कि किसी दूसरे मक़्सद, यहां तक कि छोटे-से-छोटे मक़्सद को भी नुक़्सान नहीं पहुंचता और आख़िर में ये तमाम मक़्सद मिल कर उस बड़े मक़्सद के पूरा करने में मददगार होते हैं, जो ख़ुद इन्सान की ज़िदगी का मक्सद है। यह बीच का रास्ता सन्तुलन से इतना भरपूर है कि कोई ख़ुद अपनी अक़्ल और कोशिश से उसे पैदा कर ही नहीं सकता। इन्सान का गढ़ा हुआ क़ानून हो और उसमें किसी जगह भी यकरूख़ी ज़ाहिर न हो, ना मुम्किन ! बिल्कुल ना मुम्किन ! ख़ुद गढ़ना तो दूर की बात सच तो यह है कि मामूली इन्सान तो इस संतुलित और इन्तिहाई हकीमाना क़ानून की हिक्मतों को पूरी तरह समझ भी नहीं सकता, जब तक वह ग़ैर-मामूली सद्स्वभाव न रखता हो और उस पर वर्षों तक ज्ञान और तजुर्बों से सीख अर्जित न कर ले। और फिर वर्षों सोच-विचार न करता रहे। मैं इस क़ानून की तारीफ़ इसलिए नहीं करता हूं कि मैं इस्लाम पर ईमान लाया हूं, बल्कि असल में इस्लाम पर ईमान लाया ही इसलिए हूं कि मुझे इसनें कमाल दर्जे का सन्तुलन और प्राकृतिक नियमों के साथ

ज़बरदस्त मेल नज़र आता है, जिसे देख कर मेरा दिल गवाही देता है कि यक़ीनन इस क़ानून का बनाने वाला वही है जो ज़मीन व आसमान का पैदा करने वाला और हाज़िर और ग़ैब का जानकार है और सच तो यह है कि अलग-अलग दिशाओं में बहक जाने वाले आदम की औलाद को न्याय व सन्तुलन का मज़बूत तरीक़ा वही बता सकता है

कुरआन कहता है:

'कहो, ऐ अल्लाह! आसमानों और ज़मीन के पैदा करने वाले! हाज़िर व ग़ायब के जानने वाले! तू ही अपने बन्दों के दर्मियान उस चीज़ का फ़ैसला करेगा, जिसमें वे मतभेद करते रहे हैं।'
(सूरा ज़ुमर ३९:४६)

इस्लामी रहन-सहन की व्यवस्था-१

बुनियादी नज़रिया

यह बात इस्लाम की ख़ूबियों में से है कि वह अपने क़ानून की हिक्मत पर भी ख़ुद ही रोशनी डालता है। रहन-सहन में औरत और मर्द के ताल्लुक़ात को मज़बूत बनाने के लिए जो क़ानून इस्लाम में पाया जाता है, उसके बारे में ख़ुद इस्लाम ही ने हम को बता दिया है कि इस क़ानून की बुनियाद हिक्मत के किन उसूलों और प्रकृति की किन हक़ीक़तों पर है।

जोड़ा बनाने का बुनियादी मतलब

इस सिलसिले में सब से पहली हक़ीक़त, जिस पर से परदा उठाया गया है, यह है

'और हर चीज़ के हमने जोड़े पैदा किए हैं।'

(सूरा-अज़-ज़ारियात ५१:४९)

इस आयत में जोड़े के क़ानून (ड्री जष झरळी) की व्यापक्ता की ओर इशारा किया गया है। दुनिया के कारख़ाने का इंजीनियर ख़ुद अपनी इन्जीनियरी का यह भेद खोल रहा है कि उसने दुनिया की यह पूरी मशीन जोड़े-जोड़े के क़ायदे पर बनायी है, यानी इस मशीन के तमाम कल पुर्ज़े जोड़ों (झरळीी) की शक्ल में बनाये गए हैं और इस दुनिया में जितनी कारीगरी तुम देखते हो, वह सब इन्हीं जोड़ो के क़ानून का करिश्मा है।

अब इस पर ग़ौर किजिए कि जोड़ा बनाना क्या चीज़ है ? जोड़ा बनाने में असल बात यह है कि एक चीज़ में क्रिया हो और दूसरी उस क्रिया का असर क़ुबूल करना। एक चीज़ असर डालने वाली हो, दूसरी असर क़ुबूल करने वाली, एक चीज़ हो करने वाली और दूसरी हो उसका फल। असल में यही ताल्लुक़ दो चीज़ों के बीच, जोड़ा होने का ताल्लुक़ है। इसी ताल्लुक़ से तमाम तर्कीबें (संयोग) चलती हैं और इन्हीं तर्कीबों से दुनिया के पैदा होने का सारा कारखाना चलता है।

दुनिया में जितनी चीज़ें हैं, वे सब अपने-अपने वर्ग में जोड़ा-जोड़ा पैदा हुई हैं। और हर जोड़े के दोनों पक्षों के बीच बुनियादी हैसियत से जोड़ा होने का यही

ताल्लुक़ पाया जाता है कि एक कर्त्ता है और दुसरा कर्म का प्रभाव ग्रहण करने वाला। अगरचे जीवों के हर वर्ग में इस ताल्लुक़ की दशा अलग-अलग होती है, जैसे एक जोड़ा होना वह है जो तत्वों में होता है, एक वह है जो ठोस द्रव्यों में होता है, एक वह है जो विकासशील चीज़ों में होता है, एक वह है जो जीवों में होता है। ये सब जोड़े अपनी दशा, स्थिति और प्राकृतिक लक्ष्य के हिसाब से अलग-अलग हैं, लेकिन असल जोड़ा होना इन सब में वही एक है, हर जाति में, चाहे वह किसी वर्ग की हो, प्रकृति के असल मक़्सद यानी बनावट और शक्ल के लिए ज़रूरी है कि जोड़ों में से एक में कार्य शीलता हो और दूसरे में उसे स्वीकार करने का गुण।

ऊपर दी गयी आयत का यह मतलब तै हो जाने के बाद इससे जोड़ा बनाने के तीन बुनियादी उसूल निकाले जा सकते हैं

१. अल्लाह ने जिस फ़ार्मूले पर तमाम दुनिया को पैदा किया है और जिस तरीक़े को अपने कारख़ाने के चलने का ज़रिया बनाया है, वह हरगिज़ तुच्छ और नापाक नहीं हो सकता, बल्कि अपनी असल के एतबार से वह पाक और आदर्णीय ही है और होना चाहिए। कारख़ाने के मुख़ालिफ़ लोग उसे गन्दा और घृणित कह कर उस से बच सकते हैं, पर ख़ुद कारख़ाने का मालिक तो यह कभी नहीं चाहेगा कि उसका कारख़ाना बन्द हो जाए। उसका मंशा तो यही है कि मशीन के तमाम पुर्ज़े चलते रहें और अपने-अपने हिस्से का काम पूरा करें।

२. कार्य और कार्य का असर दानों इस कारख़ाने को चलाने के लिए बहुत ज़रूरी हैं। कर्त्ता और कर्मित दोनों का वजूद उसके कारख़ाने में बराबर की अहमियत रखता है, न कर्त्ता के काम करने की हैसियत में कोई बड़प्पन है और न कर्म के कार्य के असर क़ुबूल करने में कोई नीचपन। कर्त्ता का कमाल यही है कि उसमें कर्म-शक्ति और कर्त्ता-स्थिति पायी जाये, ताकि वह जोड़ा होने का कार्यकारी चरित्र अच्छी तरह अदा कर सके और जोड़े के दूसरे पक्ष का कमाल यही है कि उसमें असर क़ुबूल करने की ताक़त और स्थिति बहुत ज़्यादा मौजूद हो, ताकि वह जोड़ा होने की प्रभाव-ग्रहण-संबंधित सेवाएं अच्छे ढंग से निभा सके। एक मामूली मशीन के पुर्ज़े को भी अगर कोई आदमी उसकी जगह से हटा दे और उससे वह काम लेना चाहे, जिसके लिए वह बनाया ही नहीं गया है, तो वह मूर्ख और अनाड़ी समझा

जाएगा और एक तो अपनी इस कोशिश में उसे कामियाबी ही न होगी और अगर वह बहुत ज़ोर लगायेगा तो बस इतना कर पायेगा कि मशीन को तोड़ दे। ऐसा ही हाल इस दुनिया की शानदार मशीन का भी है। जो मूर्ख और अनाड़ी हैं, वे इसके कर्त्ता जोड़े को कर्म जोड़े की जगह या कर्म जोड़े को कर्त्ता जोड़े की जगह रखने का ख़्याल कर सकते हैं और इसकी कोशिश कर के और इसमें कामियाबी की उम्मीद रख कर और ज़्यादा मूर्खता का सबूत भी दे सकते हैं, पर इस मशीन का बनाने वाला तो हरगिज़ ऐसा न करेगा। वह तो कर्त्ता पुर्ज़े को कर्त्ता ही की जगह रखेगा और इसी हैसियत से वह उसकी तर्बियत करेगा और जोड़े के दूसरे पुर्ज़े को असर क़ुबूल करने ही की जगह रखेगा और उसमें कर्त्ता का असर क़ुबूल करने की क्षमता ही के पलने-बढ़ने का इन्तिज़ाम करेगा।

३. कर्त्ता अपने आप में, अपने पर बहरहाल एक तरह की बरतरी रखता है। यह बरतरी इस अर्थ में नहीं है कि पहले पक्ष में महानता हो और उसके मुक़ाबले में दूसरे पक्ष में तुच्छताव नीचता, बल्कि बरतरी असल में ग़लबा, ताक़त और असर के पहलू से है। जो चीज़ किसी दूसरी चीज़ पर कर्म करती है, वह इसी वजह से तो करती है कि वह उस पर ग़ालिब है, उसके मुक़ाबले में ताक़तवर है और उस पर असर करने की ताक़त रखती है और जो चीज़ उसके कर्म को क़ुबूल करती है और उससे असर लेती है, उसके क़ुबूल न करने की वजह यही तो है कि वह मग़लूब है, उसके मुक़ाबले में कमज़ोर है और प्रभावित होने की क्षमता रखती है। जिस तरह किसी कार्य के होने के लिए कर्त्ता और कर्म का प्रभाव ग्रहण करने वाले, दोनों का वजूद समान रूप से ज़रूरी है, उसी तरह यह भी ज़रूरी है कि कर्ता में ग़लबा और असर डालने की ताक़त हो और दूसरे पक्ष में मग़लूब होने और असर क़ुबूल करने की क्षमता हो। क्योंकि अगर दोनों ताक़त में बराबर हों और किसी को किसी पर ग़लबा हासिल न हो, तो इनमें से कोई किसी का असर क़ुबूल न करेगा और सिरे से कर्म ही न होगा। अगर कपड़े में भी वही सख़्ती हो, जो सूई में है, तो सीने का काम पूरा नहीं हो सकता। अगर ज़मीन में वह नर्मी न हो, जिस की वजह से वह कुदाल और हल का ग़लबा क़ुबूल करती है, तो खेती नामुम्किन हो जाए। अर्थात् दुनिया में जितने कार्य होते हैं, उनमें कोई भी नहीं हो सकता, अगर एक कर्त्ता के मुक़ाबले में एक कर्त्ता का असर

क़ुबूल करने वाला न हो और दूसरे में पहले के असर से मग़्लूब होने की क्षमता न हो। अत: जोड़े में कर्त्ता पक्ष की तबियत का तक़ाज़ा यही है कि उसमें ग़लबा, तेज़ी और ताक़त हो, जिसको मर्दानगी और पुरूषत्व कहा जाता है, क्योंकि कर्त्ता पुर्ज़े की हैसियत से अपना काम करने के लिए उसका ऐसा ही होना ज़रूरी है। इसके उलट, दूसरे पक्ष के स्वभाव का यही तक़ाज़ा है कि उसमें नर्मी, नज़ाकत और लचक हो, जिसे औरतपना या स्त्रीत्व कहा जाता है, क्योंकि यही ख़ूबियां उसको कामियाब बना सकती हैं। जो लोग इस भेद को नहीं जानते, वे या तो कर्त्ता की निजी बरतरी को प्रतिष्ठा-पात्र समझ कर दूसरे पक्ष को अपने आप में ज़लील क़रार दे बैठते हैं या फिर सिरे से इस बरतरी का इन्कार करके इस पक्ष में भी वही ख़ूबियां पैदा करने की कोशिश करते हैं, जो कर्त्ता में होनी चाहिए। लेकिन जिस इंजीनियर ने इन दोनों पुर्ज़ों को बनाया है, वह इन को मशीन में इस तौर पर लगाता है कि इज़्ज़त में दोनों बराबर और तर्बियत में दोनों बराबर, पर दोनों पक्षों की तबियत जिस ग़लवा होने और न होने का तक़ाज़ा करती है, वही उनमें पैदा हो ताकि वे जोड़ा होने के मंशा को पूरा कर सकें, न यह कि दोनों ऐसे पत्थर बन जायें जो टकरा तो सकते हैं, पर आपस में कोई मेल और कोई सामंजस्य क़ुबूल नहीं कर सकते।

ये वह उसूल हैं, जो जोड़ा बनाने के बुनियादी मतलब से हासिल होते हैं। सिर्फ़ एक भौतिक अस्तित्व होने की हैसियत से औरत और मर्द का जोड़ा-जोड़ा होना ही इस का तक़ाज़ा कर रहा है कि उनके ताल्लुक़ात में इन उसूलों की रियायत की जाए। इसलिए, आगे चलकर आपको आपको मालूम होगा कि आसमानों और ज़मीन के पैदा करने वाले ने रहन-सहन के जो नियम बनाये हैं, उसमें इन तीनों की पूरी रियायत की गयी है।

इन्सान की हैवानी प्रकृति और उसके तक़ाज़े

अब एक क़दम आगे बढ़िए। औरत और मर्द का वजूद सिर्फ़ एक भौतिक वजूद ही नहीं है, बल्कि वह एक हैवानी वजूद भी है। इस हैसियत से उसका जोड़ा होना किस चीज़ का तक़ाज़ा करता है। क़ुरआन कहता है

'अल्लाह ने तुम्हारे लिए ख़ुद तुम्हीं में से जोड़े बनाये और जानवरों में से भी जोड़े बनाये, इस तरीक़े से वह तुम को धरती पर फैलाता है।'
(सूरा अश-शूरा: ४२:११)

'तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेतियां हैं।'

(सूरा अल-बक़र : २:२२३)

पहली आयत में इन्सान और हैवान दोनों के जोड़े बनाने का एक साथ ज़िक्र किया गया है और उसका मिला-जुला मक़्सद यह बयान किया गया है कि उनके जोड़े होने के ताल्लुक़ से नस्ल के चलने का सिलसिला शुरू हो।

दूसरी आयत में इन्सान को आम हैवानों से अलग कर के यह ज़ाहिर किया गया है कि हैवानों की क़िस्म में से इस ख़ास नस्ल के जोड़े में खेती और किसान का-सा ताल्लुक़ है। यह एक जैविक तथ्य (इळेश्रेसळलरश्र ऋरलीं) है, जीव-विज्ञान के अनुसार बेहतरीन मिसाल जो औरत और मर्द की दी जा सकती है, वह यही है।

इन दोनों आयतों से तीन और उसूल हासिल होते हैं

१. अल्लाह ने तमाम हैवानों (जीवों) की तरह इन्सान के जोड़े भी इस मक़्सद के लिए बनाए हैं कि उनके यौन-संबंध से इन्सानी नस्ल जारी रहे। यह इन्सान की हैवानी प्रकृति का तक़ाज़ा है, जिसकी रियायत ज़रूरी है। ख़ुदा ने इन्सानी नस्ल को इसलिए नहीं पैदा किया है कि उसके कुछ लोग ज़मीन पर पलें बढ़ें और बस ख़त्म हो जायें, बल्कि उसका इरादा एक तैशुदा मुद्दत तक इस नस्ल को बाक़ी रखने का है और उसने इन्सान की हैवानी प्रकृति में यौन-भावना इसीलिए रखी है कि उसके जोड़े आपस में मिलें और ख़ुदा की धरती को आबाद रखने के लिए अपनी नस्ल जारी रखें। अत:, जो क़ानून ख़ुदा की ओर से होगा, वह यौन-भावना को कुचलने वाला और नष्ट करने वाला नहीं हो सकता, बल्कि उसमें अनिवार्यत: ऐसी गुंजाइश रखी जाएगी कि इन्सान अपनी प्रकृति के इस तक़ाज़े को पूरा कर सके।

२. औरत और मर्द को खेती और किसान की मिसाल देकर बताया गया है कि इन्सानी जोड़ों का ताल्लुक़ दूसरे जीवों के जोड़ों से अलग है। इन्सानी हैसियत से हट कर भी और हैवानी एतबार से भी इन दोनों की जिस्मानी

बनावट इस तौर पर रखी गयी है कि उनके ताल्लुक़ में वह मज़बूती होनी चाहिए जो किसान और खेत में होती है। जिस तरह खेती में किसान का काम सिर्फ़ बीज फेंक देना ही नहीं है, बल्कि उस के साथ यह भी ज़रूरी होता है कि वह उसको पानी दे, खाद जुटाये, और उसकी हिफ़ाज़त करता रहे, इसी तरह औरत भी वह ज़मीन नहीं है जिस में एक जानवर चलते-फिरते कोई बीज फेंक जाए और वह एक अपने आप उगने वाला पेड़ उगाये, जिसका कोई मालिक न हो, बल्कि जब वह बोझल होती है, तो हक़ीक़त में इसकी मुहताज होती है कि उसका किसान उस की परवरिश और उसकी रखवाली का पूरा बोझ संभाले।

३. इन्सान के जोड़े में जो यौन-आकर्षण है, वह जैविक दृष्टि से (इळेश्रेसळलरश्रश्र्) उसी प्रकार का है जो दूसरे जीवों में पाया जाता है। एक जाति (डशु) का हर व्यक्ति दूसरी जाति (डशु) के हर व्यक्ति की ओर हैवानी झुकाव रखता है और नस्ल बढ़ाने की ज़बरदस्त प्रेरणा, जो उनकी प्रकृति में रखी गयी है, दोनों जातियों के उन तमाम लोगों को एक-दूसरे की ओर खींचती है, जिनमें नस्ल बढ़ाने की सलाहियत अमलन मौजूद हो। अत: दुनिया के पैदा करने वाले का बनाया हुआ क़ानून इन्सान की हैवानी प्रकृति के इस कमज़ोर पहलू से बे-परवाह नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें यौन-संबंधी निराज (डर्शीरिश्र अपरीलहू) की ओर ऐसा ज़बरदस्त झुकाव छिपा हुआ है जो सुरक्षा की ख़ास तदबीरों के बग़ैर क़ाबू में नहीं रखा जा सकता और एक बार अगर वह बे-क़ाबू हो जाए, तो इन्सान को पूरा हैवान बल्कि हैवानों में भी सबसे गिरा हुआ हैवान बन जाने से कोई चीज़ रोक नहीं सकती

> ‘हमने इंसान को बेहतरीन बनावट पर पैदा किया, फिर उसे उलटा फेर कर हमने सब नीचों से नीच कर दिया, सिवाए उन लोगों के जो ईमान लाए और नेक अमल करते रहे कि उनके लिए कभी न ख़त्म होने वाला बदला है।’
>
> (कुरआन, सूरा-अत-तीन ९५:४-६)

इन्सानी प्रकृति और उसके तक़ाज़े

जैसा कि हम पहले बयान कर चुके हैं, हैवानी तबियत, इंसानी बनावट की तह में ज़मीन और बुनियाद के तौर पर है और ज़मीन पर इंसानियत की इमारत

बनायी गयी है। इंसान के निजी वजूद और इंसानी व्यक्तित्व, दोनों को बाक़ी रखने के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत है, उनमें से हर एक की ख़्वाहिश और हर एक की प्राप्ति की क्षमता अल्लाह ने उसके हैवानी स्वभाव में रख दिया है और अल्लाह की प्रकृति का मंशा यह हरगिज़ नहीं है कि इन ख़्वाहिशों में से किसी ख़्वाहिश को पूरा न होने दिया जाए या उन क्षमताओं में से किसी क्षमता को ख़त्म कर दिया जाए, क्योंकि ये सब चीज़ें भी बहरहाल ज़रूरी हैं और इन के बिना इंसान और उस की नस्ल ज़िंदा नहीं रह सकती। अल-बत्ता प्रकृति यह चाहती है कि इंसान अपनी ख़्वाहिशों को पूरा करने और इन क्षमताओं से काम लेने में निरा हैवानी तरीक़ा न अपनाये, बल्कि उसका इंसानी स्वभाव जिन बातों का तक़ाज़ा करता है और उसमें हैवानियत से परे जिन बातों की तलब रखी गई है, उन के अनुकूल उसका तरीक़ा इंसानी होना चाहिए। इसी मक़्सद के लिए अल्लाह ने शरई हदें (इसलामी वैधानिक सीमाएं) मुक़र्रर फ़रमायी हैं, ताकि इंसानी कामों को एक उसूल का पाबन्द बनाया जाए और साथ ही, सचेत भी कर दिया गया है कि अगर इस या उस अति का तरीक़ा अपना कर इन हदों को पार करोगे, तो अपने-आप को ख़ुद तबाह कर लोगे।

> 'और जो कोई अल्लाह की हदों को फलांगेग़ा, वह अपने ऊपर ख़ुद ज़ुल्म करेगा।' (कुरआन,सूरा-अत-तलाक़६५:१)

अब देखिए यौन-अचार में क़ुरआन इंसानी प्रकृति की किन ख़ूबियों और किन तक़ाज़ों की ओर इशारा करता है

१. दोनों लिंगों के दर्मियान जिस क़िस्म का ताल्लुक़ इन्सानी प्रकृति में रख दिया गया है, उसकी व्यवस्था यह है

'अल्लाह ने तुम्हारे लिए ख़ुद तुम्हीं मे से जोड़े बनाये हैं, ताकि तुम उनके पास सुकून हासिल करो और उसने तुम्हारे दर्मियान मुहब्बत और रहमत रख दी है।'

(कुरआन,सूरा-अत-रूम ३०:२१)

'वे तुम्हारे लिए लिबास हैं और तुम उनके लिए लिबास हो।'

(कुरआन,सूरा-बक़र: २:१८७)

इससे पहले जिस आयत में इन्सान और हैवान दोनों के लिए जोड़े बनाने का ज़िक्र एक साथ किया गया, वहां जोड़ों की पौदाइश का मक़्सद सिर्फ़ नस्ल को बाक़ी रखना बताया गया है। अब हैवान से अलग करके इन्सान की यह ख़ूबी बतायी गयी है कि उसमें जोड़ा बनने का एक ऊंचा मक़्सद भी है और वह यह कि उनका ताल्लुक़ सिर्फ़ वासनामय न हो, बल्कि मुहब्बत और लगाव का ताल्लुक़ हो, दिल के लगाव और रूहों के मिलन का ताल्लुक़ हो, वे एक-दूसरे के राज़दार और रंज व राहत में शरीक हों, उनके बीच ऐसा साथ और हमेशा का लगाव हो, जैसे लिबास और जिस्म में होता है। दोनों लिंगों का यही ताल्लुक़ इन्सानी संस्कृति की इमारत की बुनियाद का पत्थर है, जैसा कि हम सविस्तार लिख चुके हैं।

इसके साथ 'ताकि तुम उनके पास सुकून हासिल करो' से इस ओर भी इशारा कर दिया गया कि औरत की ज़ात में मर्द के लिए सुकून व राहत की पूंजी है और औरत की प्राकृतिक सेवा यही है कि वह इस जद्दोजेहद और अमल के हंगामे की मशक़्क़तों भरी दुनिया में सुकून व राहत का एक कोना जुटा दे। यह इंसान की घरेलू ज़िंदगी है, जिसकी अहमियत को भौतिक फ़ायदों के लिए पाश्चात्य सभ्यतावालों ने नज़रंदाज़ कर दिया है, हालांकि संस्कृति और सभ्यता के विभागों जो अहमियत दूसरे विभागों की है, वही इस विभाग की भी है और सांस्कृतिक जीवन के लिए यह भी उतना ही ज़रूरी है, जितने दूसरे विभाग ज़रूरी हैं।

२. यह यौन-संबंध सिर्फ़ जोड़ों की आपसी मुहब्बत ही का तक़ाज़ा नहीं करता है, बल्कि इस बात का भी तक़ाज़ा करता है कि इन ताल्लुक़ात से जो औलाद पैदा हो, उसके साथ भी एक गहरा रूहानी ताल्लुक़ हो। अल्लाह की प्रकृति ने इसके लिए इंसान की, और ख़ास तौर से औरत की जिस्मानी

बनावट और हमल और दूध पिलाने की मांसिक स्थिति ही में ऐसा इन्तिज़ाम कर दिया है कि उसकी नस-नस और रेशे-रेशे में औलाद की मुहब्बत बैठ जाती है। क़ुरआन कहता है

'उसकी मां ने झटके पर झटके उठा कर पेट में रखा, फिर वह दो साल के बाद मां की छाती से जुदा हुआ।'

(सूरा-लुक़्मान ३१:१४)

'उसकी मां ने उसको तक्लीफ़ के साथ पेट में रखा, तक्लीफ़ के साथ जना और उसके हमल और दूध छुटाई में तीस महीने लगे।' (सूरा-अल-अहक़ाफ़ ४६:१५)

ऐसा ही हाल मर्द का है, यद्यपि औलाद की मुहब्बत में वह औरत से कमतर है

'लोगों के लिए सजा दी गयी है पसंदीदा चीज़ो की मुहब्बत, जैसे औरतें, औलाद।' (सूरा-आले इम्रान ३:१४)

यही स्वाभाविक मुहब्बत इंसान और इंसान के दर्मियान ख़ानदानी और ससुराली रिश्ते क़ायम करती है, फिर इन रिश्तों से ख़ानदान और ख़ानदानों से क़बीले और क़ौमें बनती हैं और इन के ताल्लुक़ात से संस्कृति वजूद में आती है।

'और वह ख़ुदा वही है, जिसने पानी से इंसान को पैदा किया, फिर उसके ख़ानदान और शादी-ब्याह का रिश्ता बनाया।'

(सूरा-अल फ़ुर्क़ान २५:५४)

'लोगो! हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया, फिर तुम्हारी क़ौमें और तुम्हारे क़बीले बना दिए, ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो।' (अल-हुजुरात ४९:१३)

अत: ख़ानदान, नस्ल और ससुराल के रिश्ते असल में इंसानी संस्कृति की ज़रूरी और प्राकृतिक बुनियादें हैं और ये क़ायम ही उस वक़्त होते है कि औलाद अपने मालूम और जाने-पहचाने मां-बाप से हो और सुरक्षित हों।

३. इंसानी प्रकृति का तक़ाज़ा यह भी है कि वह अपनी मेहनतों के नतीजे और अपनी गाढ़ी कमाई में से अगर कुछ छोड़े तो अपनी औलाद और अपने

रिश्तेदारों के लिए छोड़े, जिनके साथ वह तमाम उम्र ख़ूनी और नस्ली रिश्तों में बंधा रहा है।

> 'और अल्लाह के क़ानून में रिश्तेदार एक दूसरे की विरासत के ज़्यादा हक़दार हैं।' (सूरा-अल-अंफ़ाल ८:७५)

> 'जिनको तुम मुंह बोला बेटा बना लेते हो, उनको ख़ुदा ने तुम्हारा बेटा नहीं बनाया है।' (सूरा-अल-अहज़ाब ३३:४)

अत: मीरास के बंटवारे के लिए नस्ल और ख़ानदान की सुरक्षा की ज़रूरत है।

४. इंसान की प्रकृति में हया व लज्जा का जज़्बा एक प्राकृतिक जज़्बा है। उस के जिस्म के कुछ हिस्से ऐसे हैं, जिन्हें छिपाने की ख़्वाहिश अल्लाह ने उस के स्वभाव में पैदा की है। यही स्वाभाविक ख़्वाहिश है, जिस ने शुरू ही से इंसान को किसी न किसी तरह का पहनावा पहनने पर मजबूर किया है। इस बारे में क़ुरआन आधुनिक विचारधारा का खंडन करता है। वह कहता है कि इन्सानी जिस्म के जिन हिस्सों में मर्द और औरत के लिए यौनाकर्षण है, उनको ज़ाहिर करने में शर्म करना और उनको छिपाने की कोशिश करना इन्सानी प्रकृति का तक़ाज़ा है, अलबत्ता शैतान यह चाहता है कि उनको खोल दे।

> 'फिर शैतान ने आदम और उनकी बीवी को बहकाया, ताकि उनके जिस्म में से जो कुछ उनसे छिपाया गया था, उसको उन पर ज़ाहिर कर दे।' (सूरा-अल-आराफ़ ७:२०)

> 'अत: जब उन्होंने उस पेड़ का मज़ा चखा, तो उन पर उनके जिस्म के छिपे हिस्से खुल गये और वे उन को अन्नत के पत्तों से ढांकने लगे।' (सूरा-अल-आराफ़ ७:२२)

फिर क़ुरआन कहता है कि अल्लाह ने लिबास इस लिए उतारा है कि वह तुम्हारे लिए सतर छिपाने का ज़रिया भी है, पर सिर्फ़ सतर छिपा लेना काफ़ी नहीं है, उसके साथ ज़रूरी है कि तुम्हारे दिलों में तक़्वा (अल्लाह का डर) भी हो।

> 'हमने तुम पर लिबास उतारा है कि तुम्हारे जिस्म के क़ाबिले-शर्म हिस्से को ढांकने का, और तुम्हारे लिए जिस्म की हिफ़ाज़त और

सजावट का ज़रिया भी हो और बेहतरीन लिबास तक़्वा का लिबास है। यह अल्लाह की निशानियों में से एक निशानी है, शायद कि लोग इससे सबक़ लें।'

(सूरा-अल-आराफ़ ७:२६)

यह इस्लामी सामाजिक व्यवस्था के बुनियादी नज़रिए हैं। इन नज़रियों को ज़ेहन में बिठाने के बाद अब इस व्यवस्था की विस्तृत रूप-रेखा देखिए जो इस नज़रिए की बुनियाद पर बनायी गयी है।

इसको पढ़ते वक़्त आपको गहरी नज़र से इस बात की खोज करनी चाहिए कि इस्लाम जिन नज़रियों को अपने क़ानून की बुनियाद क़रार देता है, उनके विस्तार में जा कर अमली जामा पहनाते हुए कहां तक यकसानी, हमवारी और तार्किक संबंध क़ायम रखता है। इंसान के बनाये हुए जितने क़ानून हमने देखे हैं, उन सब की यह समान और स्पष्ट कमज़ोरी है कि उनके बुनियादी नज़रिए और अमली तफ़्सील के बीच पूरा तार्किक संबंध नहीं बन पाता। उसूल और उनके विस्तार में खुला टकराव पाया जाता है। उसूल जो बयान किए जाते हैं, उनका स्वभाव कुछ और होता है और अमल-दरामद के लिए जो विस्तार सामने आता है उसका स्वभाव कोई और शक्ल अख़्तियार कर लेता है। चिन्तन-मनन के आसमानों पर चढ़ कर एक नज़रिया पेश कर दिया जाता है, पर जब ऊपरी दुनिया से उतर कर हक़ीक़तों और अमल की दुनिया में आदमी अपने नज़रिए को व्यवहार में लाने की कोशिश करता है, तो यहाँ अमली समस्याओं में वह कुछ ऐसा खोया जाता है कि उसे ख़ुद अपना नज़रिया याद नहीं होता। मानव-रचना के क़ानून में से कोई एक क़ानून भी इस कमज़ोरी से ख़ाली नहीं पाया गया। अब आप देखें और ख़ुर्दवीन (सुक्षम-दर्शक यंत्र) लगा कर बड़ी बारीकी की निगाह से देखें कि यह क़ानून जो अरब के रेगिस्तान के एक अनपढ़ चरवाहे ने दुनिया के सामने पेश किया है, जिसे बनाने में उसने किसी पार्लियामेन्ट और किसी सेलेक्ट कमेटी से मश्विरा तक नहीं लिया, उसमें भी कहीं कोई बे-जोड़पना और किसी तार्किक बेजोड़पन और टकराव की झलक पयी जाती है?

इस्लमी रहन-सहन की व्यवस्था-२

उसूल और स्तून

सामाजिक व्यवस्था के सिलसिले में सबसे अहम सवाल, जैसा कि हम पहले कहीं बयान कर चुके हैं, यौन-भावना को अमल के बिखराव से रोक कर एक ज़ाबते (विधान) में लाने का है, क्योंकि इसके बिना संस्कृति संरचना ही नहीं की जा सकती। और अगर ऐसा हो भी जाए तो उसके टूटने, बिखरने और इंसान को ज़बरदस्त अख़्लाक़ी और ज़ेहनी गिरावट से बचाने की कोई शक्ल मुम्किन नहीं। इस ग़रज़ के लिए इस्लाम ने औरत और मर्द के ताल्लुक़ात को बहुत-सी हदों का पाबन्द करके एक केन्द्र पर समेट दिया है।

महरम[३८] लोग

सब से पहले इस्लामी क़ानून उन तमाम मर्दों और औरतों को एक दूसरे के लिए हराम करता है, जो आपस में मिल कर रहने या बहुत ही क़रीबी ताल्लुक़ात रखने पर मजबूर हैं, जैसे, मां और बेटा, बाप और बेटी, भाई और बहन, फूफी और भतीजा, चचा और भतीजी, मामूं और भांजी, ख़ाला और भांजा, सौतेला बाप और बेटी, सौतेली मां और बेटा, सास और दामाद, ससुर और बहू, साली और बहनोई, (बहन की ज़िंदगी में) और दूध शरीक रिश्तेदार। (क़ुरआन, सूरः निसा, रूकूअ १४) इन ताल्लुक़ात की हुर्मत क़ायम कर उनको एक दूसरे के प्रति यौन-भावना से इतना पाक कर दिया गया है कि इन रिश्तों के मर्द और औरत यह सोच भी नहीं सकते कि वे एक दूसरे की ओर कोई यौनाकर्षण रखते हैं। (अलावा ऐसे ख़बीस जानवर-मिजाज़ लोगों के, जिन पशुता किसी अख़्लाक़ी ज़ाबते में रहना क़ूबूल नहीं करती)

ज़िना (व्यभिचार) हराम है

इस हदबन्दी की दूसरी क़ैद यह लगायी गयी कि ऐसी तमाम औरतें भी हराम हैं जो अमलन किसी दूसरे के निगाह में हों

---

[38] _ah_ - _X© Am¡a Am¡aV Ho$ Eogo [aíVo {OZHo$ ~rM `m¡Z-g§~Y ({ddmh) ham_ (Ad¡Y d d{O©V) h¡ &

'और वे औरतें भी तुम पर हराम हैं जो किसी दूसरे के निकाह में हों।'
(सूरा-अन-निसा ४:२४)

इनके बाद जो औरतें बाक़ी बचती हैं, उनके साथ हर क़िस्म के बे-ज़ाबता यौन-संबंध को हराम क़रार दिया गया है।

'ज़िना के पास भी न फटको, क्योंकि वह बेहयाई है और बहुत बुरा रास्ता है।' (सूरा-बनी इस्राईल १७:३२)

निकाह

इस तरह क़ैद लगा कर यौन-विकार के तमाम रास्ते बन्द कर दिये गये, पर इंसान के हैवानी स्वभाव के तक़ाज़े और क़ुदरत के मुक़र्रर किए तरीक़े को जारी रखने के लिए एक दरवाज़ा खोलना भी ज़रूर था, सो वह दरवाज़ा निकाह की शक्ल में खोला गया है और कह दिया गया कि इस ज़रूरत को तुम पूरा करो, पर बिखरे हुए और बे-ज़ाबता ताल्लुक़ात में नहीं, चोरी-छिपे भी नहीं, खुले बन्दों बे-हयाई के तरीक़े पर भी नहीं, बल्कि बा-क़ायदा एलान व इज़्हार के साथ, ताकि तुम्हारी सोसाइटी में यह बात मालूम भी हो जाए और मान भी लिया जाए कि फ़्लां मर्द औरत एक-दूसरे के हो चुके हैं

'इन औरतों के सिवा जो औरतें हैं, तुम्हारे लिए हलाल किया गया कि तुम अपने मालों के बदले में (मह्र दे कर) उनसे निकाह का बा-ज़ाब्ता ताल्लुक़ क़ायम करो, न कि आज़ादाना वासना का पूरा करना।' (सूरा अन-निसा ४:२५)

'अत: उन औरतों के संबंधियों की रज़ामंदी से उनके साथ निकाह करो, इस तरह कि वे क़ैदे निकाह में हों, न यह कि खुले बन्दों या चेरी-छिपे (मनचाहे मर्दों से) आशनाई करने वालियां।'
(सूरा-अन-निसा ४:३४)

यहां इस्लाम के दर्मियानी रास्ते की शान देखिए कि जो यौन-संबंध निकाह के दायरे के बाहर हराम और नफ़रत के क़ाबिल था, वही निकाह के अन्दर न सिर्फ़ जायज़ बल्कि बेहतर है, सवाल का काम है, उसे अपनाने का हुक्म दिया जाता है, उससे बचने को नापसन्द किया जाता है, और औरत और मर्द का ऐसा ताल्लुक़ इबादत बन जाता है, यहां तक कि अगर औरत शौहर की जायज़

ख़्वाहिश से बचने के लिए नफ़्ल रोज़ा र खले या नमाज़ व तिलावत में लग जाए तो वह उलटी गुनाहगार होगी। इस सिलसिले में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के कुछ हिक्मत भरे कथन देखने के हैं

'तुम को निकाह करना चाहिए, क्योंकि वह आंखों को बद-नज़री से रोकने और गुप्तांगों की हिफ़ाज़त करने का बेहतरीन उपाय है और जो आदमी तुम में से निकाह की क़ुदरत न रखता हो, वह रोज़ा रखे, क्योंकि रोज़ा शहवत (वासना) को दबाने वाला है ।' (हदीस-तिर्मिज़ी,बुख़ारी)

'ख़ुदा की क़सम! मैं ख़ुदा से डरने और उसकी नाराज़गी से बचने में तुम सब से बढ़ कर हूं, मगर मुझे देखो, मैं रोज़ा भी रखता हूं और इफ़्तार भी करता हूं, नमाज़ भी पढ़ता हूं और रातों को सोता भी हूं और औरतों से निकाह भी करता हूं। यह मेरा तरीक़ा है और जो मेरे तरीक़े से हटे, उसका मुझ से कोई वास्ता नहीं।'
(बुख़ारी)

'औरत अपने शौहर की मौजूदगी में उसकी इजाज़त के बिना नफ़्ल रोज़ा न रखे।' (बुख़ारी)

'जो औरत अपने शौहर से बच कर उससे अलग रात गुज़ारे उस पर फ़रिश्ते लानत भेजते हैं, जब तक वह पलट न आए।'

(बुख़ारी)

'जब तुम में से कोई आदमी किसी औरत को देख ले और उसके हुस्न का असर क़ुबूल कर ले, तो अपनी बीवी के पास चला जाए, क्योंकि उस के पास भी वही है जो उस के पास था।'
(तिर्मिज़ी)

इन तमाम हुक्मों और हिदायतों से शरीअत का मंशा यह है कि यौन-विकार के तमाम दरवाज़े बन्द कर दिए जायें, औरत मर्द के ताल्लुक़ात को निकाह के दायरे में घेर दिया जाए। इस दायरे के बाहर जिस हद तक मुम्किन हो, किसी क़िस्म का यौनाचार और जो यौन-प्रेरणा ख़ुद तबीयत के तक़ाज़े या किसी आकस्मिक घटना से पैदा हों उसकी तस्कीन के लिए एक केन्द्र बना दिया जाए।

औरत के लिए उसका शौहर और मर्द के लिए उसकी बीवी। ताकि इंसान तमाम अप्राकृतिक और ख़ुद के गढ़े हुए उत्प्रेरकों तथा विघटनों से बच कर अपनी अर्जित शक्ति ताक़त (ऊेर्शीीरिंशव एपशीसू) के साथ संस्कृति-व्यवस्था की सेवा करे और वह यौन-प्रेम और यौनाकर्षण का तत्व, जो अल्लाह ने इस कारख़ाने को चलाने के लिए हर मर्द व औरत में पैदा किया है, पूरे का पूरा एक ख़ानदान के पैदा करने और उसे मज़बूत करने में लगे। दाम्पत्य हर हैसियत से पसन्दीदा है क्योंकि वह इंसानी प्रकृति और हैवानी प्रकृति, दोनों के मंशा और ख़ुदा के क़ानून के मक़सद को पूरा करता है और दाम्पत्य-जीवन की अवहेलना हर हैसियत से नापसन्दीदा है, क्योंकि वह दो बुराइयों में से एक बुराई की धारक अवश्य होगी... या तो इन्सान प्रकृति के क़ानून के मंशा को पूरा ही न करेगा और अपनी ताक़तों को प्रकृति से लड़ने में बर्बाद करेगा, या फिर वह तबियत के तक़ाज़ों से मजबूर हो कर ग़लत और नाजायज़ तरीक़ों से अपनी ख़्वाहिशों को पूरा करेगा।

ख़ानदान का गठन

यौन-भावना को ख़ानदान के बनाने और उसे मज़बूत बनाने का ज़रिया बनाने के बाद इस्लाम ख़ानदान का गठन करता है और यहां भी वह पूरे सन्तुलन के साथ प्रकृति के क़ानून के उन तमाम पहलुओं की रियायत नज़र में रखता है, जिनका ज़िक्र इससे पहले किया जा चुका है। औरत और मर्द के हक़ों को तै करने में न्याय व इन्साफ़ को उसने जितना ध्यान में रखा है, उसे सविस्तार मैंने एक अलग किताब में बयान किया है, जो 'दम्पत्ति अधिकार' के नाम से छपी है। उसे देखने से आपको मालूम हो जाएगा कि दोनों लिंगों में जिस हद तक बराबरी क़ायम की जा सकती थी, वह इस्लाम ने क़ायम कर दी है, लेकिन इस्लाम उस बराबरी का क़ायल नहीं है जो प्रकृति के क़ानून के ख़िलाफ़ हो इंसान होने की हैसियत से जैसे हक़ मर्द के हैं, वैसे ही औरत के हैं लेकिन कर्त्ता पक्ष होने की हैसियत से जो निजी बड़ाई (इज़्ज़त के अर्थ में नहीं, बल्कि ग़लबा व वर्चस्व के अर्थ में) मर्द को हासिल है, वह उसने पूरे इंसाफ़ के साथ मर्द को दे रखी है

'और मर्दों के लिए उन पर एक दर्जा ज़्यादा।'

(सूरा-बक़र:,२:२२८)

इस तरह औरत और मर्द में वर्चस्व रखने वाले पक्ष और जिस पक्ष पर वर्चस्वता हो, उन दोनों के बीच स्वाभाविक संबंध स्वीकारते हुए इस्लाम ने ख़ानदान का निम्नलिखित क़ायदों के मुताबिक़ गठन किया है

मर्द की प्रधानता

ख़ानदान में मर्द की हैसियत प्रधान (क़व्वाम) की है, यानी वह ख़ानदान का हाकिम है, हिफ़ाज़त करने वाला है, अख़्लाक़ और मामलों का निगरां है, उसकी बीवी-बच्चों पर, उसका आज्ञापालन अनिवार्य है (बशर्ते कि वह अल्लाह और रसूल की नाफ़रमानी का हुक्म न दे) और उस पर ख़ानदान के लिए रोज़ी कमाने और ज़िंदगी की ज़रूरतों के जुटाने की ज़िम्मेदारी है

'मर्द औरतों पर क़व्वाम है, उस प्रधानता की बुनियाद पर, जो अल्लाह ने उन में से एक को दूसरे पर दे रखी है और इस वजह से कि वह उन पर (मह्र व भरण-पोषण की शक्ल में) अपना माल ख़र्च करता है।' (सूरा-अन-निसा, ४:३४)

'मर्द अपनी बीवी बच्चों पर हुक्मरां है और अपने अधीनों के प्रति अपने अमल पर वह ख़ुदा के सामने जवाबदेह है।'

हदीस 'बुख़ारी'

'भली बीवीयां शौहरों की आज्ञाकारी और अल्लाह की तौफ़ीक़ से शौहरों की ग़ैर-मौजूदगी में उनकी इज़्ज़त की हिफ़ाज़त करने वाली हैं।' (सूरा-अन-निसा: ४:३४)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने फ़रमाया कि 'जब औरत अपने शौहर की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ घर से निकलती है, तो आसमान का हर फ़रिश्ता उस पर लानत भेजता है और जिन्नों और इंसानों के सिवा, हर वह चीज़ जिस पर से वह गुज़रती है, फिटकार भेजती है उस वक़्त तक कि वह वापस न हो।'

(हदीस-कश्फ़ुल-गुम्मा)

'और जिन बीवीयों से तुम को सरकशी और नाफ़रमानी का डर हो, उनको नसीहत करो, (न मानें तो) ख़्वाबगाह में उनसे ताल्लुक़ तोड़

लो (फिर भी न मानें तो) मारो, फिर अगर वे तुम्हारी बात मान लें, तो उन पर ज़्यादती करने के लिए कोई बहाना न ढूंढो ।' (सूरा-अन-निसा: ४:३४)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने फ़रमाया कि 'जो आदमी ख़ुदा की इताअत न करे, उसकी इताअत न की जाए। अल्लाह की नाफ़रमानी में किसी आदमी की फ़रमांबरदारी नहीं की जा सकती। फ़रमांबरदारी सिर्फ़ अच्छी बातों में है।'

(हदीस-अहमद, बुख़ारी)

'और हम ने इंसान को हिदायत की है कि अपने मां-बाप से अदब से पेश आए, लेकिन अगर वे तुझ को हुक्म दें कि तू मेरे साथ कोई शरीक ठहराये, जिसके लिए तेरे पास कोई दलील नहीं है, तो इस मामले में उस की इताअत न कर'

(सूरा-अल-अंकबूत: २९:८)

ख़ानदान का गठन इस तरीक़े से किया गया है कि उस का एक सिरधरा और फ़ैसले करने वाला हो। जो आदमी इस व्यवस्था में रूकावट डालने की कोशिश करे, उसके हक़ में ह. मुहम्मद (सल्ल.) की यह चेतावनी है कि

'जो कोई किसी औरत के ताल्लुक़ात को उसके शौहर से ख़राब करने की कोशिश करे, उसका कुछ ताल्लुक़ हम से नहीं ।' (हदीस कश्फ़ुल-ग़ुम्मा)

औरत का कार्य-क्षेत्र

इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था में औरत को घर की मालकिन बनाया गया है। माल कमाने की ज़िम्मेदारी उस के शौहर पर है और उस माल से घर का इन्तिज़ाम करना उसका काम है

‘औरत अपने शौहर के घर की हुक्मरां है और वही अपनी हुकूमत के दायरे में अपने अमल के लिए जवाबदेह है।’

(हदीस बुख़ारी)

उसको ऐसी तमाम ज़िम्मेदारियों से बचा लिया गया है, जो घर से बाहर के मामलों से संबंधित हैं, जैसे

उस पर जुमा की नमाज़ वाजिब नहीं। (हदीस अबूदाऊद)

उस पर जिहाद भी फ़र्ज़ नहीं, यद्यपि ज़रूरत पड़ने पर वह मुजाहिदों की ख़िदमत के लिए जा सकती है, जैसा कि आगे चल कर बयान होगा।

उसके लिए जनाज़ों में शिर्कत भी ज़रूरी नहीं, बल्कि उससे रोका गया है। (हदीस बुख़ारी)

उस पर जमाअत के साथ नमाज़ और मस्जिदों की हाज़िरी भी ज़रूरी नहीं की गयी, हाँ, कुछ पाबन्दियों के साथ मस्जिदों में आने की इजाज़त ज़रूर दी गयी है, लेकिन इसको पसन्द नहीं किया गया।

उस को महरम (ऐसा रिश्तेदार जिससे निकाह हराम हो) के बिना सफ़र करने की भी इजाज़त नहीं दी गयी। (हदीस तिर्मिज़ी, अबूदाऊद)

अर्थात् हर तरीक़े से औरत के घर से निकलने को ना-पसन्द किया गया है और इसके लिए इस्लामी क़ानून में पसंदीदा शक्ल यही है कि वह घर में रहे, जैसा कि आयत ‘अपने घरों में टिक कर रहो’[३९] (सूरा अल-अहज़ाब: ३३) का

---

[39] Hw$N bmoJ H$hVo h¢ {H$ `h hwŠ_ n¡µJå~a _whå_X (gëb.) H$s nmH$ ~r{d`m| Ho$ {bE ˜mg h¡, Š`m|{H$ Am`V H$s ewê$AmV "Eo Z~r H$s ~r{d`mo !' go H$s J`r h¡, bo{H$Z Bg nyar Am`V ("Z~r H$s ~r{d`mo ! Vw_ Am_ Am¡aVm| H$s Vah Zht hmo & AJa Vw_ Aëbmh go SaZo dmbr hmo, Vmo X~r µOw~mZ go ~mV Z {H$`m H$amo {H$ {Xb H$s ˜am~r _| \§$gm H$moB© ^r AmX_r bmbM _| n‹S OmE, ~{ëH$ gmµ\$-grYr ~mV H$amo & AnZo Kam| _| {QH$ H$a ahmo Am¡a Om{h{b`V Ho$ {nNbo Xm¡a H$s gr gO-

YO Z {XImVr {\$amo & Z_mµO µH$m`_ H$amo, µOH$mV Xmo Am¡a Aëbmh Am¡a CgHo$ agyb H$s BVmAV H$amo & Aëbmh Vmo `h MmhVm h¡ {H$ Z~r H$s Ka dm{b`m| go JÝXJr H$mo Xya H$ao, Am¡a Vwåh| nyar Vah nmH$ H$a Xo & `mX aImo Aëbmh H$s Am`Vm| Am¡a {hŠ_V H$s CZ ~mVm| H$mo, Omo Vwåhmao Kam| _| gwZm`r OmVr h¢ & ~oeH$ Aëbmh gyú_Xeu Am¡a ~mI~a h¡ &' Ab-AhµOm~, 32-34) _| Omo {hXm`V| Xr J`r h¢, BZ_| go H$m¡Z-gr {hXm`V Eogr h¡ Omo Z~r gëb. H$s nmH$ ~r{d`m| Ho$ gmW ˜mg hmo & µ\$a_m`m J`m h¡ {H$ AJa Vw_ nahoµOJma hmo, Vmo X~r µOw~mZ go bJmdQ Ho$ AÝXmµO _| {H$gr go ~mV Z H$amo, Vm{H$ {Og AmX_r Ho$ {Xb _| ImoQ hmo, dh Vwåhmao ~mao _| Hw$N µJbV Cå_rX| AnZo _Z _| Z nmb bo & Omo ~mV H$amo, grYo-gmXo AÝXmµO _| H$amo & AnZo Kam| _| O_r ~¡Rr ahmo & Om{h{b`V Ho$ ~Zmd-qgJma Z H$aVr {\$amo, Z_mµO n‹Tmo, µOH$mV Xmo, Aëbmh Am¡a agyb H$s BVmAV H$amo, Aëbmh MmhVm h¡ {H$ JÝXJr H$mo Vw_ go Xya H$a Xo & BZ {hXm`Vm| na µJm¡a H$s{Oe & BZ_| H$m¡Z-gr MrµO h¡ Omo Am_ _wgb_mZ Am¡aVm| Ho {bE Zht h¡ ? Š`m _wgb_mZ Am¡aVm| na hoµOJma Z ~Z| ? Š`m do µJ¡a-_Xm] go bJmdQ H$s ~mV| {H$`m H$a| ? Š`m do Om{h{b`V Ho$ ~Zmd-qgJma H$aVr {\$a| ? Š`m do Z_mµO d µOH$mV Am¡a Aëbmh Am¡a agyb H$s BVmAV go H$Vam`| ? Š`m Aëbmh CZ H$mo JÝXJr _| aIZm MmhVm h¡? AJa `o g~ {hXm`V| g~ _wgb_mZm| Ho$ {bE Am_ h¢, Vmo {gµ\©$ "AnZo Kam| _| {QH$ H$a ahmo' hr H$mo Z~r (gëb.) H$s ~rdr`m| H$o gmW ˜mg H$aZo H$s Š`m dOh h¡ ?

साफ मंशा है, लेकिन इस बारे में ज़्यादा सख़्ती इस लिए नहीं की गयी कि कुछ हालात में औरतों का घर से निकलना ज़रूरी हो जाता है।

हो सकता है कि एक औरत का कोई सिरघरा न हो, यह भी मुम्किन है कि ख़ानदान रक्षक (सिरघरा) की ग़रीबी, आजीविका की कमी, बीमारी, मजबूरी या ऐसी ही वज्हों से औरत बाहर काम करने पर मजबूर हो जाए, ऐसी तमाम शक्लों के लिए क़ानून में काफ़ी गुंजाइश रखी गयी है। चुनांचे हदीस में है

'अल्लाह ने तुम को इजाज़त दी है कि तुम अपनी ज़रूरतों के लिए घर से निकल सकती हो।'(हदीस 'बुख़ारी','मुस्लिम')

पर इस क़िस्म की इजाज़त, जो सिर्फ़ परिस्थितियों और ज़रूरतों की रियायत से दी गयी है, इस्लामी रहन-सहन की व्यवस्था के इस नियम में संशोधन नहीं करती कि औरत के अमल का दायरा उसका घर है। इस की तो सिर्फ़ एक गुंजाइश रखी गई है और इसे इसी हेसियत में रहना चाहिए।

ज़रूरी पाबन्दियां

बालिग़ औरतों को अपने निजी मामलों में काफ़ी आज़ादी दी, गयी है पर उसको इस हद तक आज़दी नहीं दी गयी, जिस हद तक बालिग़ मर्द को दी गयी है। जैसे

मर्द अपने अख़्तियार से जहां चाहे जा सकता है, लेकिन औरत, चाहे कुंवारी हो या शादी-शुदा या विधवा, हर हालत में ज़रूरत है कि सफ़र में उसके साथ एक महरम हो

'किसी औरत के लिए जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखती हो, यह हलाल नहीं है कि वह तीन दिन या इससे ज़्यादा का सफ़र करे, बिना

H$s n¡adr na bJmE JE h¢ Am¡a g~ hwŠ_ Omo Amn Ho$ {bE CVao h¢, h_mao {bE ^r n¡adr na bJmE JE h¢ Am¡a g~ hwŠ_ Omo Amn Ho$ {bE ^r h¡, CZ _m_bm| H$mo Nmo‹S H$a, {OZHo$ ~mao _| Imob H$a H$h {X`m J`m h¡ {H$ do Amn Ho$ {bE ˜mg h¢ &'
^mJ 3, n¥.55

इसके कि उसके साथ उसका बाप या भाई या शौहर या बेटा या कोई महरम मर्द हो।'

'और अबूहुरैरह रज़ि. की रिवायत नबी (सल्ल.) से यह है कि हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया, औरत एक दिन रात का सफ़र न करे, जब तक कि उसके साथ कोई महरम मर्द न हो।'

(हदीस 'तिर्मिज़ी')

'और हज़रत अबू हुरैरह रज़ि. से यह भी रिवायत है कि हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया, किसी मुसलमान औरत के लिए हलाल नहीं है कि एक रात का सफ़र करे, उस वक़्त तक जब तक उस के साथ एक महरम मर्द न हो।' (हदीस 'अबूदाऊद')

इन रिवायतों में सफ़र की मात्रा के तै करने में जो इख़्तिलाफ़ है, वह इस बात की दलील है कि असल में एक दिन या दो दिन का सवाल अहमियत नहीं रखता, बल्कि अहमियत सिर्फ़ इस बात की है कि औरत को अकेले इधर-उधर फिरने की ऐसी आज़ादी न दी जाए, जो नैतिक बुराई फैलने की वजह बन जाए। इसलिए हुज़ूर (सल्ल.) ने सफ़र की मात्रा तै करने पर ज़्यादा ज़ोर न दिया और अलग-अलग हालतों में वक़्त और मौक़े की रियायत से अलग-अलग मात्राएं इर्शाद फ़रमायीं।

मर्द को अपने निकाह के मामले में पूरी आज़ादी हासिल है। मुसलमान या किताबिया (ईसाई, यहूदी औरत) औरतों में से जिस के साथ वह चाहे निकाह कर सकता है और लौंडी भी रख सकता है, लेकिन औरत इस मामले में बिल्कुल आज़ाद नहीं है। वह किसी ग़ैर-मुस्लिम से निकाह नहीं कर सकती।

'न ये उन के लिए हलाल है और न वे इनके लिए हलाल।'

(सूरा अल-मुम्तहिना: ६०:१०)

ग़ुलाम और काफ़िर को छोड़ कर आज़ाद मुसलमान मर्दों में से औरत अपने लिए शौहर का चुनाव कर सकती है, लेकिन इस मामले में उसके लिए अपने बाप-दादा भाई और दूसरे वलियों की राय का लिहाज़ रखना ज़रूरी है। अगरचे वलियों को यह हक़ नहीं कि औरत की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ किसी से उनका निकाह कर दें, क्योंकि इर्शादे नबी (सल्ल.) है कि

'लड़की अपने मामले में फ़ैसला करने का हक़ अपने वली से ज़्यादा रखती है।' और

'कुंवारी लड़की का निकाह न किया जाये, जब तक कि उससे इजाज़त न ले ली जाए।'

पर औरत के लिए यह मुनासिब नहीं कि अपने ख़ानदान के ज़िम्मेदार मर्दों की राय के ख़िलाफ़ जिसके साथ चाहे निकाह कर ले, इसीलिए क़ुरआन मजीद में जहां मर्द के निकाह का ज़िक्र है, वहां न-क-हयन-किहु का सेग़ा इस्तेमाल हुआ है, जिसका मतलब है ख़ुद निकाह कर लेना, जैसे 'वला तन-किहुल मुश्रिकात' (मुश्रिक औरतों से निकाह न करो), 'फन-किहू हुन-न बिइज़्नि अहिलहिन-न' (उन से उन के घर वालों की इजाज़त ले कर निकाह कर लो।) पर जहां औरत के निकाह का ज़िक्र आया है, वहां आम तौर से 'इन्काह' (अन-क-ह, युन-किहु) का सेग़ा इस्तेमाल किया गया है, जिसका मतलब निकाह कर देना है, जैसे, 'व अन-किहुल अयामा मिन्कुम'[४०] (सूरा-'अन-नूर': २४:३२) 'वला तुन-किहुल मश्रिकी-न हत्ता युअ्-मिनु'[४१] (सूरा अल-बक़र: २:२२१)

इसका मतलब यह है कि जिस तरह शादीशुदा औरत अपने शौहर के आधीन है, उसी तरह ग़ैर-शादीशुदा औरत अपने ख़ानदान के ज़िम्मेदार मर्दों के आधीन है, पर यह आधीन होना इस अर्थ में नहीं है कि उसके लिए इरादा और अमल की कोई आज़ादी नहीं, या उसे अपने मामले में कोई अख़्तियार नहीं, बल्कि इस अर्थ में है कि गृहस्थ व्यवस्था को बिगाड़ व बिखराव से बचाये रखने और ख़ानदान के अख़्लाक़ और मामलों को भीतरी और बाहरी फ़ित्नों से बचाने की ज़िम्मेदारी मर्द पर है और इस व्यवस्था के लिए औरत पर यह ज़िम्मेदारी डाली गयी है कि जो आदमी इस व्यवस्था का ज़िम्मेदार हो, उसकी इताअत करे, चाहे वह उसका शौहर हो या बाप या भाई।

---

40 "AnZr ~o-em¡ha Am¡aVm| Ho$ {ZH$mh H$amo &'

41 AnZr Am¡aVm| Ho$ {ZH$mh _w{íaH$ Am¡aVm| go Z H$amo, O~ VH$ {H$ do B©_mZ Z bm`| &

औरत के हक़

इस तरह इस्लाम ने 'इसलिए कि अल्लाह ने कुछ को कुछ पर प्रधानता दी' को एक प्राकृतिक हक़ीक़त मान लेने के साथ ही 'मर्दों के लिए औरतों पर एक दर्जा ज़्यादा है' को भी ठीक-ठीक तै कर दिया है। औरत और मर्द में जीव-विज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से जो फ़र्क़ है, उसको वह ठीक वैसा ही मान लेता है। जितना फ़र्क़ है, उसे ज्यों का त्यों बरक़रार रखता है और जैसा फर्क़ है, उसके अनुसार उनके पद और ज़िम्मेदारियां मुक़र्रर करता है।

इसके बाद एक अहम सवाल औरत के हक़ों का है। इन हक़ों के तै करने में इस्लाम ने तीन बातों का ख़ास तौर पर ध्यान रखा है।

एक यह कि मर्द को जो हाकिमाना अधिकार सिर्फ़ ख़ानदान की व्यवस्था चलाने के लिए दिए गये हैं, उनसे नाजायज़ फ़ायदा उठा कर वह ज़ुल्म न कर सके और ऐसा न हो कि यह ताल्लुक़ अमलन दासी और स्वामी का ताल्लुक़ बन जाए।

दूसरे यह कि औरत को ऐसे तमाम मौक़े जुटाये जाएं जिनसे फ़ायदा उठा कर वह गृहस्थ व्यवस्था की हदों में अपनी स्वाभाविक क्षमताओं को ज़्यादा तरक़्क़ी दे सके और संस्कृति की तामीर में अपने हिस्से का काम बेहतर अंजाम दे सके।

तीसरे यह कि औरत के लिए तरक़्क़ी और कामियाबी के ऊंचे से ऊंचे दर्जों तक पहुंचना मुम्किन हो, पर उसकी तरक़्क़ी और कामियाबी जो कुछ भी हो, औरत होने की हैसियत से हो। मर्द बनना न तो उसका हक़ है, न मर्दाना ज़िंदगी के लिए उसको तैयार करना, उसके लिए और संस्कृति के लिए फ़ायदेमंद है और न मर्दाना ज़िंदगी में वह कामियाब हो सकती है।

ऊपर की तीनों बातों को पूरा-पूरा ध्यान में रख कर इस्लाम ने औरत को जैसे विस्तृत सांस्कृतिक और आर्थिक हक़ दिये हैं और इज़्ज़त और प्रतिष्ठा व गौरव के जो ऊंचे दर्जे दिये हैं और उन हक़ों और रूत्बों की हिफ़ाज़त के लिए अपनी अख़्लाक़ी और क़ानूनी हिदायतों में जैसी मज़बूत ज़मानतें जुटायी हैं, उनकी नज़ीर दुनिया की नयी व पुरानी सामाजिक व्यवस्थाओं में नहीं मिलती।

आर्थिक हक़

सब से अहम और ज़रूरी चीज़ जिसकी वजह से संस्कृति में इंसान की प्रतिष्ठा क़ायम होती है और जिसके ज़रिए से वह अपनी प्रतिष्ठा को बरक़रार रखता है, वह उसकी आर्थिक हैसियत की मज़बूती है। इस्लाम के सिवा तमाम क़ानूनों ने औरत को आर्थिक हैसियत से कमज़ोर किया है और यही आर्थिक बे-बसी रहन-सहन में औरत की ग़ुलामी की सब से बड़ी वजह बनी है। यूरोप ने इस हालत को बदलना चाहा, पर इस तरह, कि औरत को एक कमाने वाल व्यक्ति बना दिया है। यह एक दूसरी सबसे बड़ी ख़राबी की वजह बन गया। इस्लाम बीच का रास्ता अपनाता है। वह औरत को विरासत के ज़बरदस्त हक़ देता है, बाप से, शौहर से, औलाद से और दूसरे क़रीबी रिश्तेदारों से उस को विरासत[४२] मिलती है। साथ ही शौहर से उसको मह्र भी मिलता है और उन तमाम ज़रियों से जो कुछ माल उसको पहुंचता है, उसमें मिल्कियत, क़ब्ज़ा और उपभोग के पूरे हक़ उसे दिए गए हैं, जिसमें दख़ल देने का अधिकार न उसके बाप को हासिल है, न शौहर को, न किसी और को। साथ ही अगर वह किसी तिजारत में रूपया लगा कर या ख़ुद मेहनत करके कुछ कमाये, तो उसकी मालिक भी पूरी की पूरी वही है और इन सबके बावजूद गुज़र-बसर का ख़र्च हर हाल में उसके शौहर पर वाजिब है। बीवी चाहे कितनी ही मालदार हो, उसका शौहर उसके गुज़ारा-ख़र्च से अलग नहीं हो सकता। इस तरह इस्लाम में औरत की आर्थिक हैसियत इतनी मज़बूत हो गयी है कि कभी-कभी वह मर्द से ज़्यादा बेहतर हालत में होती है।

---

[42] {damgV _| Am¡aV H$m {hñgm _X© Ho$ _wµH$m~bo AmYm aIm J`m h¡ & BgH$s dOh `h h¡ {H$ Am¡aV H$mo JwµOmam ^Îmm Am¡a _• Ho$ hµH$ hm{gb h¢, {OZgo _X© _hê$_ h¡ & Am¡aV H$m JwµOmam ^Îmm {gµ\©$ CgHo$ em¡ha na hr dm{O~ Zht h¡, ~{ëH$ em¡ha Z hmoZo na ~mn, ^mB©, ~oQo `m Xygao d{b`m| (ganañVm|) na CgH$s nad[ae dm{O~ hmoVr h¡, ng O~ Am¡aV na do {µOå_|Xm[a`m§ Zht h¢, Vmo {damgV _| CgH$m {hñgm ^r dh Z hmoZm Mm{hE, Omo _X© H$m h¡ &

सांस्कृतिक हक़

१. औरत को अपना शौहर चुनने का पूरा-पूरा हक़ दिया गया है। उस की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ या उस की रज़ामंदी के बिना कोई आदमी उसका निकाह नहीं कर सकता और अगर वह ख़ुद अपनी मर्ज़ी से किसी मुस्लिम व्यक्ति के साथ निकाह कर ले, तो कोई उसे रोक नहीं सकता। अलबत्ता, अगर उसके चुनाव की नज़र किसी ऐसे आदमी पर पड़े, जो उसके ख़ानदानी मर्तबे से गिरा हुआ हो, तो इस शक्ल में उसके वलियों को एतराज़ का हक़ है।

२. एक नापसन्दीदा या ज़ालिम या नाकारा शौहर के मुक़ाबले में औरत को ख़ुलअ़ लेने और निकाह के ख़त्म कराने और अलगाव अख़्तियार कर लेने के काफ़ी हक़ दिए गए हैं।

३. शौहर को बीवी पर जो अधिकार इस्लाम ने दिए हैं, उनके इस्तेमाल में अच्छा सुलूक और उदारता भरा व्यवहार अपनाने की हिदायत की गयी है। क़ुरआन का इर्शाद हैं

   'औरतों के साथ नेकी का बर्ताव करो।'

   'आपस के ताल्लुक़ात में उदारता को न भूल जाओ।'

   नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का इर्शाद है

   'तुम में अच्छे वे लोग हैं, जो अपनी बीवीयों के साथ अच्छे हैं और अपने बाल-बच्चों के साथ विनम्रता व मुहरबानी का सुलूक करने वाले हैं।'

ये सिर्फ़ अख़्लाक़ी हिदायतें ही नहीं हैं। अगर शौहर अपने अख़्तियारों के इस्तेमाल में ज़ुल्म से काम ले, तो औरत को क़ानून से मदद लेने का हक़ भी हासिल है।

४. बेवा और तलाक़शुदा औरतों और ऐसी तमाम औरतों को, जिनके निकाह क़ानून के मुताबिक़ ख़त्म कर दिए हों, या जिनको अलगाव के हुक्म के ज़रिए से शौहर से जुदा किया गया हो, दूसरे निकाह का बिना शर्त हक़ दिया गया है और इस बात को साफ़ कर दिया गया है कि उन पर पिछले शौहर या

उसके किसी रिश्तेदार का कोई हक़ बाक़ी नहीं। यह वह हक़ है, जो आज तक यूरोप और अमरीका के बहुत से मुल्कों में भी औरतों को नहीं मिला है।

५. दीवानी और फ़ौजदारी के क़ानूनों में औरत और मर्द के बीच पूरी बराबरी क़ायम की गयी है। जान व माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त में इस्लामी क़ानून औरत और मर्द के दर्मियान किसी क़िस्म का फ़र्क़ नहीं करता।

औरतों की तालीम

औरतों को दीनी और दुनियावी तालीम की न सिर्फ़ इजाज़त दी गयी है, बल्कि तालीम व तर्बीयत को उतना ही ज़रूरी क़रार दिया गया है, जितना मर्दों की तालीम व तर्बियत ज़रूरी है। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से दीन व अख़्लाक़ की तालीम जिस तरह मर्द हासिल करते थे, उसी तरह औरतें भी करती थीं। आपने उनके लिए वक़्त तै कर दिये थे जिनमें वे आपसे सीखने के लिए हाज़िर होती थीं। आप की पाक बीवियाँ और ख़ास तौर से हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) न सिर्फ़ औरतों को, बल्कि मर्दों को भी सिखाती-पढ़ाती रहती थीं और बड़े-बड़े सहाबा व तावईन उनसे हदीस, तफ़्सीर और फ़िक़्ह की तालीम हासिल करते थे। बड़े लोग तो दूर की बात, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने लौंडियां तक को इल्म और अदब सिखाने का हुक्म दिया था, चुनांचे हुज़ूर सल्ल. का इर्शाद है कि

> 'जिस आदमी के पास कोई लौंडी हो और वह उस को ख़ूब तालीम और अच्छी तहज़ीब सिखाये, फिर उसको आज़ाद करके उसकी शादी करे, उसके लिए दोहरा अज्र (बदला) है।'
>
> बुख़ारी

इस प्रकार, जहां तक तालीम व तर्बियत का ताल्लुक़ है, इस्लाम ने औरत और मर्द के बीच कोई फ़र्क़ नहीं किया है, हां, अलग-अलग शक्लें हो सकती हैं। इस्लमी हिसाब से औरत की सही तालीम व तर्बियत वह है, जो उसको एक बेहतरीन बीवी, बेहतरीन मां और बेहतरीन घर वाली बनाए। उसका कार्य-क्षेत्र घर है, इसलिए ख़ास तौर से उन बातों की तालीम दी जानी चाहिए, जो उस क्षेत्र में उसे ज़्यादा फ़ायदेमंद बना सकते हैं। साथ ही वह ज्ञान भी उसके लिए ज़रूरी है जो इंसान को इंसान बनाने वाले और उसके अख़्लाक़ को संवारने वाले और

उसकी नज़र को व्यापक करने वाले हैं । ऐसी तालीम और ऐसी तर्बियत का मिलना हर मुसलमान औरत के लिए ज़रूरी है । इसके बाद अगर कोई औरत ग़ैर-मामूली अक़्ली व ज़ेहनी योग्यता रखती हो और इस के अलावा ऊंची तालीम भी हासिल करना चाहे, तो इस्लाम उस की राह में रोक नहीं पैदा करता, बशर्ते कि वह उन हदों से आगे न बढ़े, जो शरीअत ने औरतों के लिए मुक़र्रर कर दिये हैं ।

औरत की असली उठान (एारपलळरींळेप)

यह तो सिर्फ़ हक़ों का ज़िक्र है, पर इससे उस बड़े एहसान का अन्दाज़ा नहीं किया जा सकता, जो इस्लाम ने औरत पर किया है । इंसानी संस्कृति की पूरी तारीख़ इस पर गवाह है कि औरत का वजूद दुनिया में ज़िल्लत, शर्म और गुनाह का वजूद था । बेटी की पैदाइश बाप के लिए बहुत बड़ा ऐब समझी जाती थी । ससुराली रिश्ते ज़लील समझे जाते थे, यहां तक कि ससुरे और साले शब्द इसी जाहिली विचार के तहत आज तक गाली के तौर पर इस्तेमाल हो रहे हैं । बहुत-सी क़ौमों में इसी ज़िल्लत से बचने के लिए लड़कियों को क़त्ल कर देने का रिवाज हो गया था ।[४३] जाहिल तो दूर की बात, उलेमा और मज़हबी पेशवा तक में मुद्दतों तक यह सवाल बहस में छिड़ा रह कि औरत इंसान भी है य नहीं ? और ख़ुदा ने उस को रूह बख़्शी है या नहीं ? हिन्दू धर्म में वेदों की तालीम का दरवाज़ा औरत के लिए बन्द था । बौद्ध मत में औरत से ताल्लुक़ रखने वाले के लिए निर्वाण की कोई शक्ल न थी । ईसाइयों और यहूदियों की निगाह में औरत ही इंसानी गुनाह की बुनियाद डालने वाली और ज़िम्मेदार थी । यूनान में घर

---

43 µHw$aAmZ Bg Om{hbr µOoh{Z`V H$mo ~‹So AÀNo AÝXmµO _| ~`mZ H$aVm h¡
"Am¡a O~ CZ_| go {H$gr H$mo ~oQr n¡Xm hmoZo H$s ˜~a Xr OmVr h¡, Vmo CgHo$ Mohao na H$bm¢g Nm OmVr h¡ Am¡a dh µOha H$m-gm Ky§Q nr H$a ah OmVm h¡ & Bg ˜~a go Omo e_© H$m XmµJ CgH$mo bJ J`m h¡, CgH$s dOh go bmoJm| go _w§h${NnmVm {\$aVm h¡ Am¡a gmoMVm h¡ {H$ Š`m {µOëbV Ho$ gmW ~oQr H$mo {bE ahy§ `m {_År _| X~m Xy§ ?'
AZ-Zhb :7

वालियों के लिए न ज्ञान था, न संस्कृति, न सभ्यता और न रहन-सहन के हक़। ये चीज़ें जिस औरत को मिलती थीं, वह रंडी होती थी। रूम, ईरान, चीन और मिस्र और संस्कृति के दूसरे केन्द्रों का हाल भी क़रीब-क़रीब ऐसा ही था। सदियों की मज़्लूमी और अधीनता और व्यापक अपमान के बर्ताव ने ख़ुद औरत के ज़ेहन से भी अपनी इज़्ज़त का एहसास मिटा दिया था। वह ख़ुद भी इस बात को भूल गयी थी कि दुनिया में वह कोई हक़ ले कर पैदा हुई है या उसके लिए भी इज़्ज़त की कोई जगह है। मर्द उस पर ज़ुल्म व सितम करना अपना हक़ समझता था और वह उसके ज़ुल्म को सहना अपना फ़र्ज़ जानती थी। गुलामी की ज़ेहनियत इस हद तक उसमें पैदा कर दी गयी थी कि वह गर्व के साथ अपने आप को शौहर की 'दासी' कहती थी। 'पतिव्रता' होना उसका धर्म था और पतिव्रता का मतलब यह था कि शौहर उसका माबूद और देवता है।

इस माहौल में जिसने न सिर्फ़ क़ानूनी और अमली हैसियत से, बल्कि ज़ेहनी हैसियत से भी एक बड़ा इन्क़िलाब पैदा किया है, वह इस्लाम है। इस्लाम ने ही औरत और मर्द दोनों की ज़ेहनियतों को बदला है। औरत की इज़्ज़त और उसके हक़ का विचार ही इंसान के दिमाग में इस्लाम का पैदा किया हुआ है। आज औरतों के हक़ों, औरतों की तालीम और औरतों की बेदारी के जो शब्द आप सुन रहे हैं, ये सब उसी इंक़िलावी आवाज़ की गूंज हैं, जो मुहम्मद (सल्ल.) की ज़ुबान से बुलन्द हुई थी और जिसने इंसानी विचारों का रूख़ हमेशा के लिए बदल दिया। वह मुहम्मद (सल्ल.) ही हैं, जिन्होंने दुनिया को बताया कि औरत भी वैसी ही इंसान है, जैसा मर्द है।

> 'अल्लाह ने तुम सब को एक जान से पैदा किया और उसी की जिंस से उसके जोड़े को पैदा किया। ख़ुदा की निगाह में औरत और मर्द के दर्मियान कोई अन्तर नहीं।'
>
> (सूरा अन-निसा ४:१)

> 'मर्द जैसा अमल करें उनका फल वह पायेंगे और औरतें जैसे अमल करें, उनका फल वे पायेंगी।'
>
> (सूरा अन-निसा: ४:३२)

ईमान और भले अमल के साथ रूहानी तरक़्क़ी के जो दर्जे मर्द को मिल सकते हैं, वही औरत के लिए भी खुले हुए हैं। मर्द अगर इब्राहीम-बिन-अदहम

बन सकता है, तो औरत को भी राबिआ-बसरिया बनने से कोई चीज़ नहीं रोक सकती

'उनके रब ने उनकी दुआ के जवाब में फ़रमाया कि मैं तुम में से किसी अमल करने वाले के अमल को बर्बाद न करूंगा, चाहे वह मर्द हो या औरत, तुम सब एक दूसरे की जिंस से हो।'
(सूरा आले इम्रान ३:१९५)

'और जो कोई भी नेक अमल करेगा, चाहे मर्द हो या औरत, पर हो ईमानवाला, तो ऐसे सब लोग जन्नत में दाख़िल होंगे और उन पर रत्ती बराबर ज़ुल्म न होगा।'

(सूरा अन-निसा ४:१२४)

फिर वह मुहम्मद (सल्ल.) ही हैं, जिन्होंने मर्द को भी ख़बरदार किया और औरत में भी यह एहसास पैदा किया कि जैसे हक़ औरत पर मर्द के हैं, वैसे ही मर्द पर औरत के हैं।

'औरत पर जैसी ज़िम्मेदारियां हैं वैसे ही उसके हक़ भी हैं।'

(सूरा अल-बक़र २:२२८)

फिर वह मुहम्मद (सल्ल.) ही की ज़ात है, जिसने औरत की ज़िल्लत और रूसवाई की जगह से उठा कर इज़्ज़त की जगह पर पहुंचाया। वह हुज़ूर (सल्ल.) ही हैं जिन्होंने बाप को बताया कि बेटी का वजूद तेरे लिए शर्म की बात नहीं है, बल्कि उस का पालना-पोसना परवरिश और उसके हक़ों का देना तुझे जन्नत का हक़दार बनाता है।

‘जिसने दो लड़कियों की परवरिश की, यहां तक कि वे बालिग़ हो गयीं, तो क़ियामत के दिन मैं और वह (व्यक्ति) इस तरह साथ आएंगे, जैसे मेरे हाथ की ये दो उंगलिया साथ-साथ हैं।’
मुस्लिम

‘जिसके यहां लड़कियां पैदा हों और वह अच्छी तरह उनकी परवरिश करे तो यही लड़कियां उसके लिए नरक से आड़ बन जायेंगी।’
मुस्लिम

हुज़ूर (सल्ल.) ही ने शौहर को बताया कि नेक बीवी तेरे लिए दुनिया में सब से बड़ी नेमत है

‘दुनिया की नेमतों में बेहतरीन नेमत नेक बीवी है।’ नसई

‘दुनिया की चीज़ों में मुझ को सब से ज़्यादा महबूब औरत और ख़ुश्बू है और मेरी आंखों की ठंडक नमाज़ में है।’ नसई

‘दुनिया की नेमतों में से कोई चीज़ नेक बीवी से बेहतर नहीं है।’
इब्ने माजा

हुज़ूर सल्ल. ही ने बेटे को बताया कि ख़ुदा और रसूल के बाद सबसे ज़्यादा इज़्ज़त और क़द्र और अच्छे व्यवहार की हक़दार तेरी मां है।

‘एक आदमी ने रसूल सल्ल. से पूछा, ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल.)! मुझ पर अच्छे व्यवहार का सब से ज़्यादा हक़ किस का है ? फ़रमाया, तेरी माँ का। उसने पूछा, फिर कौन ? फ़रमाया, तेरी माँ का। उसने पूछा, फिर कौन ? फ़रमाया, तेरी माँ का। उसने पूछा, फिर कौन ? फ़रमाया तेरा बाप ! अल्लाह ने तुम पर माओं की नाफ़रमानी और उन का हक़ मारना हराम कर दिया है।’
बुख़ारी

हुज़ूर सल्ल. ही ने इंसान को इस हक़ीक़त से आगाह किया कि भावनाओं की बहुतात, एहसासों की कोमलता और इन्तिहा-पसन्दी की ओर झुकाव औरत की प्रकृति में है। इसी प्रकृति पर अल्लाह ने उसको पैदा किया है और यह औरतपने के लिए ऐब नहीं, उसका हुस्न है। तुम उससे जो कुछ भी फ़ायदा उठा सकते हो, उस प्रकृति पर क़ायम रह कर ही उठा सकते हो। अगर उसको मर्दों की

तरह सीधा और सख़्त बनाने की कोशिश करोगे, तो उसे तोड़ दोगे ।[४४]
बुख़ारी

इस तरह मुहम्मद (सल्ल.) वह पहले और आख़िरी आदमी है, जिन्होंने औरत के ताल्लुक़ से न सिर्फ़ मर्द की बल्कि ख़ुद औरत की अपनी ज़ेहनियत को भी बदल दिया और जाहिली ज़ेहनियत की जगह एक निहायत सही ज़ेहनियत पैदा की, जिसकी बुनियाद भावनाओं पर नहीं, बल्कि ख़ालिस अक़्ल और इल्म पर थी, फिर आप ने आंतरिक सुधार ही को काफ़ी न समझा, बल्कि क़ानून के ज़रिए से औरतों के हक़ों की हिफ़ाज़त और मर्दों के ज़ुल्म की रोक-थाम का भी इन्तिज़ाम कर दिया और औरतों में इतनी बेदारी पैदा की कि वे अपने जायज़ हक़ों को समझें और उन की हिफ़ाज़त के लिए क़ानून से मदद लें।

हज़रत मुहम्मद सल्ल. के व्यक्तित्व में औरतों को एक मेहरबान और स्नेहपूर्ण पक्षधर और ऐसा ज़बरदस्त संरक्षक मिल गया था कि अगर उन पर ज़रा-सी भी ज़्यादती होती, तो वह शिकायत ले कर बेतकल्लुफ़ हुज़ूर सल्ल. के पास दौड़ जाती थीं और मर्द इस बात से डरते थे कि कहीं उनकी बीवियों को आप (सल्ल.) तक शिकायत ले जाने का मौक़ा न मिल जाए । हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर रज़ि. का बयान है कि जब तक हुज़ूर (सल्ल.) ज़िंदा रहे, हम अपनी औरतों से बात करने में एहतियात करते थे कि कहीं हमारे बारे में अल्लाह का कोई हुक्म न नाज़िल हो जाए। जब हुज़ूर (सल्ल.) ने वफ़ात पायी, तब हमने खुल कर बात करनी शुरू की। बुख़ारी

इब्ने माजा में है कि हुज़ूर सल्ल. ने बीवियों पर हाथ छोड़ देने की आम मनाही कर दी थी। एक बार हज़रत उमर रज़ि. ने शिकायत की कि औरतें बहुत शोख़ हो गयी हैं। उनको क़ाबू में करने के लिए मारने की इजाज़त होनी चाहिए। आपने इजाज़त दे दी। लोग न जाने कब से भरे बैठे थे। जिस दिन इजाज़त मिली, उसी दिन सत्तर औरतें अपने घरों में पीटी गयीं। दूसरे दिन नबी (सल्ल.) के

---

[44] _yb Aa~r Bg Vah h¡
Ab-_a-AVw H$µO-µOb{A BZ A-H$åVhm H$-ga-Vhm d B{ZñV_-VA-V {~hm BñVåVA-V {bhm d µ\$shm {A-d OwZ ~w˜ar

मकान पर फ़रियादी औरतों की भीड़ हो गयी। आप (सल्ल.) ने लोगों को जमा होने का हुक्म दिया। ख़ुत्बा देने खड़े हुए और फ़रमाया

'आज मुहम्मद के घर वालों के पास सत्तर औरतों ने चक्कर लगाया है। हर औरत अपने शौहर की शिकायत कर रही थी। जिन लोगों ने यह हरकत की है, वे तुम में से हरगिज़ अच्छे लोग नहीं हैं।'
बुख़ारी

इसी अख़्लाक़ी और क़ानूनी सुधार का नतीजा है कि इस्लामी समाज में औरत को वह ऊंची हैसियत हासिल हुई, जिसकी नज़ीर दुनिया की किसी सोसाइटी में नहीं पायी जाती। मुसलमान औरत दुनिया और दीन में भौतिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक स्तर पर इज़्ज़त और तरक़्क़ी के उन ऊंचे से ऊंचे दर्जों तक पहुंच सकती है, जिन तक मर्द पहुंच सकता है और उसका औरत होना उसकी राह में तनिक भी रूकावट नहीं है। आज इस बीसवीं सदी में भी दुनिया इस्लाम से बहुत पीछे है। इंसानी सोच की पहुंच अब भी उस जगह तक नहीं हो सकी है, जिस पर इस्लाम पहुंचा है। पश्चिमी संस्कृति ने औरत को जो कुछ दिया है, औरत की हैसियत से नहीं दिया है बल्कि मर्द बना कर दिया है। औरत हक़ीक़त में अब भी निगाह में वैसी ही तुच्छ चीज़ है, जैसी जाहिलियत के पुराने दौर में थी। घर की मालकिन, शौहर की बीवी, बच्चों की माँ, एक असली और हक़ीक़ी औरत के लिए अब भी कोई इज़्ज़त नहीं है। इज़्ज़त अगर है तो उस 'स्त्रीलिंग मर्द' या 'पुल्लिग औरत' के लिए है, जो जिस्मानी हैसियत से तो औरत हो, पर दिमाग़ी और ज़ेहनी हैसियत से मर्द हो, और रहन-सहन और संस्कृति में मर्द ही के-से काम करे। ज़ाहिर है कि यह औरतपने की इज़्ज़त नहीं, मर्द पने की इज़्ज़त है।

फिर नीचता के एहसास की हीन-भवना (खपषशीळेंीळीूं ऊेािश्रशु) का खुला हुआ सबूत यह है कि पश्चिमी औरत मर्दाना लिबास गर्व के साथ पहनती है, हालांकि कोई मर्द ज़नाना लिबास पहन कर पब्लिक में आने की बात सोच भी नहीं सकता। बीवी बनना लाखों पाश्चात् नारियों की दृष्टि में अपमानजनक है, हालांकि शौहर बनना किसी मर्द के नज़दीक अपमान की बात नहीं। मर्दाना काम करने में औरतें इज़्ज़त महसूस करती हैं, हालांकि गृहस्ती और बच्चों के पालन-पोषण जैसे शुद्ध ज़नाना कामों में कोई मर्द इज़्ज़त नही महसूस करता।

अत:, साफ़-साफ़ कहा जा सकता है कि पश्चिम ने औरत को औरत होने की हैसियत में कोई इज़्ज़त नहीं दी है। यह काम इस्लाम और सिर्फ़ इस्लाम ने किया है कि किसी औरत को संस्कृति और रहन-सहन में उसकी स्वाभाविक जगह पर रख कर इज़्ज़त का दर्जा दिया और सही अर्थों में 'नारित्व' को बुलन्द किया। इस्लामी संस्कृति औरत को औरत और मर्द को मर्द रख कर दोनों से अलग-अलग वही काम लेती है, जिनके लिए प्रकृति ने उन्हें बनाया है और फिर हर एक को उसकी जग़ह ही पर रखते हुए इज़्ज़त, तरक़्क़ी और कामियाबी के समान अवसार जुटाती है। उसकी निगाह में औरतपना और मर्दपना दोनों इंसानियत के ज़रूरी हिस्से हैं। संस्कृति की तामीर के लिए दोनों की अहमियत बराबर है। दोनों अपने-अपने दायरे में जो ख़िदमत अंजाम देते हैं, वे बराबर फ़ायदेमंद और बराबर क़द्र की हक़दार हैं, न मर्द होने में कोई इज़्ज़त है, न औरत होने में कोई ज़िल्लत। जिस तरह मर्द के लिए इज़्ज़त और तरक़्क़ी और कामियाबी इसी में है कि वह मर्द रहे और मर्दाना ख़िदमत अंजाम दे, उसी तरह औरत के लिए भी इज़्ज़त, तरक़्क़ी और कामियाबी इसी में है कि वह औरत रहे और ज़नाना ख़िदमत अंजाम दे।

एक भली संस्कृति का काम यही है कि वह औरत को उसके स्वाभाविक कार्य-क्षेत्र में रख कर पूरे इंसानी हक़ दे, इज़्ज़त और बड़प्पन दे, तालीम व तर्बियत से उसकी छिपी हुई योग्यताओं को चमकाये और उसी क्षेत्र में उसके लिए तरक़्क़ियों और कामियाबियों की राहें खोले।

इस्लामी रहन-सहन की व्यावस्था-३

सावधानियां

यह इस्लामी रहन-सहन की व्यवस्था की पूरी रूप-रेखा थी। अब आगे बढ़ने से पहले इस रूप-रेखा की अहम और ख़ास बातों को फिर नज़र देख लीजिए

१. इस व्यवस्था का मंशा यह है कि सामूहिक माहौल को जहां तक मुम्किन हो, कामुक उत्तेजनाओं और हरकतों से पाक रखा जाए, ताकि इंसान की जिस्मानी और ज़ेहनी ताक़तों को एक साफ़-सुथरे विशद्ध और पुरसुकून माहौल में तरक़्क़ी का मौक़ा मिले और वह अपनी सारी शक्ति के साथ संस्कृति की तामीर में अपने हिस्से का काम अंजाम दे सके।

२. यौन-संबंध बिल्कुल शादी के दायरे में बंधे हुए हों और इस दायरे के बाहर न सिर्फ़ अमल के बिखराव को रोका जाए, बल्कि ख़्याल के बिखराव का भी इम्कानी हद तक रास्ता बन्द कर दिया जाए।

३. औरत का कार्य-क्षेत्र मर्द के कार्य-क्षेत्र से अलग हो। दोनों की प्रकृति और ज़ेहनी और जिस्मानी क्षमता के लिहाज़ से संस्कृति की अलग-अलग सेवाएं उनके सुपुर्द की जायें और उनके ताल्लुक़ात इस तौर पर बनाए जायें कि वे जायज़ हदों के अन्दर एक दूसरे के मददगार हों, पर हदों से आगे बढ़ कर कोई किसी के काम में बाधा न डाल सके।

४. ख़ानदान की व्यवस्था में मर्द की हैसियत सिरधरे (क़व्वाम) की हो और घर के तमाम लोग उसके आधीन रहें।

५. औरत और मर्द दोनों को पूरे इन्सानी हक़ हासिल हों और दोनों को तरक़्क़ी के बेहतर से बेहतर मौक़े दिए जायें, पर दोनों में से कोई भी उन हक़ों से आग न जा सके जो रहन-सहन में उसके लिए मुक़र्रर कर दिये गये है।

इस रूप-रेखा पर जिस रहन-सहन की व्यवस्था की बुनियाद रखी गयी है, उसको कुछ आरक्षणों की ज़रूरत है, जिनसे उसकी व्यवस्था अपनी तमाम ख़ूबियों के साथ बरक़रार रहे। इस्लाम में ये आरक्षण तीन क़िस्म के हैं

१. आंतरिक सुधार,

२. ताज़ीरी क़ानून,

३. रोक-थाम के उपाय,

ये तीनों आरक्षण रहन-सहन की व्यवस्था के मिज़ाज और उसके मक़्सदों का सही ताल-मेल ध्यान में रख कर तज्वीज़ किए गए हैं और मिल-जुल कर उसकी हिफ़ाज़त करते हैं।

आंतरिक सुधार के ज़रिए से इंसान की तर्बियत इस तौर पर की जाती है कि वह अपने आप ही रहन-सहन की इस व्यवस्था के पालन पर तैयार हो, चाहे, बाहर में कोई ताक़त उस को पालन करने पर मजबूर करने वाली हो या न हो।

तोज़ीरी क़ानूनों के ज़रिए से ऐसे जुर्मों की रोक-थाम की जाती हो, जो इस व्यवस्था को तोड़ने और उसके स्तंभों को ध्वस्त करने वाले हों।

रोक-थाम के उपायों के ज़रिए से सामूहिक ज़िंदगी में ऐसे तरीक़े चालू किए गए हैं जो समाज के माहौल को अप्राकृतिक भड़कावों और बनावटी उत्प्रेरकों से पाक कर देते हैं और यौन-विकार की संभावनाओं को कम से कम हद तक घटा देते हैं। अख़्लाक़ी तालीम से जिन लोगों आंतरिक सुधार मुकम्मल न हुआ हो और जिनको ताज़ीरी क़ानूनों का डर भी न हो, उनकी राह में ये तरीक़े ऐसी रूकावटें डाल देते हैं कि यौन-विकार की ओर झुकाव रखने के बावजूद उनके लिए अमली क़दम उठाना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसके अलावा यही वे तरीक़े हैं जो औरत और मर्द के कार्य-क्षेत्रों को अमलन अलग करते हैं, ख़ानदान की व्यवस्था को उसकी सही इस्लामी शक्ल पर क़ायम करते हैं और उन हदों की हिफ़ाज़त करते हैं जो औरतों और मर्दों की ज़िंदगी में फ़र्क़ क़ायम रखने के लिए इस्लाम ने मुक़र्रर की हैं।

अतं:करण का सुधार

इस्लाम में आज्ञापालन की बुनियाद पूरे की पूरा ईमान पर रखी गयी है। जो आदमी ख़ुदा और उस की किताब और उसके रसूल पर ईमान रखता हो, वही शरीअत के करने न करने के हुक्मों का असल मुख़ातब है और उसके, करने के हुक्मों को मानने और न करने के हुक्मों से बचने के लिए सिर्फ़ यह ज्ञान होना काफ़ी है कि फ़लां हुक्म ख़ुदा का हुक्म है और फ़लां मनाही ख़ुदा की मनाही है। अत: जब एक मोमिन को ख़ुदा की किताब से यह मालूम हो जाए कि अल्लाह

अशलीलता और बदकारी से मना करता है, तो उसके ईमान का तक़ाज़ा यही है कि वह राज़ी-ख़ुशी इस हुक्म को क़ुबूल करे और अपनी हद से आगे न बढ़े। इस लिहाज़ से ज़िंदगी के दूसरे विभागों की तरह अख़्लाक़ और रहन-सहन के दायरे में भी इस्लाम के सही और पूरे पालन का मदार ईमान पर है और यही वजह है कि इस्लाम में अख़्लाक़ और रहन-सहन के बारे में हिदायतें देने से पहले ईमान की ओर दावत दी गयी है और दिलों में उसको पक्का करने की कोशिश की गयी है।

यह तो आंतरिक सुधार का वह बुनियादी ज़रिया है, जिसका ताल्लुक़ सिर्फ़ अख़्लाक़ी मामलों ही से नहीं, बल्कि पूरी इस्लामी व्यवस्था से है। इस के बाद ख़ास कर अख़्लाक़ के दायरे में इस्लाम ने तालीम व तर्बियत का एक बड़ा ही हकीमाना तरीक़ा अख़्तियार किया है, जिसको हम संक्षेप में यहां बयान करते हैं।

हया

पहले इशारों में यह कहा जा चुका है कि व्यभिचार (ज़िना), चोरी,झूठ और तमाम दूसरे गुनाह के काम जिन्हें हैवानी प्रकृति के ग़लबे से इंसान करता है, सब के सब इंसानी प्रकृति के ख़िलाफ़ हैं। क़ुरआन ऐसे तमाम कामों को 'मुन्कर' शब्द से याद करता है। 'मुन्कर' अरबी शब्द है जिसका अर्थ 'अनजाना' है। इन कामों को मुन्कर कहने का मतलब यह हुआ कि ये ऐसे काम हैं, जिन्हें इंसानी प्रकृति नहीं जानती। अब यह ज़ाहिर है कि जब इंसान की प्रकृति उन्हें नहीं जानती और हैवानी प्रकृति उस पर ज़बरदस्ती हमला कर के उसको इन कामों के करने पर मजबूर करती है, तो ख़ुद इन्सान ही की प्रकृति में कोई ऐसी चीज़ भी होनी चाहिए, जो तमाम अनजानी चीज़ों से नफ़रत करने वाली हो। ख़ुदा ने इस चीज़ की निशानदेही कर दी है। वह इसे हया का नाम देता है।

हया का मतलब है 'शर्म'। इस्लाम की ख़ास परिभाषा में हया से मुराद वह शर्म है, जो किसी अनजाने काम की ओर झुकाव रखने वाला इन्सान ख़ुद अपनी प्रकृति के सामने और अपने ख़ुदा के सामने महसूस करता है। यही हया वह ताक़त है जो इन्सान को अशलील और बुरे काम करने से रोकती है और अगर वह हैवानी प्रकृति के ग़लबे से कोई बुरा काम कर गुज़रता है तो यही चीज़ उसके दिल में खटक पैदा करती है। इस्लाम की अख़्लाक़ी तालीम व तर्बियत का ख़ुलासा यह है कि वह हया के इसी छिपे हुए तत्व को इन्सानी प्रकृति की गहराइयों से निकाल कर ज्ञान, समझ और चेतना के भोजन से उसे पालती-

पोसती है और एक मज़बूत अख़्लाक़ी एहसास की दीवार बना कर उसको इन्सानी नफ़्स में एक कोतवाल की हैसियत से लगा देती है। यह हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के उस कथन की ठीक-ठीक व्याख्या है, जिसमें इर्शाद हुआ है कि 'हर दीन का एक अख़्लाक़ होता है और इस्लाम का अख़्लाक़ हया है' और वह हदीस भी इसी विषय पर रोशनी डालती है, जिसमें आप (सल्ल.) ने फ़रमाया कि 'जब तुझ में हया नहीं, तो जो तेरा जी चाहे कर, क्योंकि जब हया न होगी, तो ख़्वाहिश, जिसका स्रोत हैवानी प्रकृति है, तुझ पर ग़ालिब आ जाएगी और कोई मुन्कर तेरे लिए मुन्कर ही न रहेगा।'

इन्सान की प्राकृतिक हया एक ऐसे अनगढ़ तत्व की हैसियत रखती है, जिसने अभी कोई शक्ल न अख़्तियार की हो। वह तमाम बुराइयों से तबीयतन नफ़रत तो करती है, पर उसमें समझ-बूझ नहीं है। इस वजह से वह नहीं जानती कि किसी ख़ास बुरे काम से उसे किस लिए नफ़रत है। यही न जानना धीरे-धीरे उसके नफ़रत के एहसास को कमज़ोर कर देता है, यहां तक कि हैवानियत के ग़लबे से इन्सान बुराइयां करने लगता है और ऐसा बार-बार करने की वजह से आख़िरकार हया का एहसास बिल्कुल ख़त्म हो देता है। इस्लाम की अख़्लाक़ी तालीम का मक़्सद इसी नादानी को दूर करना है। वह उसको न सिर्फ़ खुली हुई बुराइयों से परिचित कराती है, बल्कि मन के चोर-ख़ानों तक में नीयतों, इरादों और ख़्वाहिशों की जो बुराइयां छिपी हुई हैं, उनको भी उनके सामने ज़ाहिर कर देती है और एक-एक चीज़ के फ़साद से उसे ख़बरदार करती है, ताकि वह अपनी सूझ-बूझ की बुनियाद पर उससे नफ़रत करे, फिर अख़्लाक़ी तर्बियत इस ज्ञानपूर्ण शर्म व हया को इतना संवेदनशील बना देती है कि बुराई की ओर मामूली से मामूली रूझान भी उससे छिपा नहीं रहता और नीयत और ख़्याल के थोड़े से भटकाव को भी वह चेतावनी दिये बिना नहीं छोड़ती।

इस्लामी अख़्लाक़ में हया का दायरा इतना फैला हुआ है कि ज़िंदगी का कोई विभाग उससे छूटा हुआ नहीं है। अत: संस्कृति और रहन-सहन का जो विभाग इन्सान के यौन-आचार से ताल्लुक़ रखता है, उसमें भी इस्लाम ने अख़्लाक़ की इस्लाह के लिए इसी चीज़ से काम लिया है। वह यौनाचार-संबंधी मामलों में इंसान के अंदर की अति सूक्ष्म चोरियों को भी पकड़ कर हया को उनसे ख़बरदार करता है और उनकी निगरानी पर लगा देता है। यहां विस्तार में जाने का मौक़ा नहीं, इसलिए कुछ मिसालें ही काफ़ी हैं।

मन के चोर

क़ानून की नज़र में व्यभिचार (ज़िना) सिर्फ़ जिस्मानी मिलन का नाम होता है, पर अख़्लाक़ की नज़र में शादी के दायरे के बाहर विपरीत लिंग की ओर हर झुकाव, इरादे और नीयत के दृष्टिकोण से ज़िना है। अजनबी के हुस्न से आंख का लुत्फ़ लेना, उसकी आवाज़ से कानों का लज़्ज़त लेना, उससे बातें करने में ज़ुबान का लोच खाना, उसके कूचे की ख़ाक छानने के लिए क़दमों का बार-बार उठना, ये सब ज़िना से पहले की बातें हैं और ख़ुद भाव की दृष्टि से ज़िना है। क़ानून उस ज़िना को नहीं पकड़ सकता, यह मन का चोर है और सिर्फ़ दिल का कोतवाल इसको गिरफ़्तर कर सकता है। हुज़ूर (सल्ल.) की हदीद इसकी ख़बर इस तरह देती है

'आंखें ज़िना करती हैं और उनकी ज़िना नज़र है और हाथ ज़िना करते हैं और उनकी ज़िना हाथ डाल देना है और पांव ज़िना करते हैं और उनकी ज़िना उस राह में चलना है और ज़ुबान की ज़िना बातचीत है और दिल की ज़िना ख़्वाहिश है। आख़िर में यौनांग या तो इन सबकी पूर्ति कर देते हैं या इन्हें रद देते हैं।'

नज़र का फ़ित्ना

मन का सबसे बड़ा चोर निगाह है, इसलिए क़ुरआन और हदीस दोनों सबसे पहले उसकी पकड़ करते हैं। क़ुरआन कहता है

> 'ऐ नबी ! मोमिन मर्दों से कह दो कि अपनी निगाहों को (ग़ैर औरतों को देखने से) दूर रखें और अपने गुप्तांगों की हिंफ़ाज़त करें। यह उनके लिए ज़्यादा पाकीज़ा तरीक़ा है। जो कुछ वे करते हैं, उससे अल्लाह बा-ख़बर है। और ऐ नबी ! मोमन औरतों से भी कह दो कि अपनी निगाहों को (ग़ैर मर्दों के देखने से) दूर रखें और अपने गुप्तांगों की हिफ़ाज़त करें।'
>
> (सूरा अन-नूर २४:३०,३१)

हदीस में है

‘आदमी ! तेरी पहली नज़र तो माफ़ है, पर ख़बरदार! दूसरी नज़र न डालना।’ (हदीस अल-जस्सास)

आप (सल्ल.) ने हज़रत अली रज़ि. से फ़रमाया

‘ऐ अली! एक नज़र के बाद दूसरी नज़र न डालो, पहली नज़र तो माफ़ है, पर दूसरी नहीं।’ (हदीस अबूदाऊद)

हज़रत जाबिर रज़ि. ने पूछा कि अचानक नज़र पड़ जाए, तो क्या करूं ? फ़रमाया, फ़ौरन नज़र फेर लो।

(हदीस अबूदाऊद)

हुस्न ज़ाहिर करने की भावना

नज़र के इसी फ़ित्ने का एक हिस्सा वह भी है, जो औरत के दिल में यह ख़्वाहिश पैदा करता है कि उसका हुस्न देखा जाए। यह ख़्वाहिश हमेशा साफ़ और ज़ाहिर नहीं होती। दिल के पर्दों में हुस्न की नुमाइश की भावना कहीं न कहीं छिपी हुई होती है और वही कपड़ों की ज़ीनत में, बालों की सजावट में, बारीक और शोख़ कपड़ों के चुनाव में और ऐसी-ऐसी छोटी-छोटी बातों तक में अपना असर ज़ाहिर करता है, जिनका बयान मुम्किन नहीं। क़ुरआन ने इन सब के लिए एक शब्द ‘तबर्रूजे जाहिलीया’ इस्तेमाल किया है। हर वह ज़ीनत और हर वह साज-सज्जा, जिसका मक़्सद शौहर के सिवा दूसरों के लिए लज़्ज़ते नज़र बनना हो ‘तबर्रूजे जाहिलीया’ की परिभाषा में आ जाती है। अगर बुर्क़ा भी इसलिए सुन्दर बनाया जाए कि निगाहें उसका मज़ा लें, तो यह भी ‘तबर्रूजे जाहिलीया’ है। इसके लिए कोई क़ानून नहीं बनाया जा सकता, इसका ताल्लुक़ औरत की अपनी अन्तरात्मा से है, उसको ख़ुद ही अपने दिल का हिसाब लेना चाहिए कि कहीं यह नापाक भावना तो छिपी हुई नहीं है। अगर है, तो वह उस हुक्मे ख़ुदा की मुख़ातब है कि ‘इस्लाम से पहले जाहिलियत के ज़माने में जिस बनाव-सिंगार की नुमाइश तुम किया करती थीं, वह अब न करो।’ (सूरा अहज़ाब:३३:...) जो साज-सज्जा हर बुरी नीयत से पाक हो, वह इस्लाम की साज-सज्जा है और जिसमें थोड़ी-सी भी बुरी नीयत शामिल हो, वह जाहिलियत की साज-सज्जा है।

ज़ुबान का फ़ित्ना

मन के शैतान का एक दूसरा एजेंट ज़ुबान है। कितने ही फ़ित्ने हैं, जो ज़ुबान के ज़रिए से पैदा होते और फैलते हैं। मर्द और औरत बात कर रहे हैं, कोई बुरी भावना सामने नहीं है, पर दिल का छिपा हुआ चोर आवाज़ में मिठास, स्वर में लगावट, बातों में घुलावट पैदा किये जा रहा है। क़ुरआन इस चोर को पकड़ लेता है

> 'अगर तुम्हारे मन में ख़ुदा का डर है, तो दबी ज़ुबान से बात न करो कि जिस आदमी के मन में (बद-नीयती) की बीमारी हो, वह तुम से कुछ उम्मीदें करने लगेगा। बात करो तो सीधे-सादे तरीक़े से करो, (जिस तरह इंसान इंसान से बातें किया करता है)' (सूरा अल-अहज़ाब-३३:३२)

यही दिल का चोर है, जो दूसरों के जायज़ या नाजायज़ यौन-संबधों का हाल बयान करने में भी मज़े लेता है और सुनने में भी। इसी मज़े के लिए आशिक़ाना ग़ज़लें कही जाती हैं और इश्क़ व मुहब्बत की कहानियाँ झूठ-सच मिला कर जगह-जगह बयान की जाती हैं और समाज में इनका प्रचार इस तरह होता है, जैसे पोले-पोले आंच लगती चली जाए। क़ुरआन इस पर भी चेतावनी देता है

> 'जो लोग चाहते हैं कि मुसलमानों के गिरोह में बेहयाई का प्रचार हो, उनके लिए दुनिया में भी दर्दनाक अज़ाब है और आख़िरत में भी।'
> (सूरा अन-नूर: २४:१९)

ज़ुबान के फ़ित्ने के और भी बहुत-से विभाग हैं और हर विभाग में दिल का एक न एक चोर अपना काम करता है। इस्लाम ने इन सब का सुराग़ लगाया है और हर एक सचेत किया है। औरत को इजाज़त नहीं कि अपने शौहर से दूसरी औरतों की हालत बयान करे।

‘औरत औरत से (बहुत ज़्यादा) घुले-मिले नहीं। ऐसा न हो कि वह उसकी हालत अपने शौहर से इस तरह बयान करे कि मानो वह ख़ुद उसको देख रहा है।’ (हदीस तिर्मिज़ी)

औरत और मर्द दोनों को इससे मना किया गया है कि अपने निजी यौनाचार का हाल दूसरे लोगों के सामने बयान करें, क्योंकि इससे भी बे-हयाई का प्रचार होता है और दिलों में शौक़ पैदा होता है। (हदीस अबूदाऊद)

जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ाने के दौरान अगर इमाम कोई ग़लती करे, या उसको किसी हादसे पर सचेत करना हो, तो मर्दों को सुब्हानल्लाह कहने का हुक्म है, पर औरतों को हिदायत की गयी है कि सिर्फ़ दस्तक दें, ज़ुबान से कुछ न बोलें। (हदीस अबूदाऊद, बुख़ारी)

आवाज़ का फ़ित्ना

कभी-कभी ज़ुबान ख़ामोश रहती है, पर दूसरी हरकतों से सुनने की क्षमता पर असर डाला जा सकता है। इसका ताल्लुक़ भी नीयत की ख़राबी से है और इस्लाम इस पर रोक लगाता है।

‘और वे अपने पांव ज़मीन पर मारती हुई न चलें कि जो ज़ीनत उन्होंने छिपा रखी है (यानी जो ज़ेवर वे अन्दर पहने हुए हैं) उसका हाल मालूम हो। (यानी झनकार सुनायी दे)’ (सूरा अन-नूर २४:३१)

ख़ुश्बू का फ़ित्ना

ख़ुश्बू भी उन वाहकों में से एक है जो एक दुष्ट मन का सन्देश दूसरे दुष्ट मन तक पहुंचाते हैं। ख़बर पहुंचाने का यह सबसे ज़्यादा सूक्ष्म ज़रिया है, जिसको दूसरे तो हल्का जानते हैं, पर इस्लामी हया का एहसास इतना तेज़ है कि उसकी नाज़ुक तबियत पर यह सूक्ष्म हरकत भी बोझ है। वह एक मुसलमान औरत को इसकी इजाज़त नहीं देती कि ख़ुश्बू में बसे हुए कपड़े पहन कर रास्तों से गुज़रे या महिफ़लों में शिर्कत करे, क्योंकि उसका हुस्न और उसकी ज़ीनत छिपी भी रही, तो क्या फ़ायदा हुआ, उस की ख़ुश्बू तो फ़िज़ा में फैल कर भावनाओं को भड़का रही है

‘नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि ‘जो औरत सुगंध (इत्र,सेंट) लगा कर लोगों के दर्मियान से गुज़रती है, वह आवारा क़िस्म की औरत है।’
(हदीस तिर्मिज़ी)

‘जब तुम में से कोई औरत मस्जिद में जाये, तो ख़ुश्बू न लगाये।’
(हदीस मुअत्ता व मुस्लिम)

‘मर्दों के लिए वह इत्र मुनासिब है, जिसकी ख़ुश्बू खुली हुई और रंग छिपा हुआ हो और औरतों के लिए वह इत्र मुनासिब है जिस का रंग खुला हुआ और ख़ुश्बू छिपी हुई हो।’
(हदीस तिर्मिज़ी, अबूदाऊद)

नंगेपन का फ़ित्ना

सत्र के बारे में इस्लाम ने इंसानी शर्म व हया का जितना सही और मुकम्मल नक़्शा खींचा है, उसका जवाब दुनिया की किसी संस्कृति में नहीं पया जाता। आज दुनिया की सबसे ज़्यादा सभ्य क़ौमों का भी यह हाल है कि उनके मर्दों और उनकी औरतों को अपने जिस्म का कोई हिस्सा खोल देने में तकल्लुफ़ नहीं है। उनके यहां कपड़ा सिर्फ़ ज़ीनत के लिए है, सत्र के छिपाने के लिए नहीं है। पर इस्लाम की निगाह में ज़ीनत से ज़्यादा सत्र की अहमियत है। वह औरत और मर्द दोनों को जिस्म के उन तमाम हिस्सों को छिपाने का हुक्म देता है, जिनमें एक-दूसरे के लिए यौनाकर्षण पाया जाता है। नंगापन एक ऐसी अशिष्टता है, जिसको इस्लामी हया किसी हाल में भी सह नहीं सकती। इस्लाम इसको भी पसंद नहीं करता कि दूसरे तो दूसरे मियां और बीवी भी एक दूसरे के सामने नंगे हों

‘जब तुम में से कोई आदमी अपनी बीवी के पास जाए, तो उसको चाहिए कि सत्र का ध्यान रखे, बिल्कुल गधों की तरह दोनों नंगे न हो जाएं।’ इब्ने माजा

‘हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को कभी नंगा नहीं देखा।’ शिमाइले तिर्मिज़ी

इससे बढ़ कर शर्म व हया यह है कि तंहाई में भी नंगा रहना इस्लाम को गवारा नहीं, इसलिए कि

'अल्लाह ज़्यादा हक़ वाला है कि उससे हया की जाए।'
तिर्मिज़ी

हदीस में आता है कि

'ख़बरदार, कभी नंगे न रहो, क्योंकि तुम्हारे साथ ख़ुदा के फ़रिश्ते लगे हुए हैं, जो तुम से जुदा नहीं होते, उन वक़्तों के अलावा जिनमें तुम ज़रूरत पूरी करते हो या अपनी बीवीयों के पास जाते हो, इसलिए तुम उनसे शर्म करो और उनकी इज़्ज़त का ध्यान रखो ।'
तिर्मिज़ी

इस्लाम की निगाह में वह पहनावा ही नहीं, जिसमें बदन झलके और सत्र खुला हुआ हो

'अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने फ़रमाया कि जो औरतें कपड़े पहन कर भी नंगी ही रहें और दूसरों को रिझाएं और ख़ुद दूसरों पर रीझें और बुख़्ती ऊंट की तरह नाज़ से गरदन टेढ़ी करके चलें, वे जन्नत में हरगिज़ दाख़िल न होंगी और न उस की सुगंध पाएंगी ।'
मुस्लिम

यहां विस्तार में नहीं जाना है सिर्फ़ कुछ मिसालें इस लिए से पेश की गई हैं कि उनके अख़्लाक़ के इस्लामी मानदण्ड और इस्लाम की अख़्लाक़ी स्प्रिट का अन्दाज़ा हो जाए। इस्लाम सोसाइटी के माहौल और उसकी फ़िज़ा को बेहयाई और गन्दगी की तमाम बातों से पाक कर देना चाहता है। इन बातों का सोत इन्सान के अंदर है। बेहयाई और बुराई के कीड़े वहीं पलते हैं और वहीं से उन छोटी-छोटी बातों की शुरूआत होती है, जो आगे चल कर बिगाड़ की वजह बनती हैं। जाहिल इंसान इन्हें हल्का समझ कर अनदेखा कर देता है, पर किसी भी सूझबूझ वाले इंसान की निगाह में दरअसल वही अख़्लाक़ और संस्कृति व सभ्यता को तबाह कर देने वाली ख़तरनाक बीमारियों की जड़ है, इसलिए इस्लाम की अख़्लाक़ी तालीम अंतरात्मा ही में हया का इतना ज़बरदस्त एहसास पैदा कर देना चाहती है कि इंसान ख़ुद अपने आप की जांच करता रहे और बुराई की तरफ़ मामूली से मामूली झुकाव भी अगर पाया जाए, तो उसको महसूस करके वह आप ही आत्मबल से उसकी जड़ें उखाड़ दे।

ताज़ीरी क़ानून

इस्लाम के ताज़ीरी क़ानून का बुनियादी उसूल यह है कि इंसान को राजनीति के शिकंजे में उस वक़्त तक न कसा जाए, जब तक वह संस्कृति की व्यवस्था को बर्बाद करने वाली कोई हरकत अमलन न कर बैठे। पर जब वह ऐसा कर गुज़रे तो उसको हल्की सज़ाएं दे-देकर गुनाह करने और सज़ा भुगतने का आदी बनाना ठीक नहीं है। जुर्म के सबूत की शर्तें बहुत सख़्त रखो।[४५] लोगों को क़ानून की हदों के निशाने पर आने से जहां तक मुम्किन हो, बचाआज,[४६] पर जब कोई आदमी क़ानून के निशाने पर आ जाए, तो उसे ऐसी सख़्त सज़ा दो कि न सिर्फ़ वह ख़ुद इस जुर्म को दोहराने में खुद को असमर्थ पाये, बल्कि दूसरे हज़ारों इन्सान भी जो इस काम की ओर क़दम बढ़ाने वाले हों, इस सबक़ सिखा देने वाली सज़ा को देखकर डर जाएं, क्योंकि क़ानून का मक़सद समाज को जुर्मों से पाक करना है, न यह कि लोग बार-बार जुर्म करें और बार-बार सज़ा भुगतें।

रहन-सहन की व्यवस्था की हिफ़ाज़त के लिए इल्लामी ताज़ीरात ने जिन जुर्मों को सज़ा के क़ाबिल क़रार दिया है, वे सिर्फ़ दो हैं, एक ज़िना, दूसरे क़ज़्फ़ (यानी ज़िना की तोहमत लगाना)

---

45 Jdmhr Ho$ Bñbm_r µH$mZyZ _| Ow_© Ho$ g~yV H$s eV] Am_ Vm¡a go ~hwV g™V h¢, na {µOZm Ho$ Ow_© Ho$ g~yV H$s eV] g~go µÁ`mXm g™V aIr J`r h¢ & Am_ Vm¡a go V_m_ _m_bm| Ho$ {bE Bñbm_r µH$mZyZ {gµ\©$ Xmo Jdmhm| H$mo H$mµ\$s g_PVm h¡, na {µOZm Ho$ {bE H$_ go H$_ Mma Jdmh µOê$ar µH$ama H$a {XE JE h¢ &

46 Z~r (gëb.) H$m Bem©X h¡, "_wgb_mZm| H$mo gµOm go ~MmAmo, Ohm§ VH$ _w{åH$Z hmo & AJa _w{Áa_ Ho$ {bE NwQH$mao H$s H$moB© eŠb hmo, Vmo Cgo Nmo‹S Xmo, Š`m|{H$ Ý`m`mYre H$m _mµ\$ H$aZo _| µJbVr H$aZm Bggo ~ohVa h¡ {H$ dh gµOm XoZo _| µJbVr H$ao &'
{V{_©µOr, A~-dm~wb håX

ज़िना की सज़ा

ज़िना के बारे में हम इससे पहले बयान कर चुके हैं कि अख़्लाक़ी हैसियत से यह काम इंतिहाई पस्ती का नतीज़ा है। जो आदमी ज़िना करता है वह असल में इसका सबूत देता है कि उसकी इंसानियत हैवानियत के प्रभाव से दब चुकी है और वह इंसानी समाज का एक अच्छा अंश बन कर नहीं रह सकता। सामूहिक दृष्टि से यह उन सब से बड़े जुर्मों मेंसे एक है जो इन्सानी संस्कृति की बुनियाद पर ही हमला करते हैं। इन वज्हों से इस्लाम ने इसी को एक दण्डनीय अपराध क़रार दिया है, चाहे इसके साथ कोई दूसरा जुर्म जैसे, बलात्कार, या किसी के अधिकार-हनन जैसा जुर्म उसमें शरीक हो या न हो। क़ुरआन मजीद का हुक्म है कि

> 'ज़िनाकार औरत और ज़िनाकार मर्द, दोनों में से हर एक को सौ कोड़े मारो और क़ानूने इलाही के मामले में तुमको उन पर हरगिज़ दया न रखनी चाहिए, अगर तुम अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो और जब उनको सज़ा दी जाए, तो मुसलमानों में से एक जमाअत उनको देखने के लिए हाज़िर रहे।'
> (सूरा अन्-नूर २४:२)

इस बारे में इस्लामी क़ानून और पाश्चात्य क़ानून में बहुत बड़ा फ़र्क़ है। पाश्चात्य क़ानून ज़िना को अपने आप में कोई जुर्म नहीं समझता। उसकी निगाह में यह काम सिर्फ़ उस वक़्त जुर्म होता है जब कि इसे ज़बरदस्ती किया जाए या किसी ऐसी औरत के साथ किया जाए, जो विवाहिता हो। दूसरे शब्दों में इस क़ानून के नज़दीक ज़िना ख़ुद जुर्म नहीं है, बल्कि जुर्म असल में जब्र या हक़ मार लेना है। इसके ख़िलाफ़ इस्लामी क़ानून की नज़र में यह काम ख़ुद एक जुर्म है और जब्र या दूसरे के हक़ में दख़लंदाज़ी से इस पर एक और जुर्म बढ़ जाता है। इस बुनियादी मतभेद की वजह से सज़ा केबारे में भी दोनों केतरीक़ेअलग-अलग हो जाते है। पाश्चात्य क़ानून, बलात्कार में सिर्फ़ क़ैद की सज़ा काफ़ी समझता है और शादीशुदा औरत केसाथ ज़िना करने पर औरत केशौहर को सिर्फजुर्माने का हक़दार क़रार देता है। यह सज़ा जुर्म को रोकने वाली नहीं, बल्कि इसे, एकतरह से बढ़ावा दिलाने वाली है। इसी लिए उन मुल्कों में जहां यह क़ानून लागू है, ज़िना का जुर्म बढ़ता चला जा रहा है। इसकेमुक़ाबले में इस्लामी क़ानून ज़िना पर ऐसी सख्त सज़ा देता है, जो सोसाइटी को इस जुर्म और ऐसे मुज्रिमों से एकमुद्दत

के लिए पाक कर देती है। जिन मुल्कों में ज़िना पर यह सज़ा दी गयी है, वहां व्यभिचार कभी आम न हुआ। एक बार शरई सज़ा जारी हो जाये, फिर पूरे मुल्क की आबादी पर ऐसा भय छा जाता है कि वर्षों तक कोई आबादी उसे करने का दुस्साहस नही कर सकती। यह मुज्रिमाना रूझान रखनवालों के ज़हन पर एक तरह का मनोवैज्ञानिक (झीूलहेश्रेसळलरश्र) आपरेशन है, जिससे उनकी अपनी मनोवृत्तियों का स्वयं सुधार हो जाता है।

पाश्चात्य लोगों की अन्तरात्मा सौ कोड़ो की सज़ा पर नफ़रत ज़ाहिर करती है। इसकी वजह यह नहीं है कि वह इंसान को जिस्मानी तक्लीफ़ पहुंचाना पसन्द नहीं करते, बल्कि असल वजह यह है कि उनकी नैतिक चेतना का विकास अभी तक अधूरा है। वह ज़िना को पहले सिर्फ़ एक ऐब समझते थे और अब उसे सिर्फ़ एक खेल, एक मनोरंजन समझते हैं, जिससे दो इंसान थोड़ी देर के लिए अपना मन बहला लेते हैं। इसलिए वह चाहते हैं कि क़ानून इस काम पर नर्मी करे और उस वक्त तक कोई पूछ-ताछ न करे, जब तक कि व्याभिचारी दूसरे-व्यक्ति की आज़ादी या उसके कानूनी हक़ों में हस्ताक्षेप न करे। फिर, हस्ताक्षेप को भी वह ऐसा जुर्म समझता है, जिससे बस एक ही आदमी के हक़ों पर असर पड़ता है, इस लिए मामूली सज़ा या जुर्माना उसके नज़दीक ऐसे जुर्म की काफ़ी सज़ा है।

ज़ाहिर है कि जो आदमी ज़िना के प्रति यह विचार रखता हो, वह इस पर सौ कोड़ों की सज़ा को एक ज़ालिमाना सज़ा ही समझेगा, पर जब उसकी नैतिक व सामूहिक चेतना तरक़्क़ी करेगी और उसको मालूम होगा कि ज़िना चाहे रज़ामंदी से हो या ज़बरदस्ती और चाहे ब्याहिता औरत के साथ हो या बिना-ब्याही के साथ, बहरहाल वह एक सामूहिक जुर्म है और पूरी सोसाइटी पर उसके नुक़्सान होते हैं, तो सज़ा के बारे में भी उसका नज़रिया ख़ुद-ब-ख़ुद बदल जाएगा। उसे मानना पड़ेगा कि सोसाइटी को इस नुक़्सान से बचाना ज़रूरी है और चूंकि ज़िना पर उभारने वाली वज्हें इंसान की हैवानी प्रकृति में निहायत गहरी जड़ें रखती हैं और उन जड़ों को सिर्फ़ क़ैद व माली जुर्माने के ज़ोर से नहीं उखाड़ा जा सकता, इस लिए इसकी रोक-थाम करने के लिए सख़्त उपायों को इस्तेमाल किये बिना चारा नहीं। एक आदमी या दो आदमियों को सख़्त जिस्मानी तक्लीफ़ पहुंचा कर लाखों लोंगों को अनगिनत अख़्लाक़ी और समाजी नुक़्सानों से बचा देना इससे बेहतर है कि मुज्रिमों को तक्लीफ़ से बचा कर पूरी क़ौम को ऐसे नुक़्सानों में डाल दिया जाए, जो आने वाली बे-गुनाह नस्लों तक भी पहुचने वाले हों।

सौ कोड़ों की सज़ा को ज़ालिमाना सज़ा क़रार देने की एक वजह और भी है जो पाश्चात्य सभ्यता की बुनियादों पर विचार करने से आसानी से समझ में आ सकती है। जैसा कि पहले बयान किया जा चुका है, उस सभ्यता की शुरूआत ही समाज के मुक़ाबले में व्यक्ति की हिमायत की भावना से हुई है और उस का सारा ख़मीर व्यक्तिगत हक़ों की अतिशयमयी कल्पना से तैयार हुआ है, इसलिए व्यक्ति चाहे समाज पर कितना ही ज़ुल्म करे, पश्चिम वालों को कुछ ज़्यादा नागवारी नहीं होती, बल्कि अक्सर हालातात में वे उसे ख़ुशी से गवारा कर लेते हैं, हां सामाजिक अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए जब व्यक्ति पर हाथ डाला जाता है, तो उसके रौंगटे खड़े होने लगते हैं औंर उस की सारी हमदर्दी समाज के बजाए व्यक्ति के साथ होती है। इसके अलावा सारी जाहिलियत वालों की तरह पश्चिमी जाहिलियत के मानने वालों की भी ख़ास ख़ुसूसियत यह है कि वे बुद्धिसंगत बातों के बजाय महसूस हो सकने वाली बातों को ज़्यादा अहमियत देते हैं १ जो नुक़्सान एक व्यक्ति पर होता है, वह चूंकि सीमित शक्ल में महसूस तौर पर उनके सामने आता है, इसलिए वे उसे एक बड़ा मामला समझते हैं, इस के ख़िलाफ़ वे उस नुक़्सान की अहमियत को महसूस नहीं कर सकते जो बड़े पैमाने पर तमाम सोसाइटी और उसकी अगली नस्लों को पहुंचता है क्योंकि उस नुक़सान की व्यापकता महसूस नहीं होती।

क़ज़्फ़ की सज़ा

ज़िना के जो नुक़्सान हैं, उन्हीं से मिलते-जुलते नुक़्सान ज़िना के झूठे आरोप(क़ज़्फ़)के भी हैं। किसी शरीफ़ औरत पर ज़िना की झूठी तोहमत लगाना मात्र उसी एक के लिए बदनामी की वजह नहीं, बल्कि इस से ख़ानदानों में दुश्मनी फैलती है, ख़ानदानकी विशुद्धता पर शक होते हैं, मियां-बीवी के ताल्लुक़ात में ख़राबी उत्पन्न होती है और एक आदमी सिर्फ़ एक बार ज़ुबान हिला कर बीसियों इंसानों को वर्षों के लिए दु:ख व क्षोभ में डाल देता है। क़ुरआन ने इस जुर्म के लिए भी सख़्त सज़ा तज्वीज़ की है -

'और जो लोग पाक-दामन औरतों पर इलज़ाम लगायें, फिर चार गवाह उसके सबूत में पेश न करें, उसको अस्सी कोड़े लगाओ और आगे कभी उनकी गवाही क़ुबूल न करो। ऐसे लोग खुद ही बदकार हैं।' (सूरा - अन-नूर २४:४)

रोक-थाम के उपाय

इस तरह इस्लाम का फ़ौजदारी क़ानून अपनी सियासी ताक़त से एक ओर तो बदकारी को ज़बरदस्ती रोक देता है और दूसरी ओर समाज के सज्जनों को बद-नियत लोगों की बद-ज़ुबानी से भी बचा लेता है। इस्लाम की अख़्लाक़ी तालीम इंसान को भीतर से ठीक रखती है, ताकी उसमें बदी और गुनाह की ओर रूझान ही पैदा न हो और उसका ताज़ीरी क़ानून उस को बाहर से ठीक करता है, ताकि अगर नैतिक प्रशिक्षण के अधूरे रह जाने से बुरे रूझान पैदा हों और व्यावहार में आने लगें, तो उनको ज़बरदस्ती रोक दिया जाए। इन दोनों उपायों के दर्मियान कुछ और उपाय इस मक़सद से अपनाये गये हैं कि अन्दरूनी सुधार की अख़्लाक़ी तालीम के लिए मददगार हों। इन उपायों से रहन-सहन की व्यवस्था को इस तरह ठीक किया गया है कि नैतिक प्रशिक्षण की ख़राबियों से जो कमज़ोरियां समाज के व्यक्तियों में बाक़ी रह जाएं, उनको तरक़्क़ी करने और अमली जामा पहनने का मौका ही न मिल सके। समाज में एक ऐसा माहौल पैदा हो जाए, जिसमें बुरे रूझानों को बढ़ाने वाला वातावरण न मिले, भड़काने वाले आन्दोलन न हों, यौन-विकार की सामग्री इंतिहाई हद तक कम हो जाए और ऐसी तमाम शक्लों की रोक-थाम हो जाए, जिनसे संस्कृति-व्यवस्था के बिखराव की संभावना हो।

अब हम विस्तार से इन उपायों में से एक-एक को बयान करते हैं।

पहनावा और सत्र के हुक्म

रहन-सहन के हुक्मों के सिलसिले ने इस्लाम का पहला काम यह है कि उसने नंगेपन की जड़ें काट दीं और मर्दों और औरतों के लिए सतर (छिपाने की जगहें) की हदें तै कर दीं। इस मामले में अरब जाहिलियत का जो हाल था, आज-कल की सभ्यतम कौमों का हाल उस से कुछ अलग नहीं है। वे एक दूसरे के सामने बे-

तकल्लुफ़ नंगे हो जाते थे।[४७] नहाने और पाख़ाना-टट्टी के मौक़े पर परदा करना उसके नज़दीक ग़ैर-ज़रूरी था। काबे का तवाफ़[*] बिल्कुल नंगे हो कर कर किया जाता था और इसे एक अच्छी इबादत समझा जाता था।[४८] औरतों तक तवाफ़ के वक़्त नंगी हो जाती थीं।[४९] उनकी औरतों का पहनावा ऐसा था, जिसमें सीने का कुछ हिस्सा खुला रहता था और बाज़ू, कमर और पिंडलियों के भी कुछ हिस्से खुल जाते थे।[५०] बिल्कुल यही स्थिति आज यूरोप, अमरीका और जापान की भी है और पूर्वी देशों में भी रहन-सहन की कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है, जिसमें छिपाने-खोलने की हदें बाक़ायदा मुक़र्रर की गयी हों।

इस्लाम ने इस बारे में पहली बार इंसान को सबक़ सिखाया। उसने बताया कि-

---

47 hXrg _| Am`m h¡ hµOaV gm¡a {~Z _µIa_m (a{µO.) EH nËWa CRmE hwE bm aho Wo$& amñVo _| Vh~ÝX Iwb H$a {Ja n‹Sm Am¡a dh Bgr hmb _| nËWa CRm`o Mbo Am`o & hwµOya gëb. Zo XoIm, Vmo µ\$a_`m {H OmAmo, nhbo AnZm {Oñ_ Tm§H$mo Am¡a Z§Jo Z {\$am H$amo &

* Vdmµ\ = n[aH$Œ_m, \o$ao bJmZm &

48 BãZo Aã~mg, _wOm{hX, VmD$g Am¡a µOmohar H$s [adm`V h¡ {H H$m~o H$m Vdmµ\ Z§JonZ H$s hmbV _| {H$`m OmVm Wm &

49 _wpñb_ {H$Vm~wÎm µâgra _| Aa~ H$s `h añ_ ~`mZ H$s J`r h¡ {H EH Am¡aV Z§Jr hmo H$a Vdmµ\ H$aVr, {\$a _m¡OyX bmoJm| go H$hVr {H$, "H$m¡Z _wPo EH H$n‹Sm XoVm h¡ {H _¡¨ Cg go AnZm ~XZ Tm§H$y ?' Bg Vah _m§JZo dmbr H$mo H$n‹Sm XoZm EH gdm~ H$m H$m_ g_Pm OmVm Wm &

50 Vµâgrao-H$~ra, Am`V "db-`{µÁa~-Z {~Iw_w[ahZ-Z Abm Ow`y{~{hZ-Z'

'ऐ आदम की औलाद ! अल्लाह ने तुम पर लिबास इसी लिए उतारा है कितुम्हारे जिस्मों को ढांकेऔर तुम्हारे लिए ज़ीनत का साधन हो।'

इस आयत के मुताबिक़ जिस्म ढांकने को हर मर्द और औरत के लिए फ़र्ज़ कर दिया गया। नबी (सल्ल.) ने सख़्त हुक्म दिये कि कोई आदमी किसी के सामने नंगा न हो।

'उस पर लानत है जो अपने भाई सत्र पर नज़र डाले।'

जस्सास : अहकामुल क़ुरआन

'कोई मर्द किसी मर्द को नंगा और कोई औरत किसी औरत को नंगी न देखे।' मुस्लिम

'खुदा की क़सम! मैं आसमान से फेंका जाऊं, और मेरे दो टुकड़े हो जाएं, यह मेरे लिए ज़्यादा बेहतर है, इसकेमुक़ाबले में किमैं किसी के गुप्तांग को देखूं या कोई मेरे गुप्तांग को देखे।'
अल-मब्सूत : किताबुल इस्तेहसान

'ख़बरदार! कभी नंगे न हो, क्योंकि तुम्हारे साथ वह है, जो तुमसे कभी जुदा नहीं होता, अलावा पाख़ाना-टट्टी और सम्भोग केवक़्त के।' तिर्मिज़ी

'जब तुम में से कोई अपनी बीवी केपास जाए, तो उस वक़्त भी सत्र ढांकेऔर बिल्कुल गधों की तरह नंगा न हो जाए।'

इब्ने माजा

एकबार प्यारे नबी (सल्ल.) जक़ात केऊंटों की चारागाह में तशरीफ़ले गये, तो देखा किउनका चरवाहा जंगल में नंगा लेटा है। आपने उसी वक़्त उसे निकाल दिया और फ़रमाया, 'जो आदमी बे-शर्म है, वह हमारे किसी काम का नहीं।'

मर्दों केलिए सत्र की हदें

इन हुक्मों के साथ औरतों और मर्दों के लिए जिस्म ढांकने की हदें भी अलग-अलग मुक़र्रर की गयीं। शरीअत की परिभाषा में जिस्म केउस हिस्से को सतर कहते हैं, जिसका ढांकना फ़र्ज़ है। मर्दों के लिए नाभि(नाफ़) और घुटने के

बीच का हिस्सा 'सत्र' क़रार दिया गया और हुक्म दिया गया कि उसे किसी के सामने न खोलें और न किसी दूसरे आदमी के उस हिस्से पर नज़र डालें।

'जो कुछ घुटने के ऊपर है, वह छिपाने के लायक़ है और जो कुछ नाफ़ से नीचे है, वह छिपाने के लायक़ है।' दारे क़ुत्नी

'मर्द के लिए नाफ़ से घुटने तक का हिस्सा छिपाने के लायक़ है।'

हदीस मब्सूत

'अपनी रान को किसी के सामने न खोल और न किसी ज़िंदा आदमी या मुर्दा आदमी की रान पर नज़र डाल।'

तफ़्सीरे कबीर

यह हुक्म आम है जिससे बीवियों के सिवा और कोई अपवाद नहीं। चुनांचे हदीस में है

'अपने सतर की हिफ़ाज़त करो अलावा अपनी बीवियों के और उन लौंडियों के जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हैं।'

जस्सास अहकामुल क़ुरआन

औरतों के लिए सत्र की हदें

औरतों के लिए सत्र की हदें इससे ज़्यादा फैली हुई हैं। उनको हुक्म दिया गया है कि अपने चेहरे और हथेलियों के सिवा तमाम जिस्म को तमाम लोगों से छिपायें। इस हुक्म में बाप, भाई और तमाम रिश्तेदार मर्द शामिल हैं और शौहर के सिवा कोई मर्द इसका अपवाद नहीं है।

'नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि 'किसी औरत के लिए, जो अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखती हो, जायज़ नहीं कि वह अपना हाथ इससे ज़्यादा खोले, यह कह कर आपने अपनी कलाई के आधे हिस्से पर हाथ रखा।'

इब्ने जरीर

'जब औरत बालिग़ हो जाए, तो उस के जिस्म का कोई हिस्सा नज़र न आना चाहिए चेहरे और कलाई के जोड़ तक हाथ के।'-

हदीस अबूदाऊद

हज़रत आइशा(रज़ि.) फ़रमाती हैं कि मैं अपने भतीजे अब्दुल्लाह-बिन-तुफ़ैल के सामने ज़ीनत के साथ आयी, तो नबी(सल्ल.) ने इसे नापसन्द किया। मैंने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के रसूल ! यह तो मेरा भतीजा है। हुज़ूर सल्ल. ने फ़रमाया

'जब औरत बालिग़ हो जाए, तो उसके लिए जायज़ नहीं कि अपने जिस्म में से कुछ ज़ाहिर करे सिवाए चेहरे के और सिवाए इसके। यह कह कर आपने अपनी कलाई पर इस तरह हाथ रखा कि आप की पकड़ की जगह और हथेली के बीच सिर्फ़ एक मुट्ठी भर जगह बाक़ी थी।'

हज़रत अस्मा-विन्त-अबूबक्र(रज़ि.) जो हुज़ूर(सल्ल.) की साली थीं, एक बार आपके सामने बारीक लिबास पहन कर आयीं, इस हाल में कि जिस्म अन्दर से झलकरहा था। हुज़ूर सल्ल. ने तुरन्त नज़र फेर ली और फ़रमाया

'ऐ अस्मा ! जब औरत बालिग़ हो जाए, तो दुरूस्त नहीं कि उसके जिस्म में से कुछ देखा जाए अलावा इसके और इसके। यह कह कर आपने अपने चेहरे और हथेलियों की ओर इशारा किया।'
मुअत्ता इमाम मालिक

हफ़्सा-बिन्त-अब्दुर्रहमान हज़रत आइशा(रज़ि.) की ख़िदमत में हाज़िर हुयीं और वह एक बारीक दोपट्टा ओढ़े हुए थीं। हज़रत आइशा(रज़ि.) ने उसको फाड़ दिया और एक मोटी ओढ़नी उन पर डाली।
मुअत्ता इमाम मालिक

'नबी (सल्ल.) का इर्शाद है कि 'लानत है उन औरतों पर जो लिबास पहन कर भी नंगी की नंगी रहें।'

'हज़रत उमर रज़ि. का इर्शाद है कि अपनी औरतों को ऐसे कपड़े न पहनाओ, जो जिस्म पर इस तरह चुस्त हों कि सारे जिस्म की बनावट नुमायां हो जाए।' अल-मब्सूत

इन तमाम रिवायतों से मालूम होता है कि चेहरे और हाथों के सिवा औरत का पूरा जिस्म सत्र में दाख़िल है, जिसे अपने घर में अपने क़रीबी रिश्तेदारों से भी छिपाना उस पर वाजिब है। वह शौहर के सिवा किसी के सामने अपने सत्र नहीं खोल सकती, चाहे वह उसका बाप, भाई या भतीजा ही क्यों न हो, यहां तक कि वह ऐसा बारीक लिबास भी नहीं पहन सकती, जिसमें सत्र स्पष्ट होता हो।

इस बारे में जितने हुक्म हैं, वे सब जवान औरत के लिए हैं। सत्र हुक्म उस वक़्त से लागू होते हैं जब औरत बालिग़ होने के क़रीब पहुंच जाए और उस वक़्त तक लागू रहते हैं जब तक उसमें यौन-आकर्षण बाक़ी रहे। इस उम्र के गुज़र जाने के बाद उनमें कमी कर दी जाती है। अतः क़ुरआन में है-

'और बड़ी-बूढ़ी औरतें, जो निकाह की उम्मीद नहीं रखतीं, अगर अपने दोपट्टे उतार कर रखा करें, तो उसमें कोई हरज नहीं, बशर्ते-कि अपनी ज़ीनत का दिखाना मक़्सूद न हो और अगर वे एहतियात रखें, तो उनके लिए यह बेहतर है।'

सूरा अन्-नूर २४:६०

यहाँ कमी की वजह साफ़ बयान कर दी गयी है। निकाह की उम्मीद बाक़ी न रहने से ऐसी उम्र मुराद है, जिसमें यौन-भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और कोई आकर्षण भी बाक़ी नहीं रहता। फिर भी अधिक सावधानी के तौर पर यह शर्त लगा दी गयी कि ज़ीनत का दिखावा मक़्सद न हो, यानी अगर यौन-इच्छा की एक चिंगारी भी सीने में बाक़ी हो, तो दोपट्टा वग़ैरह उतार कर बैठना दुरूस्त नहीं। कमी सिर्फ़ उन बूढ़ियों के लिए है, जिनके बुढ़ापे ने लिबास की क़ैदों से बे-परवा कर दिया को और जिनकी ओर आदर के सिवा दूसरी किसी भावना से नज़र उठने की कोई संभावना न हो। ऐसी औरतें घर में बग़ैर दोपट्टे और ओढ़नी के भी रह सकती हैं।

इजाज़त चाहना

इसके बाद दूसरी हद यह क़ायम की गयी कि घर के आदमियों कोबग़ैर इत्तिला अचानक घरों में दाख़िल होने से मना कर दिया, ताकि औरतों को किसी ऐसे हाल में न देखें, जिसमें मर्दों को नहीं देखना चाहिए-

'और जब तुम्हारे लड़के जवानी की उम्र को पहुंच जाएं, तो चाहिए कि इसी तरह इजाज़त ले कर घर में आएं, जिस तरह उनके बड़े उनसे पहले इजाज़त ले कर आते थे।'

(सूरा-अन-नूर २४:५९)

यहां भी हुक्म की वजह पर रोशनी डाली गयी है। इजाज़त लेने कीउम्र उसी वक़्त शुरू होती है, जबकि यौन-भावना पैदा हो जाए। इससे पहले इजाज़त मांगना ज़रूरी नहीं।

इस के साथ ग़ैर लोगों को भी हुक्म दिया है कि किसी के घर में बग़ैर इजाज़त दाख़िल न हों -

'ऐ ईमान वालो ! अपने घरों के सिवा दूसरे घरों में दाख़िल न हो, जब तक कि घर के रहने वालों से पूछ न लो और जब दाख़िल हो, तो घर वालों को सलाम करो।'

(सूरा-अन-नूर २४:२७)

असल मक़सद घर के अन्दर और घर के बाहर के दर्मियान हदबन्दी करना है, ताकि अलनी घरेलू ज़िंदगी में औरतें और मर्द अजनबियों की नज़रों से बचे रहें। अरब वाले, शुरू में इन हुक्मों की वजह न समझ सके, इस लिए वे कभी-कभी घर के बाहर से घरों में झांक लेते थे। एक बार ख़ुद हुज़ूर (सल्ल.) के साथ भी यह वाक़िया पेश आया। आप अपने कमरे में तशरीफ़ रखते थे। एक आदमी ने ऱावदान में से झांका। इस पर आपने फ़रमाया-'अगर मुझे मालूम होता कि तू झांक रहा है, तो मैं तेरी आंखों में कोई चीज़ चुभो देता। इजाज़त मांगने का हुक्म तो नज़रों से बचाने के लिए ही दिया गया है। [५१] इसके बाद आपने एलान

---

[51] ~wµImar : ~m~ Ab-BñVrµOmZ {_b A-O{bb ~-g[a

फरमाया, ‘अगर कोई आदमी किसी के घर में बग़ैर इजाज़त देखे, तो घर वालों को हक़ है कि उसकी आंख फोड़ दें।’[५२]

फिर अजनबी मर्दों को हुक्म दिया गया कि किसी दूसरे के घर से कोई चीज़ मांगनी हो, तो घरों में न चले जाएं, बल्कि बाहर परदे की ओट से माँगें।

‘और जब तुम औरतों से कोई चीज़ मांगो तो परदे की ओट से मांगो। इसमें तुम्हारे दिलों के लिए भी ज्यादा पाकीज़गी है और उनके दिलों के लिए भी।’ (सूरा-अल-अहज़ाब ३३:५३)

यहां भी हदबन्दी के मक़्सद पर ‘ज़ालिकुम अत-हरू लिक़ुलूबिकुम व क़ुलूबिहन-न’ से पूरी रोशनी डाल दी गयी है। औरतों और मर्दों को यौनपूण रूझानों और प्रेरणाओं से बचाना ही असल मक़्सद है और ये हद-बन्दियां इसी लिए की जा रही हैं कि औरतों और मर्दों के बीच घोल-मेल और बे-तकल्लुफ़ी न होने पाये।

ये हुक्म सिर्फ़ अपरिचितों के ही लिए नहीं, बल्कि घरेलू नौकरों के लिए भी हैं। रिवायत में आया है कि हज़रत बिलाल(रज़ि.) या हज़रत अनस(रज़ि.) ने सय्यिदा फ़ातमा (रज़ियल्लाहू अन्हा) से आपके किसी बच्चे को मांगा, तो आपने परदे के पीछे से हाथ बढ़ा कर दिया,[५३] हालांकि ये दोनों, नबी (सल्ल.) के खास खादिम थे और आपके पास घरवालों की तरह रहते थे।

एकांत और छूने-छुवाने पर रोक

तीसरी हदबन्दी यह की गयी कि शौहर के सिवा कोई मर्द किसी स्त्री के पास न अकेले रहे और न उसके जिस्म को छुए, चाहे वह क़रीबी रिश्तेदार ही क्यों न हो -

---

52 _w{ñb_ : ~m~ Vhar_wb-Z-µO[a µ\$s ~¡{VµJ¡[ahr
53 \$Ëhwb µH$Xra

‘उक़्बा-बिन-आमिर(रज़ि.) से रिवायत है कि हुज़ूर(सल्ल.) ने फ़रमाया: ख़बरदार औरतों के पास एकांत में न जाओ। अंसार में से एक आदमी ने अर्ज़ किया, ‘ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल.)! देवर और जेठ के बारे में क्या इर्शाद है? फ़रमाया, वह तो मौत है।’[५४]

‘शौहरों की ग़ैर-मौजूदगी में औरतों के पास न जाओ, क्योंकि शैतान तुम में से किसी के अन्दर खून की तरह गर्दिश कर रहा है।’[५५]

‘अम्र-बिन-आस की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने हमको औरतों के पास उनके शौहरों की इजाज़त के बग़ेर जाने से मना फ़रमाया।’[५६]

‘आज के बाद कोई आदमी किसी औरत के पास उसके शौहर की ग़ैर-हाज़िरी में न जाये, जब तक उसके साथ एक-दो आदमी न हों।’ -मुस्लिम

ऐसे ही हुक्म छूने-छुवाने के बारे में है -

‘हुज़ूर(सल्ल.) ने फ़रमाया, जो आदमी किसी ऐसी औरत का हाथ छुएगा, जिसके साथ उसके जायज़ ताल्लुक़ात न हों, उसकी हथेली पर क़ियामत के दिन अंगारा रखा जाएगा।’

- तक्मला फ़ात्हुल क़दीर

हज़रत आइशा (रज़ि.) का बयान है कि नबी(सल्ल.) औरतों से सिर्फ़ ज़ुबनी इक़रार ले कर बैअत लिया करते थे, उनके हाथ अपने हाथ में न लेते थे। आपने कभी किसी ऐसी औरत के हाथ को नही छुआ, जो आपके निकाह में न हो।[५७]

अमीमा-बिन्त-रक़ीक़ा का बयान है कि मैं कुछ औरतों के साथ हुज़ूर(सल्ल.) से बैअत करने हाज़िर हुई। आपने हमसे इक़रार लिया कि शिर्क,चोरी, ज़िना, बोहतान तराशी, झूठ और नबी की नाफ़रमानी से बचना।

---

54 {V{_©µOr, ~wµImar-_w{ñb_,
55 {V{_©µOr,
56 {V{_©µOr,
57 ~wµImar, _w{ñb_,

जब इक़रार हो चुका तो हमने अर्ज़ किया कि तशरीफ़ लाइए, ताकि हम आपसे बैअत करें। आपने फ़रमाया, मैं औरतों से हाथ नहीं मिलाता, सिर्फ़ ज़ुबानी इक़रार काफ़ी है।[५८]

ये हुक्म भी सिर्फ़ जवान औरतों के लिए हैं। बूढ़ी औरतों के साथ अकेले में बैठना जायज़ है और उनके छूने पर भी रोक नहीं। हज़रत अबूबक्र (रज़ि.) के बारे में लिखा गया है कि वह एक क़बीले में जाते थे, जहां उन्होंने बचपन में दूध पिया था और आप उस क़बीले की बूढ़ी औरतों से मुसाफ़ा करते थे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि.) के बारे में यह रिवायत है कि वह एक बूढ़ी औरत के पांव और सर दबवाया करते थे। यह फ़र्क़ जो बूढ़ी और जवान औरतों के दर्मियान किया गया है, खुद इस बात की दलील है कि असल में मर्द व औरत ऐसे मेल-मिलाप को रोकना मकसद है, जो फ़ित्ने की वजह बन सकता हो।

महरमों और ग़ैर-महरमों के बीच फ़र्क़

ये तो वे हुक्म थे जिनमें शौहर के सिवा तमाम मर्द शामिल हैं, चाहे वह महरम हों या ग़ैर-महरम। औरत उनमें से किसी के सामने अपना सत्र यानी चेहरे और हाथ के सिवा जिस्म का कोई हिस्सा नहीं खोल सकती। बिल्कुल उसी तरह जिस तरह मर्द किसी के सामने अपना सत्र यानी नाफ़ और घुटने के दर्मियान का हिस्सा नहीं खोल सकता। सब मर्दों को घर में इजाज़त लेकर दाखिल होना चाहिए और उनमें से किसी का औरत के पास अकेले में बैठना या उसके जिस्म को हाथ लगाना जायज़ नहीं।[५९]

---

[58] ZgB©, BãZo _mOm,

[59] {Oñ_ H$mo hmW bJmZo Ho _m_b| _| _ha_m| Am¡a µJ¡a _ha_ _Xm] Ho X{_©`mZ H$mµ\$s µ\$µH© h¡ & _X© AnZr ~hZ H$m hmW nH$‹S H$a Cgo gdmar na M‹Tm `m CVma gH$Vm h¡ & µOm{ha ~mV h¡ {H `h ~mV {H$gr µJ¡a _X© Ho {bE Zht h¡ & hwµOya O~ H$^r gµ\$a go dmng hmoVo Vmo AnZr ~oQr hµOaV µ\$mV_m H$mo Jbo bJm H$a ga H$m ~mogm boVo & Bgr Vah hµOaV A~y~HŒ (a{µO.) AnZr ~oQr hµOaV AmBem(a{µO.) Ho {ga H$m ~mogm boVo Wo &

इसके बाद महरमों और ग़ैर महरमों के बीच फ़र्क़ किया जाता है। क़ुरआन और हदीस में तफ़्सील के साथ बताया गया है कि आज़ादी और बे-तकल्लुफ़ी के कौन से दर्जे ऐसे हैं जो सिर्फ़ महरम मर्दों के सामने बरते जा सकते हैं और ग़ैर-महरम मर्दों के सामने बरतने जायज़ नहीं हैं। यही चीज़ है जिसको आम तौर से परदा या परदा या हिजाब कहा जाता है।

परदे के हुक्म

क़ुरआन मजीद की जिन आयतों में परदे के हुक्म बयान हुए हैं उन का अनुवाद निम्नलिखित है -

'ऐ नबी ! मोमिन मर्दो से कहो कि अपनी नज़रे नीची रखें और अपनी पाकदामनी की हिफ़ाज़त करें, यह उनके लिए ज़्यादा पाकीज़गी का तरीक़ा है । यक़ीनन अल्लाह जानता है, जो कुछ वे करते हैं और मोमिन औरतों से कहो कि अपनी निगाहें नीची रखें और अपनी पाकदामनी की हिफ़ाज़त करें और अपनी ज़ीनत को ज़ाहिर न करें, सिवाए उस ज़ीनत के जो खुद ज़ाहिर हो जाए और वे अपने सीनों पर अपनी ओढ़नियों के बुग्गल मार लिया करें और अपनी ज़ीनत को ज़ाहिर न करें, मगर इन लोगों के सामने शौहर, बाप, ससुर, बेटे, भाई, भतीजे, भांजे, अपनी औरतें, अपने ग़ुलाम, वे मर्द ख़िदमतगार, जो औरतों से कुछ मतलब नहीं रखते, वे लड़के, जो अभी औरतों की परदे की बातों से आगाह नहीं हुए हैं (साथ ही उनको हुक्म दो कि) वे चलते वक़्त अपने पांव ज़मीन पर इस तरह न मारतीचलें कि जो ज़ीनत उन्होंने छिपा रखा है, (आवाज़ के ज़रिए से) वह ज़ाहिर हो।'

(सूरा-अन-नूर २४:३०-३१)

'ऐ नबी की बीवीयो ! तुम कुछ आम औरतों की तरह तो हो नहीं, अगर तुम्हें परहेज़गारी मंज़ूर है, तो दबी ज़ुबान से बात न करो कि जिस आदमी के दिल में कोई ख़राबी है, वह तुम से कुछ उम्मीदें करने लगे । बात सीधी-सादी करो और अपने घरों में जमी बैठी रहो और जाहिलियत के अगले ज़माने के-से बनाव-सिंगार न दिखाती फिरो।'

(सूरा-अन-अहज़ाब ३३:३२-३३)

'ऐ नबी! अपनी बीवीयों और बेटियों और मुसलमानों की औरतें से कह दो कि अपने ऊपर अपनी चादरों के घूंघट डाल लिया करें। इससे

उम्मीद की जाती है कि वे पहचानी जाएंगी(कि वे नेक औरतें हैं) और उनको सताया न जायेगा।'

(सूरा-अन-अहज़ाब ३३:)

इन आयतों पर विचार कीजिए। मर्दों को तो सिर्फ़ इतनी ताकीद की गयी है कि अपनी निगाहें नीची रखें और बेहयाई की चीजों से अपने अख़्लाक़ की हिफ़ाज़त करें, पर औरतों को मर्दों की तरह इन दोंनों चीज़ों का हुक्म भी दिया गया है और फ़िर रहन-सहन और बर्ताव के बारे में कुछ और हिदायतें भी दी गयी हैं। इसका साफ़ मतलब यह है कि उनके अख़्लाक़ की हिफाज़त के लिए निगाहों को नीची रखने और गुप्तांगों की हिफ़ाज़त करने की कोशिश भी काफ़ी नहीं है, बल्कि कुछ और पाबन्दियों की भी ज़रूरत है। अब हम को देखना चहिए कि इन हिदायतों को नबी(सल्ल.) और आप के साथियों(सहाबा) ने इस्लामी रहन-सहन में किस तरह लागू किया है और उनकी कथनी और करनी से इन हिदायतों की सार्थकता और व्यवहार पर क्या रोशनी पड़ती है।

निगाहें नीची रखना

सबसे पहला हुक्म जो मर्दों और औरतों को दिया गया है, वह यह है कि निगाहें नीची रखो।

निगाहें नीची रखने का असल मक़्सद यह नहीं है कि लोग हर वक़्त नीचे ही देखते रहें और कभी नज़र ही न उठाएं। मक्सद असल में यह है कि उन चीज़ों से परहेज़ करो, जिसको हदीस में आंखों का ज़िना कहा गया है। अजनबी औरतों के हुस्न और अजनबी मर्दों को घूरना औरतों के लिए फ़ित्ने की वजह है। बिगाड़ की शुरूआत फ़ितरी तौर पर और आदत के एतबार से यहीं से होती है, इसलिए सबसे पहले इसी दरवाज़े को बन्द किया गया है और 'नज़रें नीची रखने' का यही मतलब है। इसी को नज़र बचाना भी कह सकते हैं।

यह ज़ाहिर है कि जब इंसान आंखें खोल कर दुनिया में रहेगा तो सब ही चीज़ों पर उसकी नज़र पड़ेगी। यह तो मुम्किन नहीं है कि कोई मर्द किसी औरत को और कोई औरत किसी मर्द को कभी देखे नहीं, इसी लिए प्यारे नब (सल्ल.) ने फ़रमाया कि अचानक नज़र पड़ जाये तो माफ़ है, हां जिस चीज़ से मना किया

गया है, वह यह है किएकनिगाह में जहां तुम को हुस्न महसूस हो, वहां दोबारा नज़र दौड़ाओ और उसको घूरने की कोशिश करो।

‘हज़रत जरीर(रज़ि.) कहते है किमैं ने अल्लाह केरसूल (सल्ल.) से पूछा कि अचानक नज़र पड़ जाए तो क्या करूं? आपने फ़रमाया कि नज़र फेर लो।’ -अबूदाऊद

‘हज़रत बुरैदा(रज़ि.)की रिवायत है किअल्लाह केरसूल (सल्ल.) ने हज़रत अली (रज़ि.) से फ़रमाया, ऐ अली ! एकनज़र केबाद दूसरी नज़र न डालो। पहली नज़र तुम्हें माफ़है, पर दूसरी नज़र की इजाज़त नहीं।’ --अबूदाऊद

नबी सल्ल. ने फ़रमाया, जो आदमी किसी अजनबी औरत की सुन्दरता पर वासना भरी नज़र डालेगा, क़ियामत केदिन उसकी आँखों में पिघला हुआ सीसा डाला जाएगा।
तक्मला फ़त्हुल क़दीर

पर कुछ मौक़ेऐसे भी आते हैं, जिनमें परायी औरत को देखना ज़रूरी हो जाता है, जेसे कोई बीमार औरत किसी डाक्टर केइलाज में हो या कोई औरत किसी मुक़दमे में क़ाज़ी केसामने गवाह की हैसियत से या फ़रीक़की हैसियत से पेश हो या किसी ऐसी जगह कोई औरत फंस गयी हो, जहां आग लगी हो या पानी में डूब रही हो या उसकी जान या आबरूकिसी ख़तरे में फंस गयी हो, ऐसी शक्लों में चेहरा तो दूर की बात, ज़रूरत पड़ने पर सत्र को भी देखा जा सकता है बल्कि डूबती हुई या जलती हुई औरत को गोद में उठा कर लाना भी सिर्फ़जायज़ नहीं, फ़र्ज़ है। शरीअत बनाने वाले--अल्लाह व रसूल---(शारेअ़) का हुक्म है ऐसी शक्लों में जहां तकमुम्किन हो, अपनी नीयत को पाकरखो, लेकिन इंसानी तक़ाज़ों से अगर भावनाओं में कोई थोड़ी-सी हल-चल पैदा हो जाए, तब भी कोई गुनाह नहीं, क्योंकिऐसे देखने और ऐसे छूने केलिए ज़रूरतपैदा हों हुई है और प्रकृति केतक़ाज़ों को बिल्कुल रोकदेने पर इंसान क़ुदरत नहीं रखता।[६०]

---

[60] Bg {df` na g{dñVma OmZH$mar Ho {bE Xo{IE "Vµâgrao B_m_ amµOr' Am`V "µHw$b {bb²-_wA{_Zr-Z `µJµwÁµOy {_Z Aãgm[a{h_,' Oñgmg: AhH$m_wb µHw$aAmZ, Bgr Am`V H$s Vµâgra

इसी तरह परायी औरत को निकाह के लिए देखना और तफ़्सीली नज़र के साथ देखना न सिर्फ़ जायज़ है, बल्कि हदीसों में इसका हुक्म आया है और ख़ुद नबी (सल्ल.) ने इस ग़रज़ के लिए औरत को देखा है।

VŠ_bm µ\$Ëhwb µH$Xra, µ\ñb {µ\$b dV-{` dZ-Z-µOra db hw{ëZ, Ab-_ãgyV, {H$Vm~wb BñVohñgmZ

'मुग़ीरह-बिन-शोबा (रज़ि.) से रिवायत है कि उन्होंने एक औरत को निकाह का पैग़ाम दिया। नबी (सल्ल.) ने उनसे फ़रमाया कि उसको देख लो, क्योंकि यह तुम दोनों के दर्मियान मुहब्बत और मेल-जोल पैदा करने के लिए सबसे ज़्यादा मुनासिब होगा।'

तिर्मिज़ी

'सह्ल-बिन-साद(रज़ि.) से रिवायत है कि एक औरत प्यारे नबी (सल्ल.) के पास हाज़िर हुई और बोली कि मैं अपने आपको हुज़ूर (सल्ल.) के निकाह में देने के लिए आयी हूं। इस पर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने नज़र उठायी और उस को देखा।'

बुख़ारी

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि.) का बयान है कि मैं नबी (सल्ल.) के पास बैठा था। एक आदमी ने हाज़िर हो कर अर्ज़ किया कि मैं ने अंसार में से एक औरत के साथ निकाह का इरादा किया है। हुज़ूर (सल्ल.) ने पूछा, क्या तूने उसे देखा है? उसने अर्ज़ किया, नहीं। आपने फ़रमाया, जा और उसको देख ले, क्योंकि अंसार की आंखों में आम तौर से कुछ ऐब होता है।'

मुस्लिम

हज़रत-जाबिर-बिन अब्दुल्लाह(रज़ि.) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल(सल्ल.) ने फ़रमाया, जब तुम में से कोई आदमी किसी औरत को निकाह का पैग़ाम दे, तो जहां तक मुम्किन हो, उसे देख लेना चाहिए, शायद उसमें कोई ऐसी चीज़ है जो उस को उस औरत के साथ चाव दिलाने वाली हो।

अबूदाऊद

इन बातों पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि शारेअ़ का मक़सद, देखने को बिल्कुल ही रोकदेना नहीं है, बल्कि असल में फ़ित्ने का दरवाज़ा बन्द कर देना है और इस ग़रज़ के लिए सिर्फ़ उसे देखने को मना किया गया है, जिसकी कोई जरूरत भी न हो, जिसका कोई सांस्कृतिक लाभ भी न हो और जिसमें वासनापूर्ण भावनाओं को भड़काने की वज्हें भी मौजूद हों।

यह हुक्म जिस तरह मर्दों के लिए है, उसी तरह औरतों के लिए भी है। अत: हदीस में हज़रत उम्मे सलमा(रज़ि.) से रिवायत है कि एक बार वह और हज़रत मैमूना[६१] हुज़ूर (सल्ल.) के पास बैठी थीं। इतने में हज़रत इब्ने-उम्मे-मक्तूम आये, जो अंधे थे, हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया, इन से परदा करो। हज़रत उम्मे सलमा ने अर्ज़ किया, क्या यह अंधे नहीं हैं? न वह हमको देखेंगे, न हमें पहचानेंगे। हुज़ूर (सल्ल.) ने जवाब दिया, 'क्या तुम उन्हें नहीं देखती हो?'[६२]

पर औरत के मर्दों को देखने और मर्द के औरत को देखने में मनोविज्ञान के एतबार से एक नाज़ुक फ़र्क़ है। मर्द के स्वभाव में अग्रसरता(अससीर्शीीळेप) है, किसी चीज़ को पसंद करने के बाद वह उसको हासिल करने की कोशिश में क़दम आगे बढ़ाता है, पर औरत के स्वभाव में मना करना है और फ़रार है, जब तक कि उसकी प्रकृति बिल्कुल ही बिगड़ बिगड़ जाए, वह कभी आगे बढ़ कर हाथ डालने वाली, बहादुर और बे-बाक नहीं हो सकती कि किसी को पसन्द करने के बाद ख़ुद उसकी ओर आगे बढ़ जाए। शरीअत बनाने वाले ने इस फ़र्क़ को सामने रख कर औरतों के लिए गैर-औरतों को देखने के मामले में की है। इसी लिए हदीसों में हज़रत आइशा(रज़ि.) की यह रिवायत मशहूर है कि नबी (सल्ल.) ने ईद के मौक़े पर उनको हब्शियों का तमाशा दिखाया था।[६३] इससे मालूम हुआ कि

---

[61] Xygar [adm`V _| hµOaV AmBem a{µO. H$m {OHŒ h¡ &

[62] {V{_©µOr, ~m~ : _m Om-Aµ\$s B{hVOm-{~Z-{ZgmB {_Z[a©Omb

[63] `h [adm`V ~wµImar Am¡a _w{ñb_ Am¡a ZgB© Am¡a _wñZX Ah_X dµJ¡ah _| H$B© VarµH$m| go AmB© h¡ & H$wN bmoJm| Zo BgH$s dOh `h ~Vm`r h¡ {H `h dm{µH$Am em`X Cg dµŠV H$m h¡, O~ hµOaV AmBem$(a{µO.) H$_{gZ Wt Am¡a naXo Ho hwŠ_ Zht CVao Wo & na BãZo {hã~mZ _| ñnîQ {H$`m J`m h¡ {H `h dm{µH$`m Cg dµŠV H$m h¡, O~ hãem H$s EH$ _§Sbr _XrZo AmB© Wr Am¡a VmarµI go gm{~V h¡ {H `h _§Sbr _XrZo AmB© Wr Am¡a VmarµI go gm{~V h¡ {H `h _§Sbr gZ² 07 {h. _| AmB© h¡ & Bg {bhmµO go hµOaV AmBem (a{µO.) H$s

औरतों का मर्दों को देखना बिल्कुल ही मना नहीं है, बल्कि एक मज्लिस में मिलकर बैठना और नज़र जमा कर देखना बुरा है और ऐसी नज़र भी जायज़ नहीं, जिसमें फ़ित्ना पैदा होने का खतरा हो। वही अंधे सहाबी इब्ने-उम्मे-मक्तूम (रज़ि.) जिनसे नबी (सल्ल.) ने हज़रत उम्मे सलमा को परदा करने का हुक्म दिया था, एक दूसरे मौक़े पर हुज़ूर (सल्ल.) उन्हीं के घर में फ़ातमा-बिन्त-क़ैस को इद्दत* बसर करने का हुक्म देते हैं।

क़ाज़ी अबूबक्र इब्नुल-अरबी ने अपनी अहकामुल क़ुरआन में इस वाक़िए को यों बयान किया है कि फ़ातमा-बिन्त-क़ैस, उम्मे शरीक के घर में इद्दत गुज़ारना चाहती थीं। हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया कि इस घर में लोग आते-जाते रहते हैं, तुम इब्ने-उम्मे-मक्तूम के यहां रहो, क्योंकि वह एक अंधा आदमी है और उसके यहां तुम बे-परदा रह सकती हो। इससे मालूम हुआ कि असल मक़्सद फ़ित्ने के ख़तरों को कम करना है। जहां फ़ित्ने का ख़तरा ज़्यादा था, वहां रहने से मना फ़रमा दिया। जहां ख़तरा कम था, वहां इजाज़त रहने की दे दी, क्योंकि बहरहाल उस औरत को कहीं रहना जरूर था, लेकिन जहां कोई हक़ीक़ी ज़रूरत न थी, वहां औरतों को एक ग़ैर-मर्द के साथ एक मज्लिस में जमा होने और रू-ब-रू उसको देखने से रोक दिया।

ये सब बातें बुद्धिमत्ता पर आधारित हैं और जो आदमी शरीअत की रूह तक पहुंचने की सलाहियत रखता हो, वह आसानी के साथ समझ सकता है कि नज़रें नीची रखने के हुक्म में क्या मस्लहतें हैं। और इन मस्लहतों के लिहाज़ से इन हुक्मों में सख़्ती और नर्मी का आश्रय किन बातों पर है। शरीअत देने वाले का असल मक़्सद तुम को नज़रबाज़ी से रोकना है, वरना उसे तुम्हारी आंखों से कोई

C_Œ Cg dµŠV nÝXŒh-gmobh df© H$s Wr, gmW hr ~wImar H$s [adm`V h¡ {H ß`mao Z~r$(gëb.) hµOaV AmBem (a{µO.) H$mo MmXa ‹Tm§H$Vo OmVo Wo & Bggo µOm{ha h¡ {H naXo Ho hwŠ_ ^r Cg dµŠV CVa MwHo Wo &

* BÔV = VbmµH nmZo,`m {dYdm hmo OmZo na Omo {ZY©m[aV g_`, Xygam {ddmh H$aZo go nyd© {~VmZm earAV Zo A{Zdm`© Rham`m, dh Ad[Y$& (nŒH$meH$)

दुश्मनी नहीं है। ये आंखें शुरू में बड़ी मासूम निगाहों से देखती हैं, नफ़्स व शैतान उनकी ताईद में बड़े-बड़े फ़रेब से भरी हुई दलीलें पेश करता है, कहता है कि यह सौंदर्य-प्रियता है, जो प्रकृति ने तुम्हें दे रखी है। प्रकृति के सौंदर्य की दूसरी चीज़ों को जब तुम देखते हो और उन से बहुत आनंद लेते हो, तो मानव-सौंदर्य को भी देखो और रूहानी मज़ा लो, पर अन्दर ही अन्दर यह शैतान आनंद-लोलुपता को बढ़ाता चला जाता है, यहाँ तक कि सौंदर्य-प्रियता तरक़्क़ी करके मिलन की चाह में बदल जाता है। कौन है जो इस हक़ीक़त से इंकार कर सकता हो कि दुनिया में जितना दुष्कर्म अब तक हुआ है और अब हो रहा है, उसकी पहली और सबसे बड़ी वजह यही आंखों का फ़ित्ना है ? कौन यह दावा कर सकता है कि अपने विपरीत लिंग के किसी हसीन और जवान व्यक्ति को देख कर उसमें वही भावना पैदा होती है, जो एक ख़ूबसूरत फूल को देख कर होती है ? अगर दोनों स्थितियों में फ़र्क़ है और एक के ख़िलाफ़ दूसरी स्थिति में कम व बेश कामुक भावना की स्थिति है तो फिर तुम कैसे कह सकते हो कि एक सौंदर्य-प्रेम के लिए भी वही आज़ादी होनी चाहिए जो दूसरे सौंदर्य-प्रेम के लिए है ? शरीअत बनाने वाला (अल्लाह) तुम्हारे सौंदर्य प्रेम को मिटाना तो नहीं चाहता, वह कहता है कि तुम अपनी पसन्द के मुताबिक़ अपना एक जोड़ा चुन लो और जितना सौंदर्य-प्रेम तुम में है, उसका केन्द्र सिर्फ़ इसी एक को बना लो, फिर जितना चाहो, उससे आनंदित हो। इस केन्द्र से हट कर नज़रबाज़ी करोगे, तो बेहयाई के कामों में फंस जाओगे। अगर आत्म संयम या दूसरी रूकावटों की वजह से अमली आवारापन में न भी फंसे, तो मांसिक आवारापन से कभी न बच सकोगे। तुम्हारी बहुत-सी ताक़त आंखों के रास्ते बर्बाद होगी, बहुत-से नाकरदा गुनाहों की हसरत तुम्हारे दिल को नापाक करेगी। बार-बार मुहब्बत के फ़रेब में गिरफ़्तार होगे और बहुत-सी रातें जागते के सपने देखने में बर्बाद करोगे, बहुत-से हसीन नागों और नागिनों से डसे जाओगे, ज़िंदगी की तुम्हारी बहुत-सी ताक़त दिल की धड़कनों और खून के संचार में बर्बाद हो जाएगी। यह नुक़्सान क्या कुछ कम है ? और यह सब कुछ अपने देखने के केन्द्र से हट कर देखने ही का नतीजा है। इस लिए अपनी आँखों को क़ाबू में रखो। बे-ज़रूरत देखना और ऐसा देखना कि जो आज़माइश की वजह बन सकती हो, उस से बचा जाना चहिए। अगर देखने की उचित ज़रूरत हो या उस का कोई सांस्कृतिक लाभ हो, तो फ़ित्ने के ख़तरे के बावजूद देखना जायज़ है और अगर जरूरत न हो, लेकिन फ़ित्ने का भी ख़तरा न हो, तो औरत

के लिए मर्द को देखना जायज़ है, मगर मर्द के लिए औरत को देखना जायज़ नहीं, अलावा इसकेकिअचानक नज़र पड़ जाए।

ज़ीनत ज़ाहिर करने पर रोकऔर उसकी हदें

नज़र नीची रखने का हुक्म औरत और मर्द दोनों के लिए था। इसके बाद कुछ हुक्म ख़ास औरतों के लिए हैं। इनमें से पहला हुक्म यह है कि एक सीमित क्षेत्र केबाहर अपनी ज़ीनत ज़ाहिर करने से बचो।

इस हुक्म केउद्देश्यों पर विचार करने से पहले उन हुक्मों को एकबार ज़ेहन में ताज़ा कर लीजिए, जो इससे पहले लिबास और सत्र ढाकने केबारे में बयान हो चुके हैं। चेहरा और हाथों के सिवा औरत का पूरा जिस्म सत्र है, जिसे बाप, चचा, भाई, और बेटे तककेसामने खोलना जायज़ नहीं, यहाँ तककि औरत पर भी औरत केसत्र का खुलना बुरा (मकरूह)है।[६४] इस सच्चाई को सामने रखते हुए ज़ीनत ज़ाहिर करने की हदों को देखिए

१. औरत को इजाज़त दी गयी है किअपनी ज़ीनत को इन रिश्तेदारों केसामने ज़ाहिर करे शौहर, बाप, ससुर, बेटे, सौतेले बेटे, भाई भतीजे और भाँजे।

२. उसको यह भी इजाज़त दी गयी है किअपने ग़ुलामों केसामने जीनत ज़ाहिर करे, (न किदूसरों केग़ुलामों के सामने)

३. वह ऐसे मर्दों केसामने भी ज़ीनत केसाथ आ सकती है जो किसी औरत के अधीन हों और औरतों की ओर झुकाव और चाव रखने वाले मर्दों में से न हों।[६५]

---

[64] Am¡aV Ho {bE Am¡aV Ho {Oñ_ H$m Zmµ\ (Zm{^) go KwQZo VH H$m {hñgm XoIZm Cgr Vah ham_ h¡, {Og Vah _X© Ho {bE Xygao _X© Ho {Oñ_ H$m `hr {hñgm XoIZm ham_ h¡, BgHo {gdm ~mµH$s {Oñgm XoIZm CgHo {bE _Šêh h¡, µH$VB© ham_ Zht h¡ &

[65] Bg hwŠ_ H$s ì`m»`m H$aVo hwE, hm{µ\$O BãZo H$gra {bIVo h¡¨ {H Bggo _wamX _µOXya _wbm{µO_ Am¡a Vm~oXma _X© h¡¨ Omo Am¡aVm| Ho ~am~a Ho Z hm|, gmW hr MmbmH Am¡a VoµO {µH$ñ_ Ho bmoJ Z hm|, ~pëH grYo-gmXo bmoJ hm|,

Am¡a {\$a EH dm{µH$E Ho ~mX CgH$mo Z {gµ\© Kam| _| AmZo go amoH {X`m, ~pëH  _XrZo hr go {ZH$mb {X`m & CgH$m {µH$ñgm `h h¡ {H _XrZo _| EH Zm_X© Wm, Omo hwµOya (gëb.) H$s nmH ~rdr`m| Ho nmg Am`m-Om`m H$aVm Wm & EH ~ma dh hµOaV Cå_o-gb_m (a{µO.) Ho `hm± ~¡Rm hwAm CZHo ^mB© hµOaV AãXwëbmh (a{µO.) go ~mV| H$a ahm Wm & BVZo _| Z~r (gëb.) Víarµ\ bmEo Am¡a _H$mZ _| Xm{µIb hmoVo hr AmnZo gwZm, dh AãXwëbmh (a{µO.) go H$h ahm Wm, "AJa H$b Vm`µ\ $OrV {b`m J`m, Vmo _¡¨ ~m{X`m-{~ÝV-µJ¡bmZ gµH$µ\$s H$mo Vwåh| {XImD§$Jm, {OgH$m hmb `h h¡ {H O~ gm_Zo go AmVr h¡ Vmo CgHo noQ _| Mma ~b ZµOa AmVo h¡¨, Am¡a O~ nrNo nbQVr h¡, Vmo AmR ~b &' BgHo ~mX EH e_©ZmH dmŠ` _| CgZo Cg Am¡aV Ho gV²a (JwßVm§J) H$s Vmarµ\ $H$s & Z~r (gëb.) Zo CgH$s `o ~mV| gwZ H$a µ\$a_m`m, "Eo µIwXm Ho Xwí_Z! VyZo Vmo Cgo µIy~ ZµOa| Jm‹S H$a XoIm h¡ &' {\$a nmH ~rdr`m| go µ\$a_m`m, "_¡¨ XoIVm hy§ {H `h Am¡aVm| Ho hmbmV H$mo OmZVm h¡, Bg {bE A~ `h Vwåhmao nmg Z AmE &' {\$a AmnZo Bg na ^r ~g Z {H$`m, ~pëH Cgo _XrZo go {ZH$mb H$a ~rXm _| ahZo H$m hwŠ_ {X`m, Š`m|{H CgZo {~ÝVo µJ¡bmZ Ho gV²a H$m Omo {MÌ ItMm Wm, Cggo AmnZo AÝXmµOm µ\$a_m`m {H Cg ì`{ŠV Ho µOZmZmnZ H$s dOh go Am¡aV| CgHo gmW CVZr hr ~o-VH$ëbwµ\ hmo OmVr h¡¨, {OVZm AnZr gmWr Am¡aVm| go hmo gH$Vr h¡¨ Am¡a Bg Vah `h CZHo AÝXê$Zr hmbm| H$mo OmZ H$a CZH$s Vmarµ\| _Xm] Ho gm_Zo ~`mZ H$aVm h¡, {Oggo ~‹So {µ\$ËZo n¡Xm hmo gH$Vo h¡¨ & (~µÁbwb _ÁhyX,

४. औरत ऐसे बच्चों के सामने भी ज़ीनत ज़ाहिर कर सकती है, जिन में अभी काम-वासना न जागी हो। क़ुरआन में 'ऐसे बच्चे जो अभी औरतों की गुप्त बातों को न जानते हों,' फ़रमाया गया है।

५. अपने मेल-जोल की औरतों के सामने भी औरत का ज़ीनत के साथ आना जायज़ है। क़ुरआन में सिर्फ़ 'औरतों' के शब्द नहीं कहे गये, बल्कि 'अपनी औरतों' के शब्द कहे गए हैं। इससे ज़ाहिर हुआ कि शरीफ़ औरतें या अपने ख़ानदान या अपने वर्ग की औरतें मुराद हैं। इनके अलावा ग़ैर-औरतें, जिनमें हर क़िस्म की उलटी-सीधी और सांदिग्ध चाल-चलन वालियां और आवारा व बदनाम सभी शामिल होती हैं, इस इजाज़त से अलग हैं, क्योंकि वे भी फ़ित्ने की वजह बन सकती हैं। इसी वजह से जब शाम (सीरिया) के इलाक़े में मुसलमान गये और उनकी औरतें वहां की ईसाई और यहूदी औरतों के साथ बे-तकल्लुफ़ी से मिलने लगीं, तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने शाम के महाधिकारी हज़रत अबू-उबैदा (रज़ि.) को लिखा कि मुसलमान औरतों को अहले-किताब* के साथ हम्मामों में जाने से मना कर दो।[६६] हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि.) ने स्पष्ट किया है कि मुसलमान औरत दुश्मनों और ग़ैर-मुस्लिमों के सामने अपना शरीर उससे ज़्यादा ज़ाहिर नहीं कर सकतीं, जितना अजनबी मर्दों के सामने ज़ाहिर कर सकती हैं।[६७] इससे कोई धार्मिक पक्षपात ध्येय न था, बल्कि मुसलमान औरतों को ऐसी औरतों से बचाना मक़सद था, जिनके अख़्लाक और तहज़ीब का सही हाल मालूम न हो या जिस हद तक मालूम हो, वह इस्लाम की नज़र में एतराज़ के लायक़ हो। रहीं वे ग़ैर-मुस्लिम औरतें, जो शरीफ़ और हयादार और नेक आदतों वाली हों, तो वे 'अपनी औरतों' में गिनी जाएंगी।

इन सीमाओं पर विचार करने से दो बातें मालूम होती हैं

{H$Vm~w{ëb~mg, _m OmA µ\$s µH$m¡{bhr VAmbm "J¡ê C{bb Ba~{V {_Z[a©Omb')

* Ah²bo {H$Vm~ = B©ídar` JŒ§W dmbo, AWm©V² `hyXr d B©gmB©$& nŒH$meH

66 BãZo Oara, D$na H$s Am`V H$s Vµâgra _|

67 Vµâgrao H$~ra, D$na H$s Am`V H$s Vµâgra _|

एक यह कि जिस ज़ीनत को ज़ाहिर करने की इजाज़त इस सीमित क्षेत्र में दी गयी है, वह सत्र के अलावा है। इससे मुसाद ज़ेवर पहनना, अच्छे कपड़ों से अपने को सजाना, सुर्मा, मेंहदी, बालों की साज-सज्जा और दूसरी वे सजावटें है, जो औरतें अपने स्त्रीत्व के तक़ाज़े से अपने घर में करने की आदी होती है।

दूसरे यह कि इस क़िस्म की सजावटों को ज़ाहिर करने की इजाज़त या तो उन मर्दों के सामने दी गयी है, जिनको सदैव के लिए, विशेष रिश्तों की औरतों के लिए हराम क़र दिया है या उन लोगों के सामने, जिन के भीतर यौन-भावनाएं नहीं हैं या उनके सामने, जो फ़ित्ने की वजह न बन सकते हों, इसलिए औरतों के लिए 'निसाइहिन-न' की क़ैद है, मातहतों के लिए 'ग़ैरि उलिल इरवा' (जो औरतों से कोई मतलब नहीं रखते) और बच्चों के लिए 'लम यज़्-हरू अला औरातिन्नासइ (जो औरतों की परदे की बातों से आगाह नहीं हुए हैं) की। इस से मालूम हुआ कि शरीअत बनाने वाले की मंशा औरतों के ज़ीनत ज़ाहिर करने को ऐसे क्षेत्र में सीमित करना है, जिनमें उनके हुस्न और उनकी सजावट से किसी क़िस्म की नाजायज़ भावना पैदा होने और यौन-विकार के कारण जुटने का ख़तरा नहीं है।

इस दायरे के बाहर जितने मर्द हैं, उनके बारे में इर्शाद है कि उनके सामने अपनी ज़ीनत न ज़ाहिर करो, बल्कि चलने में पांव भी इस तरह न मारो कि छिपी हुई ज़ीनत का हाल आवाज़ से ज़ाहिर हो और इस ज़रिए से तवज्जोह तुम्हारी ओर हो। इस फ़रमान में जिस ज़ीनत को छिपाने का हुक्म दिया गया है, वह वही ज़ीनत है, जिसके ज़ाहिर करने की इजाज़त ऊपर के सीमित क्षेत्र में दी गयी है। मक्सद बिल्कुल साफ़ है, औरतें अगर बन-ठन कर ऐसे लोगों के सामने आयेंगी जो कामुक इच्छाएं रखते हैं और जिन की कामोत्तेजनाओं को 'महरम' व 'ना-महरम' के अंतर का बोध, शुद्ध व पवित्र नहीं बना सका है; तो इस के परिणाम बुरे ही होंगे। कहने का मतलब यह भी नहीं है कि ज़ीनत के इस तरह ज़ाहिर करने से हर औरत अशलील और बेहया ही हो कर रहेगी और हर मर्द अमली तौर पर बदकार ही बन कर रहेगा, पर इससे भी कोई इन्कार नहीं कर सकता कि साज-सज्जा और बनाव-श्रृंगार के साथ औरतों के खुले-आम फिरने और महफ़िलों में शरीक होने से अनगिनत छिपे, खुले, भौतिक, अभौतिक नुक़्सान होते हैं। आज यूरोप और अमरीका की औरतें अपनी और अपने शौहरों की आमदनी का बड़ा हिस्सा अपनी सजावट पर लगा रही हैं और दिन-ब-दिन उनका यह ख़र्च इतना बढ़ता चला जा रहा है कि उनके आर्थिक साधन उसे सहपाने की ताक़त नहीं रखते

।[६८] क्या यह जुनून उन्हीं शौक़ीन निगाहों ने नहीं पैदा किया है, जो बाज़ारों, दफ़्तरों, और समाओं में सजी-धजी औरतों का स्वागत करती हैं ? फिर विचार कीजिए कि आख़िर औरतों में साज-सज्जा का इतना शौक़ पैदा होने और तूफ़ान की तरह बढ़ने की वजह क्या है ? यही ना कि वे मर्दों की वाहवाही लूटना और मर्दों की नज़रों में खपना चाहती हैं।[६९] यह किस लिए? क्या यह बिल्कुल ही

---

68 hmb hr _| Ho${_H$b gm_mZ ~ZmZo dmbm| H$s Zw_mBe hwB© Wr, {Og_| _m{ham| Ho ~`mZ go _mby_ hwAm [H B§½b¡¨S H$s Am¡aV| AnZo {g§Jma na Xmo H$amo‹S nm¡§S Am¡a A_arH$m H$s Am¡aV| gm‹To ~mah H$amo‹S nm¡§S gmbmZm µIM© H$aVr h¡§ Am¡a µH$ar~-µH$ar~ 80 µ\$sgXr Am¡aV| {H$gr VarµHo Ho {g§Jma H$s AmXr h¡§ & (gZ 1940 B©.)

69 gwÝXa ~ZZo H$m OwZyZ Am¡aVm| _| Bg VH ~‹T J`m h¡ {H BgHo {bE do AnZr OmZ| VH Xo ahr h¡§ & CZH$s AË`{YH H$mo{ee `h hmoVr h¡ {H hëH$s-\w$ëH$s Jw{‹S`m-gr ~Z H$a ah| Am¡a CZHo eara na EH Am¡¨g ^r µOê$aV go µÁ`mXm _m§g Z hmo & µIy~gyaVr Ho {bE {n§Swbr, amZ Am¡a grZo Ho Omo Zmn _{ham| Zo _wµH$a©a H$a {XE h¡§, ha b‹SH$s AnZo AmnH$mo Cg Zmn Ho AÝXa aIZm MmhVr h¡, _mZmo Cg H$_~™V H$s {µO§XJr H$m H$moB© _µŠgX Xygam| H$s {ZJmh _| ng§XrXm ~Z OmZo Ho {gdm Z ahm & Bg _µŠgX Ho {bE `o ~oMm[a`m§ Cndmg H$aVr h¡§, {Oñ_ H$mo ~‹TmZo dmbr MrµOm| go OmZ-~yP H$a AnZo AmnH$mo _hê_ aIVr h¡¨ & Zr~y Ho ag, H$‹Sdr H$mµ\$r Am¡a Eogo hr hëHo µImZm| na OrVr h¡¨ Am¡a SmŠQar _{ídao Ho ~µJ¡a, ~{ëH BgHo {µIbmµ\ Eogr XdmE§ BñVo_mb H$aVr h¡§ Omo CÝh| Xw~bm H$a| & Bg nmJbnZ Ho {bE ~hwV-gr Am¡aVm| Zo AnZr OmZ| Xr h¡¨ Am¡a Xo ahr h¡¨ & gZ²1937 _| ~wSmnoñQ H$s _ehya EŠQ´og "Omogrbm ~mg' `H$m`H {Xb H$s haH$V ~ÝX hmo OmZo H$s dOh go _a JB© & ~mX _|

मासूम मामला है ? क्या इसकी तह में वे यौन-कामनएं छिपी हुई नहीं हैं, जो अपने प्राकृतिक दायरे से निकल कर फैल जाना चाहती हैं और जिनकी माँगे पूरी करने के लिए दूसरी ओर भी वैसी ही ख़्वाहिशें मौजूद हैं? अगर आप इससे इंकार करेंगे, तो शायद कल आप यह दावा करने में भी न झिझकें कि ज्वालामुखी पहाड़ पर जो धुवां नज़र आता है, उसकी तह में मालिक हैं, जो चाहे कीजिए, पर सच्चाइयों से इन्कार न कीजिए। ये सच्चाइयां अब कुछ ढकी-छिपी भी नहीं रही हैं, और इन के नतीजे भी सर्व विदित रूप में सामने आ चुके हैं। आप इन नतीजों को जानते-बूझते या अनजाने में क़ुबूल कर लेते हैं, पर इस्लाम इन्हें ठीक उसी जगह पर रोक देना चाहता है, जहां से उनके ज़ाहिर होने की शुरूआत पर नहीं, बल्कि उस निहायत ग़ैर-मासूम अंजाम पर है जो पूरे समाज पर भयानक अंधेरा ले कर फैल जाता है।[७०]

क़ुरआन में जहां परायों के सामने औरत के शरीर की ज़ीनत ज़ाहिर करने पर रोक है, वहीं एक अपवाद भी है 'इल्ला मा ज़-ह-र' (अलावा उसके कि जो ज़ाहिर हो जाए), जिसका मतलब यह है कि ऐसी ज़ीनत के ज़ाहिर होने में कोई हरज नहीं है, जो ख़ुद ज़ाहिर हो जाए। लोगों ने इस अपवाद से बहुत कुछ फ़ायदा उठाने की कोशिश की है पर मुश्किल यह है कि इन शब्दों में कुछ ज़्यादा फ़ायदा उठाने की गुंजाइश ही नहीं है। शारेअ (शरीअत देने वाला) सिर्फ़ यह कहता है कि तुम अपने इरादे से दूसरों के सामने अपनी ज़ीनत ज़ाहिर न करो, लेकिन जो ज़ीनत ख़ुद ज़ाहिर हो जाए या मजबूरी के तौर पर ज़ाहिर ही रहने वाली हो, उसकी तुम पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं। मतलब साफ़ है। तुम्हारी नीयत ज़ीनत ज़ाहिर करने की न होनी चाहिए। तुम में यह भावना, यह इरादा हरगिज़ न होना चाहिए कि अपनी साज-सज्जा परायों को दिखाओ और कुछ नहीं तो छिपे हुए ज़ेवरों की झंकार ही

---

70 Eogm µJwbm_ ~Zm {X`m h¡ {H do ImZo-nrZo Am¡a VÝXwê$ñV ahZo H$s AmµOmXr go ^r _hê$_ hmo J`t & BZ µJar~m| H$m Vmo OrZm Am¡a _aZm A~ ~g _Xm] hr H$s dmgZm-V¥{ßV Ho {bE ah J`m h¡ & nam`m| _| µOrZV Ho gmW ZmµO d AÝXmµO go MbZo dmbr Am¡aV Eogr h¡ O¡go {µH$`m_V Ho {XZ H$s Cg_| Zya Zht & (hXrg={V{_µ©Or)

सुना कर उनकी तवज्जोह अपनी ओर कर लो।[७१] तुम को अपनी ओर से तो ज़ीनत छिपाने की भरसक कोशिश करनी चाहिए, फिर अगर कोई चीज़ भारी मजबूरी में खुल जाए, तो उस पर अल्लाह तुम्हारी कोई पकड़ न करेगा। तुम जिन कपड़ों में ज़ीनत को छिपाओगी, वे तो बहरहाल ज़ाहिर ही होंगे। तुम्हारा क़द व क़ामत, डील-डौल तो उनमें महसूस होगा। किसी ज़रूरत या काम-काज के लिए कभी हाथ या चेहरे का कोई हिस्सा तो खोलना ही पड़ेगा, कोई हरज नहीं। तुम उसे ज़ाहिर करने पर मजबूर भी हो। अगर इन चीज़ों से भी कोई कमीना व्यक्ति लज़्ज़त लेता है, तो लिया करे, अपनी बद-नीयती की सज़ा ख़ुद भुगतेगा। जितनी ज़िम्मेदारी संस्कृति और चरित्र के लिए तुम पर डाली गई थी, उस को तुमने अपनी हद तक पूरा कर दिया।

यह है सही मतलब इस आयत का। टीकाकारों में इससे मतलब में जितने मतभेद, हैं, उन सब पर जब आप विचार करेंगे, तो मालूम होगा कि तमाम मतभेदों के बावजूद, उनकी मंशा यही है, जो हमने बयान किया है।

इब्ने मसऊद, इब्राहीम नख़ई और हसन बसरी के नज़ीक ज़ाहिरी ज़ीनत से मुराद कपड़े हैं, जिनमें भीतरी ज़ीनत को छिपाया जाता है, जैसे बुर्क़ा या चादर।

इब्ने अब्बास, मुजाहिद, अता. इब्ने उमर, अनस, ज़हहाक, सईद बिन ज़ुबैर, औज़ाई, और आम हनफ़ियों के नज़दीक इससे मुराद चेहरा और हाथ है। ज़ीनत के अन्य साधन भी इस अपवाद में दाख़िल हैं जो चेहरे और हाथ में आदतन होते हैं, जैसे हाथ की मेंहदी, अंगूठी और आंखों का सुर्मा वग़ैरह।

---

71 A~ Eogo µOoda Am¡a JhZm| H$m [admO, {OZ _| P§H$ma n¡Xm hmoVr hmo, bJ^J ¼Ë_ hmo J`m h¡ A~ Vmo {Nno hwE µOodam| H$s µOrZV Ho ~Om`, ñd`§ {Nno hwE earam§Jm| VWm CZ Ho CVma-M‹Tmd H$s gmar ~mar{H$`m| Hmo, Hn‹So nhZ H$a^r, ñnîQ H$aZo H$m [admO h¡; Š`m|{H {Nno hwE Am^yfUm| _| nam`o _Xm] Ho {bE CVZm `m¡Z-AmH$f©U ~hahmb Zht hmo gH$Vm Omo gmjmV eara Ho H$m_moÎmoOH A§Jm| _¢ &
(nŒH$meH)

सईद-बिन-मुसय्यिब के नज़दीक सिर्फ़ चेहरा अपवाद है और एक कथन हसन बसरी से भी उनकी ताईद में नक़ल किया गया है।

हज़रत आइशा का, चेहरा छिपाने की ओर झुकाव है । उनके नज़दीक ज़ाहिरी ज़ीनत से मुराद हाथ और चूड़ियाँ,कंगन और अंगूठियाँ हैं।

मिस्वर-बिन-मख़्रमा और क़तादा हाथों को उनकी ज़ीनत समेत खोलने की इजाज़त देते हैं, पर चेहरे के बारे में उनकी बातों से ऐसा लगता है कि पूरे चेहरे के बजाए वे सिर्फ़ आँखें खोलने को जायज़ रखते हैं।[७२]

इन मतभेदों के मंशा पर विचार कीजिए। इन सब टीकाकारों ने 'इल्ला मा ज़-ह-र मिन्हा' (अलावा उसके जो उसमें से ज़ाहिर हो) से यही समझा है कि अल्लाह ऐसी ज़ीनत को ज़ाहिर करने की इजाज़त देता है जो मजबूरी में ज़ाहिर हो जाए या जिसको ज़ाहिर करने की ज़रूरत पेश आ जाए। चेहरे और हाथों की नुमाइश करना या उनको देखने योग्य बनाना, इन में से किसी का भी मक़सद नहीं। हर एक ने अपनी समझ और औरतों की ज़रूरतों के लिहाज़ से यह समझाने की कोशिश की है कि ज़रूरत किस हद तक किस चीज़ को बे-परदा करने की बात करती है या क्या चीज़ मजबूरी में या आदत के तौर पर खुल सकती है। हम कहते हैं कि आप 'इल्ला मा ज़-ह-र मिन्हा' को इनमें से किसी शर्त के साथ भी न जोड़िए, एक मुसलमान औरत जो ख़ुदा और रसूल के हुक्मों की सच्चे दिल से पाबन्द रहना चाहती है और जिसको फ़ित्ने में पड़ना मंज़ूर नहीं है, वह ख़ुद अपने हालात और जरूरतों के हिसाब से फ़ैसला कर सकती है कि चेहरा और हाथ खोले या नहीं, कब खोले और कब न खोले, किस हद तक खोले और किस हद तक छिपाए, इस बारे में कोई क़तई हुक्म न शरीअत देने वाले ने दिए हैं, न हालात और ज़रूरतको अदलते-बदलते रहने को देखते हुए यह हिक्मत का तक़ाजा है कि क़तई हुक्म दे दिए जाए। जो औरत अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए बाहर जाने और काम-काज करने पर मजबूर है, उसको किसी वक़्त हाथ भी ज़रूरत पेश आयेगी और चेहरा भी। ऐसी औरत के लिए जरूरत भर इजाज़त है और जिस औरत का हाल यह नहीं है, उसके लिए बे-ज़रूरत जान-बूझ कर खोलना सही नहीं।

---

[72] `o V_m_ H$WZ Vµâgrao BãZo Oara Aëbm_m Oñgmg Ho "AhH$m_wb µHw$aAmZ' go {bE JE h¢ &

अत: शरीअत बनाने वाले का मक़सद यह है कि अपना हुस्न दिखाने के लिए अगर कोई चीज़ बे-परदा की जाए तो यह गुनाह है, अपने आप बे-इरादा कुछ ज़ाहिर हो जाए, तो कोई गुनाह नहीं। सच्ची ज़रूरत अगर कुछ खोलने पर मजबूर करे, तो उसका खोलना बिल्कुल जायज़ है। अब रहा यह सवाल कि हालात के अदलते-बदलते रहने से हट कर सिर्फ़ चेहरे के बारे में क्या हुक्म है ? शरीअत बनाने वाला उसके खोलने को पसन्द करता है या ना-पसन्द ? उसके खोलनें की इजाज़त सिर्फ़ बहुत ज़रूरी ज़रूरत के तौर पर दी गयी है या उसके नज़दीक चेहरा परायों से छिपाने की चीज़ ही नहीं है? इन सवालों पर सूर: अलज़ाब वाली आयत में रोशनी डाली गयी है।

चेहरे के बारे में हुक्म

सूर: अहज़ाब की जिस आयत का ज़िक्र ऊपर किया गया है, उसके शब्द ये हैं

> 'ऐ नबी! अपनी बीवीबों और बेटियों और मुसलमानों की औरतों से कह दो कि अपने ऊपर अपनी चादरों के घूंघट डाल लिया करें, इस उपाय से इसकी ज़्यादा उम्मीद है कि वे पहचान ली जाएंगी और उन्हें सताया न जाएगा।'
>
> (सूरा अल्-अहज़ाब)

ये आयत ख़ास चेहरों को छिपाने के लिए है। 'जलाबीब' बहुवचन है 'जिलबाब' का, जिसका मतलब चदर है। 'इदना' का मतलब लटकाना है। 'युदनी-न-हुन-न अलैहिन-न मिन जलाबी-बिहिन-न' का शाब्दिक अनुवाद यह होगा कि 'अपने ऊपर अपनी चादरों में से एक हिस्सा लटका लिया करें' यही मतलब घूंघट डालने का है, पर असल मक़सद वह ख़ास बनावट नहीं है, जिसको आम तौर से घूंघट कहा जाता है, बल्कि चेहरे को छिपाना उद्देश्य है, चाहे घूंघट से छिपाया जाए या निक़ाब से या किसी और तरीक़े से। इसका फ़ायदा यह बताया गया है कि जब मुसलमान औरतें इस तरह छिपा कर बाहर निकलेंगी, तो लोगों को मालूम हो जायेगा कि ये शरीफ़ औरतें हैं, बेहया नहीं हैं, इस लिए कोई मन का खोटा व्यक्ति उनसे छेड़ख़ानी न करेगा।

क़ुरआन मजीद के तमाम टीकाकारों ने इस आयत का यही मतलब बयान किया है। इब्ने अब्बास (रज़ि.) इसकी टीका में फ़रमाते हैं

'अल्लह ने मुसलमान औरतों को हुक्म दिया है कि जब वे किसी ज़रूरत से निकलें तो सिर के ऊपर से अपनी चादरों के पल्लू लटका कर अपने चेहरों को ढांक लिया करें।

(तफ़्सीरे इब्ने जरीर, भाग२२, पृ. २९)

इमाम मुहम्मद-बिन-सीरीन ने हज़रत उबैदा-बिन-सुफ़ियान-बिन-हारिस हज़रमी से मालूम किया कि इस हुक्म पर अमल करने का तरीक़ा क्या है ? उन्होंने ख़ुद चादर ओढ़ कर बताया और अपना माथा और नाक और एक आंख को छिपा कर सिर्फ़ एक आँख खुली रखी।

(तफ़्सीरे इब्ने जरीर, भाग२२, पृ. २९ और
अह्कामुल क़ुरआन, भाग ३ पृ. ४५७)

अल्लामा इब्ने-जररी तबरी इस आयत की व्याख्या में लिखते हैं

'ऐ नबी ! अपनी बीवियों, बेटियों और मुसलमानों की औरतों से कह दो कि जब अपने घरों से किसी ज़रूरत के लिए निकलें, तो लौंडियों के पहनावे न पहनें कि सिर और चेहरे खुले हुए हों, बल्कि वे अपने ऊपर अपनी चादरों के घूंघट डाल लिया करें, ताकि कोई नाफ़रमान उनसे छेड़ख़ानी न कर सके और सब जान लें कि वे शरीफ़ औरतें है।'

तफ़्सीरे इब्ने जरीर, भाग२२, पृ. २९

अल्लामा अबूबक्र जस्सास लिखते हैं

'यह आयत इस बात की दलील है कि जवान औरत को परायों से चेहरा छिपाने का हुक्म है और उसे घर से निकलते वक़्त परदादारी और पाकदामनी ज़ाहिर करनी चाहिए, ताकि बद-नीयत लोग उस के सिलसिले में कोई लोभ न कर सकें।'
अहकामुल क़ुरआन, भाग ३ पृ. ४५८

अल्लामा नीशापुरी अपनी टीका 'ग़राइबुल क़ुरआन' में लिखते हैं

‘इस्लाम के शुरू के ज़माने में औरतें जाहिलियत के ज़माने की तरह कमीज़ और दोपट्टे के साथ निकलती थीं और शरीफ़ औरतों का पहनावा निचले वर्ग की औरतों से अलग न था। फिर हुक्म दिया गया कि वे चादरें ओढ़ें और अपने सिर और चेहरों को छिपायें, ताकि लोगों को मालूम हो जाए कि वे शरीफ़ औरतें हैं गन्दी और बेहया औरतें नहीं हैं।’

(तफ़्सीरे ग़राइबुल क़ुरआन, हाशिया इब्ने जरीर, भाग २२, पृ. ३२)

इमाम राजी लिखते हैं

'जाहिलियत (अज्ञानता) के युग में शरीफ़ औरतें और लौंडियां सब खुलीफिरती थीं और बदकार लोग उनका पीछा किया करते थे। अल्लाह ने शरीफ़ औरतों को हुक्म दिया कि वे अपने ऊपर चादर डाल लें और यह फ़रमाया कि 'इसकी ज़्यादा उम्मीद है कि इस तरह वे पहचान ली जायेंगी और उन्हें सताया न जायेगा' तो इसके दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि इस पहनावे से पहचान लिया जाएगा कि वे शरीफ़ औरतें हैं और उनका पीछा न किया जाएगा। दूसरे यह कि इस से मालूम हो जाएगा कि वे बद-कार नहीं हैं, क्योंकि जो औरत चेहरा छिपाएगी, जबकि चेहरा 'औरत'[७३] नहीं हैं, ज़िस का छिपाना ज़रूरी हो, तो कोई आदमी उससे यह उम्मीद न करेगा कि ऐसी शरीफ़ औरत (गुप्तांग) खोलने पर तैयार हो जाएगी, बस इस पहनावे से यह ज़ाहिर हो जाएगा कि वह एक परदादार औरत है और उससे बदकारी की उम्मीद न की जा सकेगी।' (
तफ़्सीर कबीर, भाग ६, पृ. ५९१)

क़ाज़ी बैज़ावी लिखते हैं

'युदनी-न अलैहिन-न मिन जलाबीबिहिन-न' अर्थात जब वे अपनी ज़रूरतों के लिए बाहर निकलें, तो अपनी चादरों से अपने चेहरों और अपने जिस्मों को छिपा लें। यहां 'मिन' शब्द कुछ हिस्सों को बताने के लिए आया है अर्थात चादरों के एक हिस्से को मुंह पर डाला जाए और एक हिस्से को जिस्म पर लपेट लिया जाए।'

'ज़ालि-क अदना अय्युअ-रफ़-न' अर्थात इससे उनके और लौंडियों और गाने वालियों के बीच अन्तर मालूम हो जाएगा। 'व ला यूज़ैन'

---

73 "Am¡aV' n[a^mfm _| {Oñ_ Ho Cg {hñgo H$mo H$hVo h¢, {OgH$mo ~rdr `m em¡ha Ho {gdm ha EH go {NnmZo H$m hwŠ_ h¡ & _X© Ho {Oñ_ H$m ^r dh {hñgm Omo Zmµ\ (Tm|‹Tr) Am¡a KwQZo Ho ~rM h¡, Bg AW© _| "Am¡aV hr h¡ &
(Vµâgrao ~¡µOmdr, ^mJ 4, n¥. 168)

और सांदिग्ध चाल-चलन केलोग उससे छेड़ख़ानी की हिम्मत न कर सकेंगे।'

(तफ़्सीरे बैज़ावी, भाग ४, पृ. १६८)

इन बातों से ज़ाहिर है किसहाबा किराम (रज़ि.) केमुबारकदौर से ले कर आठवीं सदी तकहर ज़माने में इस आयत का एकही मतलब समझा गया है और वह मतलब वही है, जो इसकेशब्दों से हमने समझा है। इसकेबाद हदीसों की ओर आइए तो वहाँ भी मालूम होता है किइस आयत केउतरने के बाद से नबी (सल्ल.) के मुबारक दौर में आम तौर पर मुसलमान औरतें अपने चेहरों पर निक़ाब डालने लगी थीं और खुले चेहरों से फिरने का चलन बन्द हो गया था। अबूदाऊद, तिर्मिज़ी, मुअत्ता और हदीस की दूसरी किताबों में लिखा है कि नबी (सल्ल.) ने औरतों को एहराम[७४] की हालत में चेहरों पर निक़ाब डालने और दस्ताने पहनने से मना फ़रमाया था। इससे साफ़ज़ाहिर होता है किउस मुबारक ज़माने में चेहरों को छिपाने केलिए निक़ाव और हाथों को छिपाने केलिए दस्तानों का आम चलन हो चुका था। सिर्फ़ एहराम की हालत में इससे मना किया गया था, पर इससे भी यह मक़सद न था किहज में चेहरे सबकेसामने पेश किए जायें, बल्किअसल में मक़सद यह था किएहराम केफ़क़ीराना पहनावे में निक़ाब औरत केकपड़े का हिस्सा न हो, जिस तरह आम तौर पर होता है। चुनांचे दूसरी हदीसों में स्पष्ट कर दिया गया है किएहराम की हालत में भी नबी (सल्ल.) की बीवीयां और आम मुस्लिम औरतें निक़ाब केबग़ैर अपने चेहरों को परायों से छिपाती थीं। अबूदाऊद में है

'हजरत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं किसवार हमारे क़रीब से गुज़रते थे और हम औरतें अल्लाह केरसूल (सल्ल.) केसाथ एहराम की हालत में होती थीं। जब वे लोग हमारे सामने आ जाते, तो हम अपनी चादरें अपने सिरों की ओर से अपने चेहरों पर डाल लेतीं और जब वे गुज़र जाते, तो मुंह खोल लेती थीं।

मुअत्ता इमाम मालिकमें है

---

[74] hO (d C_am) H$aVo g_` Omo {b~mg nhZm OmVm h¡ Cgo "Eham_ H$m {b~mg H$hVo h¢$&
(nŒH$meH)

'फ़ातिमा-बिन्त-मुंज़िर का बयान है कि हम एहराम की हालत में अपने चेहरों पर कपड़ा डाल लिया करती थीं। हमारे साथ हज़रत अबूबक्र (रज़ि.) की बेटी हज़रत अस्मा थीं। उन्होंने हम को उससे मना नहीं किया (यानी उन्होंने यह नहीं कहा कि एहराम की हालत में निक़ाब इस्तेमाल करने की जो रोक है, वह हमारे इस काम पर भी लागू होती है।)

फ़त्हुल-बारी किताबुल हज्ज में हज़रत आइशा (रज़ि.) की एक रिवायत है

'औरत एहराम की हालत में अपनी चादर अपने सिर पर से चेहरे पर लटका लिया करे।'

निक़ाब

जो आदमी क़ुरआनी आयतों के शब्दों और उनकी सर्वमान्य और सर्वसम्मत टीका और नबी (सल्ल.) के दौर में जारी अमल को देखेगा, उसके लिए इस सच्चाई से इंकार की मजाल बाक़ी न रहेगी कि इस्लामी शरीअत में औरत के लिए चेहरे को परायों से छिपाये रखने का हुक्म है और इस पर ख़ुद नबी (सल्ल.) के ज़माने से अमल किया जा रहा है। निकाह अगर शब्द की दृष्टि से नहीं,तो अर्थ और वास्तविकता की दृष्टि से खुद क़ुरआन मजीद की तज्वीज़ की हुई चीज़ है। जिस मुबारक हस्ती पर क़ुरआन उतरा था, उसकी आंखों के सामने इस्लामी औरतों ने इस चीज़ को अपने घर से बाहर निकलने के पहनावे का हिस्सा बना लिया था और उस ज़माने में भी उस चीज़ का नाम 'निक़ाब' ही था।

जी हां ! यह वही 'निक़ाव' (तशळश्र) है, जिसको यूरोप अत्यंत बुरी और घिनौनी चीज़ समझता है, जिसकी सिर्फ़ सोच यूरोपियन अन्तरात्मा पर भारी बोझ है, जिसको ज़ुल्म, तंग ख़्याली और जंगलीपन की निशानी क़रार दिया जाता है। हां, यह वही चीज़ है जिसका नाम किसी पूर्वी क़ौम की जिहालत और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के ज़िक्र में सबसे पहले लिया जाता है और जब यह बयान करना होता है कि कोई पूर्वी क़ौम संस्कृति और सभ्यता में तरक़्क़ी कर रही है, तो सबसे पहले जिस बात का ज़िक्र बड़ी ख़ुशी के साथ किया जाता है, वह यही है कि उस क़ौम से 'निकाब' विदा हो गयी। अब शर्म से सिर झुका लीजिए कि यह चीज़ अर्थात् 'निक़ाब' बाद की ईजाद नहीं, खुद क़ुरआन ने इसको ईजाद किया है और

मुहम्मद (सल्ल.) इसको लागू कर गए हैं। पर सिर्फ़ सिर झुकाने से काम न चलेगा। शुतुर्मुग़ अगर तूफ़ान आ जाने पर रेत में सिर छिपा ले, तो तूफान का वजूद ख़त्म नहीं हो जाता। आप भी अपना सिर झुकायेंगे, तो ज़रूर झुक जाएगा, पर क़ुरआन की आयत न मिटेगी, न ही इतिहास से साबित वाक़िए मिट जाएगे। नये-नये मतलब निकाल कर उन पर परदा डालिएगा, तो यह 'शर्म का दाग़' कौर ज़्यादा चमक उठेगा। जब पश्चिम की 'वहय' पर ईमान ला कर आप उसे 'शर्म का दाग़' मान ही चुके हैं, तो उसे दूर करने की अब एक ही शक्ल है और वह यह है कि उस इस्लाम ही से अपने अलग होने का एलान कर दें, जो निक़ाव, घूंघट, चेहरे को छिपाने जैसी 'घिनौनी' चीज़ का हुक्म देता है। आप हैं 'तरक़्क़ी' के चाहने वाले, आपको चाहिए 'सभ्यता', आपके लिए वह धर्म कैसे पालन करने योग्य बन सकता है जो औरतों को शमा-ए-अंजुमन बनने से रोकता हो, हया, परदादारी और पाकदामनी की तालीम देता हो घर की मलकिन को घर वालों के सिवा हर एक के लिए आँखों की ठंडक बनने से मना करता हो। भला ऐसे मज़हब में 'तरक़्क़ी' कहां ? ऐसे मज़हब को 'सभ्यता' से क्या मतलब? 'तरक़्क़ी' और 'सभ्यता' के लिए तो ज़रूरी है कि औरत नहीं, लेडी साहिबा - बाहर निकलने से पहले दो घंटे तक तमाम कामों से फ़ुर्सत ले कर सिर्फ़ अपनी साज-सज्जा में लग जाएं, तमाम जिस्म को महकाएं, रंग और बनावट को देखते हुए अति आकर्षक व उत्तेजक पहनावा पहनें। हज़ार क़िस्म के पाउडरों और क्रीमों से चेहरे और वांहों की चमक बढ़ाएं, होंठों को लिपस्टिक से सजाएं, भौहों की धनुष को ठीक और आँखों को वाण चलाने के लिए चुस्त कर लें और इन सब करिश्मों से सज-धज कर घर से बाहर निकलें, तो शान यह हो कि हर करिश्मा मर्दों के दिल का दामन खींच-खींच कर 'यहां, यहां !' की आवाज़ लगा रहा हो, फिर उस से भी अपने को दिखाने का शौक़ पूरा न हो, तो आईना और सिंगार का समान वैनिटी पर्स में हर समय साथ रहे, ताकि उन से, थोड़ी-थोड़ी देर बाद, यौनाकर्षण में आई कमी की पूर्ति की जाती रहे।

जैसा कि हम बार-बार कह चुके हैं, इस्लाम और पाश्चात् सभ्यता के मक़सदों में बहुत दूरी है और वह आदमी बड़ी ग़लती करता है, जो पाश्चात्य परिदृश्य के अनुसार, इस्लामी हुक्मों का मतलब बयान करता है। पश्चिम में चीज़ों की क़द्र और क़ीमत का जो पैमाना है, इस्लाम का पैमाना बिल्कुल उससे अलग है। पश्चिम जिन चीज़ों को अहम और ज़िंदगी का अभीष्ट समझता है,

इस्लाम की निकाह में उनकी कोई अहमियत नहीं और इस्लाम जिन चीज़ों को अहमियत देता है, पश्चिम की निगाह में वे बिल्कुल बे-क़ीमत हैं। अब जो आदमी पश्चिमी पैमाने का क़ायल है, उसको तो इस्लाम की चीज़ घटाने-बढ़ाने के क़ाबिल ही नज़र आयेगी। वह इस्लामी हुक्मों का मतलब बताने बैठेगा, तो उनको बदल डालेगा और बदलने के बाद भी उनको अपनी ज़िंदगी में किसी तरह लागू न करेगा, क्योंकि क़दम-क़दम पर क़ुरआन व सुन्नत का स्पष्टीकरण उसका रास्ता रोकेगा। ऐसे आदमी को छोटी छोटी, आंशिक बातों पर नज़र डालने से पहले यह देखना चाहिए कि जिन मक़सदों के लिए इन बातों को अपनाया गया है, वे ख़ुद कहां तक क़ुबूल करने लायक़ हैं। अगर वह मक़सदों ही से सहमत नहीं है, तो मक़सदों के हासिल करने के तरीक़ों पर बहस करने और उन्हें घटाने-बढ़ाने या तोड़ने-मरोड़ने का कष्ट क्यों न उस मज़हब ही को छोड़ दें जिसके मक़सदों को वह ग़लत समझता है? और अगर वह मक़सदों से सहमत है तो बहस सिर्फ़ इस में रह जाती है कि इन मक़सदों के लिए जो अमली तरीक़े तज्वीज़ किए गए हैं, वे मुनासिब हैं या ना-मुनासिब? इस बहस को आसानी से तै किया जा सकता है, लेकिन यह तरीक़ा सिर्फ़ शरीफ़ लोग ही अपना सकते हैं। रहे मुनाफ़िक़ और कपटाचारी लोग, तो वे ख़ुदा की पैदा की हुई मख़्लूक़ में से सबसे घटिया मख़्लूक़ हैं। उनके लिए यही सही लगता है कि दावा एक चीज़ को मानने का करें और असल में मानें दूसरी चीज़ को।

निक़ाब और बुर्क़े के मसले में जितनी बहसें भी की जा रही हैं, वे असल में इसी दोरूख़े रवैये पर टिकी हुई हैं। एड़ी से चोटी तक का ज़ोर यह साबित करने में लगा दिया गया है कि परदे की यह शक्ल इस्लाम से पहले की क़ौमों में रिवाज पाये हुए थीं और जाहिलियत की यह मीरास नबी (सल्ल.) के ज़माने के बहुत दिनों बाद मुसलमानों में बंटी। क़ुरआन की एक खुली आयत और नबी (सल्ल.) के दौर के साबित अमल और सहाबा और ताबेअीन की व्याख्याओं के मुक़ाबले में ऐतिहासिक खोजों का कष्ट आख़िर क्यो उठाया गया? सिर्फ़ इस लिए कि ज़िंदगी के वे मक़सद नज़रों में थे और हैं जो 'पश्चिम' में लोकप्रिय हैं। 'तरक़्क़ी' और 'तहज़ीब' के वे विचार मन में बैठ गए हैं जो पश्चिम वालों से नक़ल किये गए हैं। चूंकि बुर्क़ा ओढ़ना और निक़ाब डालना उन मक़सदों के ख़िलाफ़ है और उन सोचों से किसी तरह मेल नहीं खाता, इस लिए ऐतिहासिक खोजों के बल पर उस चीज़ को मिटाने की कोशिश की गई, जो कस्लाम के क़ानून की किताब में

दर्ज है। निफ़ाक़ और कपटाचार का यह रोग जो बहुत-से मसलों की तरह इस मसले में भी सामने आया है, इसकी असल वजह वही बे-उसूली, अक़्ल की कमी और नैतिक साहस की कमी है, जिसका हमने ऊपर ज़िक्र किया है। अगर ऐसा न होता तो इस्लाम की पैरवी का दावा करने के बावजूद क़ुरआन के मुक़ाबले में इतिहास को ला कर खड़ा करने का विचार भी उनके मन में न आता। या तो ये अपने मक़्सदों को इस्लाम के मक़्सदों से बदल डालते (अगर मुसलमान रहना चाहते) या एलानिया उस मज़हब से अलग हो जाते जो कि तरक़्क़ी के मेयार के हिसाब से तरक़्क़ी में रुकावट है।

जो आदमी इस्लामी क़ानून के मक़्सदों को समझता है और उसके साथ कुछ आम बुद्धि (ेंोप डशपीश) भी रखता है, उसके लिए यह समझना कुछ भी मुश्किल नहीं कि औरतों को खुले चेहरे के साथ बाहर फिरने की आम इजाज़त देना उन मक़्सदों के बिल्कुल ख़िलाफ़ है, जिनको इस्लाम इतनी अहमियत दे रहा है। एक इंसान पर दूसरे इंसान की जो चीज़ सब से ज़्यादा असर डालती है, वह उसका चेहरा ही तो है। इंसान की पैदाइशी ज़ीनत या दूसरे शब्दों में इंसानी हुस्न को सबसे ज़्यादा ज़ाहिर करने वाली चीज़ चेहरा ही है। निगाहों को सबसे ज़्यादा वही खींचता है, भावनाओं को सबसे ज़्यादा वही अपील करता है। यौन-आकर्षण का सबसे ज़्यादा ताक़तवर एजेंट वही है। इस बात को समझने के लिए मनोविज्ञान के किसी गहरे ज्ञान की भी ज़रूरत नहीं, ख़ुद अपने मन को टटोलिए, अपनी आँखों से फ़त्वा लीजिए, अपने मन के तजुर्बों का जायज़ा ले कर देखिए। छल-कपट ज़ाहिर करने की बात तो दूसरी है। कपटाचारी व्यक्ति तो अगर सूरज के वजूद को भी अपने मक़्सद के ख़िलाफ़ देखेगा, तो दिन की रोशनी में भी कह देगा कि सूरज मौजूद नहीं। अलबत्ता सच्चाई से काम लीजिएगा, तो आपको मानना पड़ेगा कि यौन-प्रेरणा (डशु रशिरिश्र) में जिस्म की सारी ज़ीनतों में सबसे ज़्यादा हिस्सा उस फ़ितरी ज़ीनत का है जो अल्लाह ने चेहरे की बनावट में रखी है। अगर आपको किसी लड़की से शादी करनी हो और आप उसे देख कर आख़िरी फ़ैसला करना चाहते हों तो सच बताइए कि क्या देख कर आप फ़ैसला करेंगे ? एक तरीक़ा उसके देखने का यह हो सकता है कि चेहरे के सिवा वह पूरी की पूरी आपके सामने हो। दूसरा यह हो सकता है कि एक झरोखे में से वह सिर्फ़ अपना चेहरा दिखा दे। बताइए कि दोनों तरीक़ों में से कौन से तरीक़े को आप तर्जीह देंगे?

सच बताइए क्या सारे जिस्म के मुक़ाबले में चेहरे का हुस्न आपकी निगाह में सब से अहम नहीं है?

इस सच्चाई को मान लेने के बाद आगे बढ़िए। अगर समाज में यौन-विकार और विघटित उत्तेजनाओं को रोकना मक़सद ही न हो, तो चेहरा क्या मतलब, सीना, बाज़ू, पिंडलियां और रानें सभी कुछ खोल देने की आज़ादी होनी चाहिए, जैसी कि इस वक़्त पाश्चत्य सभ्यता में है। इस स्थिति में उन हदों और क़ैदों की कोई ज़रूरत ही नहीं, जो परदे के इस्लामी क़ानून के सिलसिले में आप ऊपर से देखते चले आ रहे हैं। लेकिन अगर असल मक़सद इसी तूफ़ान को रोकना हो, तो इससे ज़्यादा हिक्मत के ख़िलाफ़ और क्या बात हो सकती है कि उसको रोकने के लिए छोटे-छोटे दरवाज़ों पर तो कुंडियां चढ़ाई जाए और सबसे बड़े दरवाज़े को चौपट खोल दिया जाए।

अब आप सवाल कर सकते हैं कि जब ऐसा है तो इस्लाम ने ज़रूरी ज़रूरतों पर चेहरा खोलने की इजाज़त क्यों दी, जैसा कि पहले ख़ुद बयान कर चुके हो? इसका जवाब यह है कि इस्लाम का क़ानून कोई अतिवादी और एकतरफ़ा क़ानून नहीं है। वह एक ओर नैतिक मस्लहतों का ख़्याल करता है और इन दोनों के बीच उसने बेहतरीन सन्तुलन क़ायम किया है। वह अख़्लाकी फ़ित्नों का दरवाज़ा भी बन्द करना चाहता है और उसके साथ किसी इंसान पर ऐसी पाबन्दियां भी लगाना नहीं चाहता, जिसकी वजह से वह अपनी असली ज़रूरतों को पूरा न कर सके। यही वजह है कि उसने औरत के लिए चेहरे और हाथ के बारे में वैसे क़तई हुक्म नहीं दिए, जैसे सत्र छिपाने, और ज़ीनत छिपाने के बारे में दिए हैं, क्योंकि सत्र छिपाने और ज़ीनत छिपाने से ज़िंदगी की ज़रूरतें पूरी करने में औरत को कोई कठिनाई नहीं होती, पर चेहरे और हाथों को हमेशा छिपाए रहने से बड़ी कठिनाई पेश आ सकती है। अत: औरतों के लिए आम क़ायदा यह तै किया गया कि चेहरे पर निक़ाब या घूंघट डाले रहें और इस क़ायदे में 'इल्ला मा ज़-हर मिन्हा' (अलावा उसके जो ज़ाहिर हो) के अपवाद से यह आसानी पैदा कर दी गई कि अगर सच में चेहरा खोलने की ज़रूरत पेश आ जाए, तो वह उसको खोल सकती है, बशर्ते कि हुस्न की नुमाइश नहीं, बल्कि ज़रूरत पूरी करनी, मक़सद हो।

फिर दूसरी ओर से फ़ित्ना पैदा करने के जो ख़तरे थे, उनकी रोक इस तरह की गई कि मर्दों को निगाह नीची रखने का हुक्म दे दिया गया, ताकि अगर कोई

पाकदामन औरत अपनी ज़रूरतों के लिए चेहरा खोल ले तो वे अपनी नज़रें नीची कर लें और बेहूदगी के साथ उसको घूरने से रूके रहें।

परदा करने के हुक्मों पर आप विचार करेंगे, तो आपको मालूम हो जाएगा कि इस्लामी परदा कोई जाहिली रस्म नहीं, बल्कि एक अक़्ली क़ानून है । जाहिली रस्म बे-लचक चीज़ होती है । जो तरीक़ा जिस शक़्ल में चल पड़ा, किसी हाल में उसके भीतर तब्दीली नहीं की जा सकती । जो चीज़ छिपा दी गई वह बस हमेशा के लिए छिपा दी गई । अब मरते मर जाएं पर उसका खुलना ग़ैर-मुम्किन । इसके ख़िलाफ़ अक़्ली क़ानून में लचक होती है, उसमें हालात के हिसाब से बेशी या कमी की गुंजाइश होती है । मौक़े को देख कर उसके आम क़ानूनों में अपवाद की शक्लें रखी जाती हैं । ऐसे में क़ानून की पैरवी अंधों की तरह नहीं की जा सकती । इसके लिए अक़्ल और सूझ-बूझ की ज़रूरत है । सूझ-बूझ रखने वाला अनुयायी ख़ुद फ़ैसला कर सकता है कि कहां क़ानून आम क़ायदे की पैरवी करनी चाहिए और कहां क़ानून की दृष्टि से, 'असली ज़रूरत' के अंतर्गत अपवाद की छूटों से फ़ायदा उठाना ज़रूरी है । फिर वह ख़ुद ही यह राय भी क़ायम कर सकता है कि किसी मौक़े पर छूट से किस हद तक फ़ायदा उठाया जाए और फ़ायदा उठाने की शक्ल में क़ानून के मक़सद को किस तरह ध्यान में रखा जाए । इन तमाम मामलों में असल में, एक नेकनीयत मोमिन का दिल ही सच्चा मोमिन बन सकता है, जैसा कि नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, 'अपने दिल से फ़त्वा मांगो ।' और 'जो चीज़ दिल में खटके उसे छोड़ दो ।' यही वजह है कि इस्लाम की सही पैरवी जिहालत और ना-समझी पैरवी के लिए क़दम-क़दम पर चेतना और समझ की ज़रूरत है।

बाहर निकलने के क़ानून

पहनावा और सत्र (छिपाने के लायक़ अंग) की हदें तै करने के बाद आख़िरी हुक्म जो औरतों को दिया गया है, वह यह है

'और अपने घरों में सम्मान के साथ बैठी रहो और जाहिलियत के ज़माने के से बनाव-सिंगार न दिखाती फिरो।'

(सूरा-अल-अहज़ाब३३:३३)

'और अपने पाँव ज़मीन पर इस तरह न मारती हुई चलें कि जो ज़ीनत उन्होंने छिपा रखी है, वह मालूम हो जाए।'

(सूरा-अल-नूर२४:३१)

'पस दबी ज़ुबान से बात न करो कि जिस आदमी के दिल में रोग हो, वह लोभ में पड़ जाए।'

(सूरा-अल-अहज़ाब३३:३२)

पहली आयत में शब्द 'व-क़र्न' का एक मतलब यह भी है कि'अपने घरों में ठहरी रहो' या 'जमी बैठी रहो'।

इसी आयत के शब्द 'तबर्रूज़ के भी दो मतलब हैं एक:ज़ीनत और ख़ूबियों का ज़ाहिर करना। दूसरे :चलने में नाज़ व अन्दाज़ दिखाना, अकड़ते हुए चलना, इठलाना, लचके खाना, शरीर को झटके देना, ऐसी चाल चलना जिसमें एकअदा पाई जाती हो। आयत में ये दोनों मतलब मुराद हैं। पुरानी जाहिलियत में औरतें ख़ूब बन-संवर कर निकलती थीं, जिस तरह नए दौर की जाहिलियत में निकल रही हैं, फिर चाल भी जान-बूझ कर ऐसी अपनाई जाती थी कि हर क़दम ज़मीन पर नहीं, बल्कि देखने वालों के दिलों पर पड़े।

इस स्थिति को समझने के लिए किसी ऐतिहासिक बयान की ज़रूरत नहीं। किसी ऐसे समाज में तशरीफ़ ले जाइए जहां पश्चिमी तौर-तरीक़े की औरतें तशरीफ़ लाती हों, पुरानी जाहिलियत की इठलाने वाली चाल आप ख़ुद अपनी आंखों से देख लेंगे। इस्लाम इसी से मना करता है। वह कहता है कि एक तो तुम्हारे रहने की सही जगह तुम्हारा घर है। घर से बाहर की ज़िम्मेदारियों से तुम को इसी

लिए अलग रखा गया है कि तुम सुकून व गौरव के साथ अपने घर में रहो और घरेलू ज़िंदगी की ज़िम्मेदारियां निभाओ, फिर भी अगर ज़रूरत पेश आए, तो घर से बाहर निकलना भी तुम्हारे लिए जायज़ है, लेकिन निकलते वक़्त पूरी पाकदामनी ध्यान में रखो, न तुम्हारे पहनावे में कोई शान और भड़क होनी चाहिए कि नज़रों को तुम्हारी ओर खींचे, न हुस्न ज़ाहिर करने के लिए तुम में कोई बेताबी होनी चाहिए कि चलते-चलते कभी चेहरे की झलक दिखाओ और कभी हाथों की नुमाइश करो, न चाल में कोई ख़ास अदा पैदा करनी चाहिए कि निगाहों को अपने आप तुम्हारी ओर मुतवज्जह कर दे, ऐसे ज़ेवर भी पहन कर न निकलो, जिनकी झंकार परायों के मन छू ले। जान-बूझ कर लोगों को सुनाने के लिए आवाज़ न निकालो। हा, अगर बोलने की ज़रूरत पेश आए, तो बोलो, पर रस भरी आवाज़ मत निकालो। इन क़ायदों और हदों का ध्यान रख कर अपनी ज़रूरतों के लिए तुम घर से बाहर निकल सकती हो।

यह है क़ुरआन की शिक्षा। आइए, अब हदीस पर नज़र डाल कर दखें कि नबी (सल्ल.) ने इस शिक्षा के मुताबिक़ समाज में औरतों के लिए क्या तरीक़े मुक़र्रर फ़रमाये थे, और सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम) और उनकी औरतों ने उन पर किस तरह अमल किया ?

जरूरतों के लिए घर से निकलने की इजाज़त

हदीस में है कि परदे के हुक्मों के उतरने से पहले हज़रत उमर (रज़ि.) का तक़ाज़ा था कि ऐ अल्लाह के रसूल! अपनी औरतों को परदा कराइए। एक बार उम्मुल मोमिनीन हज़रत सौदा-बिन्त-जमआ रात के वक़्त बाहर निकलीं, तो हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनको देख लिया और पुकार कर कहा कि सौदा! हमने तुमको पहचान लिया। इससे उनका मक़्सद यह था कि किसी तरह औरतों का घरों से निकलना रूक जाए। उसके बाद जब परदे के हुक्म उतरे, तो हज़रत उमर (रज़ि.) के मन की बात पूरी हो गई। उन्होंने औरतों के बाहर निकलने पर ज़्यादा रोक-टोक शुरू कर दी। एक बार फिर हज़रत सौदा के साथ वही शक्ल पैदा हुई। वह घर से निकलीं और हज़रत उमर (रज़ि.) ने उनको टोका। उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल.) से शिकायत की, हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया

'अल्लाह ने तुमको अपनी ज़रूरतों के लिए बाहर निकलने की इजाज़त दी है।'[७५]

इससे मालूम हुआ कि 'व क़र्-न फ़ी बुयूतिकुन-न' (घरों में ठहरी रहो) के क़ुरआनी हुक्म का मंशा यह नहीं है किऔरतें घर की हदों से क़दम कभी बाहर ही न निकालें, ज़रूरतों के लिए उन्हें बाहर निकलने की पूरी इजाज़त है, पर यह इजाज़त न बिना शर्त है, न बे-हद। औरतों को इसकी इजाज़त नहीं है कि आज़ादी के साथ जहां चाहें फिरें और मर्दों की भीड़ में घुल-मिल जायें। ज़रूरत से शरीअत की मुराद ऐसी वाक़ई ज़रूरतें हैं, जिनमें निकलना और बाहर काम करना औरतों के लिए ज़रूरी हो। अब यह ज़ाहिर है कि तमाम औरतों के लिए तमाम ज़मानों में निकलने और न निकलने की एक-एक शक्ल बयान करना और हर-हर मौक़े के लिए छूट के लिए अलग-अलग हदें मुक़र्रर कर देना मुम्किन नहीं है। अलबत्ता शरीअत बनाने वाले ने ज़िंदगी के आम हालात में औरतों के निकलने के लिए जो हदें मुक़र्रर कर दी थीं और परदे की हदों में जिस तरह कमी व बेशी की थी, उससे इस्लामी क़ानून की स्प्रिट और उसके भाव का अन्दाज़ा किया जा सकता है और उसको समझ कर निजी हालतों और छोटे-छोटे मामलों में परदे की हदों और मौक़ों के हिसाब से उनकी कमी व बेशी के उसूल हर आदमी ख़ुद मालूम कर सकता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम मिसाल के तौर पर कुछ मसअले बयान करते हैं।

मस्जिद में आने की इजाज़त और उसकी हदें

यह मालूम है कि इस्लाम में सबसे अहम फ़र्ज़ नमाज़ है और नमाज़ में मस्जिद में हाज़िर होने और जमाअत में शामिल होने को बड़ी अहमियत दी गई है। पर जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने के बारे में जो हुक्म मर्दों के लिए हैं, उनके बिल्कुल उलट हुक्म औरतों के लिए हैं, मर्दों के लिए वह नमाज़ श्रेष्ठ है जो मस्जिद में जमाअत के साथ हो और औरतों के लिए वह नमाज़ श्रेष्ठ है जो घर में एकांत में पढ़ी जाए। इमाम अहमद और तबरानी ने उम्मे-हुमैद सअ़दीया की यह हदीस नक़ल की है कि

---

75 `h ~hwV-gr hXrgm| H$m ¼wbmgm h¡, Xo{IE _w{ñb_ Am¡a ~w¼mar dµJ¡ah,

‘उन्होंने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल.)! मेरा जी चाहता है कि आपके साथ नमाज़ पढ़ू। हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया, मुझे मालूम है, पर तेरा, अपने घर में एक किनारे नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तू अपने कमरे में नमाज़ पढ़े और कमरे में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तू अपने घर की दालान में नमाज़ पढ़े और तेरा दालान में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि तू अपने मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़े और तेरा अपने मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ना इस से बेहतर है कि जामा मस्जिद में नमाज़ पढ़े।[७६]

---

76 Am¡aV H$mo Bg µH$Xa V§hmB© _| Z_mµO n‹TZo H$s {hXm`V {Og _ñbhV go Xr JB© h¡, CgH$mo ¼wX Am¡aV| µÁ`mXm ~ohVa g_P gH$Vr h¢ & _hrZo _| Hw$N {XZ Eogo AmVo h¢ {OZ_| Am¡aV H$mo _O~ya hmo H$a Z_mµO Nmo‹SZr n‹SVr h¡ Am¡a Bg Vah dh ~mV µOm{ha hmo OmVr h¡ {Ogo H$moB© h`mXma Am¡aV AnZo ^mB©-~hZm| na ^r µOm{ha H$aZm ngÝX Zht H$aVr & ~hwV-gr Am¡aV| Bgr e_© H$s dOh go Z_mµO Nmo‹SZo dmbr ~Z OmVr h¢ & earAV ~ZmZo dmbo Zo Bg ~mV H$mo _hgyg H$aHo$ {hXm`V µ\$a_m`r {H$ {Nn H$a AHo$bo _| EH$ H$moZo _| Z_mµO n‹Tm H$amo, Vm{H$ {H$gr H$mo `h _mby_ hr Zhmo {H$ Vw_ H$~ Z_mµO n‹TVr hmo Am¡a H$~ Nmo‹S XoVr hmo, na `h {gµ\©$ {hXm`V h¡, VmH$sX Am¡a hwŠ_ Zht h¡ & Am¡aV| Ka _| AnZr AbJ O_mAV H$a gH$Vr h¢ Am¡a Am¡aV CZH$s B_m_V H$a gH$Vr h¡ & Cå_o-daµH$m-{~ÝV-Zm¡µ\$wb H$mo Z~r (gëb.) Zo BOmµOV Xr Wr {H Am¡aVm| H$s B_m_V H$amo & (A~yXmD$X) Xmao µHw$ËZr Am¡a ~¡hµH$s H$s [adm`V h¡ {H$ hµOaV AmBem (a{µO.) Zo Am¡aVm| H$s B_m_Z H$s Am¡a bmBZ Ho$ ~rM _| I‹So hmo H$a Z_mµO n‹TmB© & Bggo `h _g²Abm _mby_ hmoVm h¡ {H $Am¡aV O~ Am¡aVm| H$s O_mAV

इसी जैसी बात बताने वाली हदीस अबूदाऊद में हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि.) से नक़ल की गई है, जिसमें हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया

'औरत का अपनी कोठरी में नमाज़ पढ़ना इससे बेहतर है कि वह अपने कमरे में नमाज़ पढ़े और उस का अपने? में नमाज़ इससे बेहतर है किवह अपनी कोठरी में नमाज़ पढ़े।'

देखिए, यहाँ तर्तीब बिल्कुल उलट गयी है। मर्द के लिए सब से छोटे दर्जे की नमाज़ यह है किवह बड़ी से बड़ी जमाअत में शरीक हो, पर औरत के लिए इसके उलट अत्यधिक तंहाई की नमाज़ में श्रेष्ठता है और इस ख़ुफ़िया नमाज़ को न सिर्फ़ जमाअत के साथ की नमाज़ पर तर्जीह दी गयी है, बल्कि उस नमाज़ से भी श्रेष्ठ कहा गया है, जिससे बढ़ कर कोई नेमत मुसलमान के लिए हो ही नहीं सकती थी, यानी मस्जिदे नबवी की जमाअत, जिस के इमाम ख़ुद इमामुल-अंबिया मुहम्मद (सल्ल.) थे।[७७] आख़िर इस अन्तर करने की वजह क्या है? यही ना किशरीअत बनाने वाले ने औरत के बाहर निकलने को पसन्द नहीं किया और जमाअत में मर्दों और औरतों केमिश्रित होने को रोकना चाहा।

मगर नमाज़ एकमुक़द्दस इबादत है और मस्जिद एकपाक जगह है। हिक्मतों वाले शारेअ ने मर्दों, औरतों केमेल-जोल को रोकने केलिए अपनी मंशा को तो श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता में फ़र्क़ करके ज़ाहिर कर दिया, मगर ऐसे पाकीज़ा काम के लिए ऐसी पाकजगह आने से औरतों को मना नहीं किया। हदीस में यह इजाज़त जिन शब्दों के साथ आयी है उससे बे-मिसाल हिक्मत ही सामने आयी है, फ़रमाया -

---

H$mo Z_mµO n‹TmE Vmo Cgo _X© B_m_ H$s Vah gµ\ Ho AmJo Zht, ~{ëH$ gµ\$ Ho$ X{_©`mZ I‹Sm hmoZm Mm{hE &

[77] hµOaV Cå_o-hw_¡X gµAXrµ`m$(a{µO.) Zo Z~r$(gëb.) Ho gmW Z_mµO n‹TZo H$s µIm{he Om{ha H$s Wr, Vmo Z~r$(gëb.) _{ñOXo Z~dr _|$(O_mAV) H$mo Z_mµO n‹TmVo Wo &
(nŒH$meH)

'ख़ुदा की बंदियों को ख़ुदा की मस्जिद में आने से मना न करो। जब तुम में से किसी की बीवी मस्जिद जाने की इजाज़त मांगे, तो वह उसको मना न करे।'
(हदीस-बुख़ारी व मुस्लिम)

'अपनी औरतों को मस्जिदों से न राको। पर उनके घर उनके लिए ज़्यादा बेहतर हैं।' (हदीस-अबूदाऊद)

ये शब्द ख़ुद ज़ाहिर कर रहे हैं कि शारेअ औरतों को मस्जिद में जाने से रोकता तो नहीं है, क्योंकि मस्जिद में नमाज़ के लिए जाना कोई बुरा काम नहीं, जिसको नाजायज़ क़रार दिया जा सके, पर मस्लहतें इसका भी तक़ाज़ा नहीं करतीं कि मस्जिदों में मर्दों औरतों की जमाअत मिली-जुली हो, इसलिए उसके आने की इजाज़द तो दी, पर यह नहीं फ़रमाया कि औरतों को मस्जिदों में भेजो या अपने साथ लाया करो, बल्कि सिर्फ़ यह कहा कि अगर वे उत्तम नमाज़ को छोड़ कर मामूली दर्जे की नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में आना ही चाहें और इजाज़त मागें तो मना न करो। हज़रत उमर (रज़ि.) जो इस्लामी सार के बड़े ज्ञाता थे,शारेअ की इस हिक्मत को ख़ूब समझते थे, अत: मुअत्ता में ज़िक्र किया गया है कि उनकी बीवी आतिका-बिन्त-ज़ैद से हमेशा इस मामले में उनका संघर्ष रहा करता था। हज़रत उमर (रज़ि.) नहीं चाहते थे कि वह मस्जिद में जाएं, पर उन्हें जाने पर इसरार था। वह इजाज़त मांगतीं तो आप ठीक-ठीक नवी सल्ल. के हुक्म पर अमल करके बस ख़ामोश हो जाते। मतलब यह है कि हम तुम्हेंप रोकते नहीं हैं, पर साफ़-साफ़ इजाज़त भी न देंगे। वह भी अपनी धुन की पक्की थीं,कहा करती थीं कि ख़ुदा की क़सम! मैं जाती रहूंगी जब तक कि आप साफ़ लफ़्ज़ों में मना नहीं करेंगे।[७८]

---

[78] `h hmb {gµ\©$ C_a (a{µO.) hr H$s ~rdr H$m Z Wm, ~{ëH$ Z~r (gëb.) Ho$ µO_mZo _| ~hwV gr Am¡aV| O_mAV go Z_mµO n‹TZo Ho$ {bE _{ñOX Om`m H$aVr Wt & A~yXmD$X _| h¡ {H$ Z~r (gëb.) H$s _{ñOX _| H$^r-H$^r Am¡aVm| H$s Xmo-Xmo gµ\|$ hmo OmVr Wt &

मस्जिद में आने की शर्ते

मस्जिद में हाज़िरी की इजाज़त देने के साथ कुछ शर्तें भी मुक़र्रर कर दी गयीं। इनमें से पहली शर्त यह है कि दिन के वक़्तों में मस्जिद न जाएं, बल्कि सिर्फ़ उन नमाज़ों में शरीक हों, जो अंधेरे में पढ़ी जाती हैं, यानी इशा और फ़ज्र।

'इब्ने उमर रज़ि. से रिवायत है कि हुज़ूर सल्ल. ने फ़रमाया, औरतों को रात के वक़्त मस्जिदों में आने दो।'

(-तिर्मिज़ी, बुख़ारी)

'हज़रत इब्ने उमर रज़ि. के शागिर्दे ख़ास हज़रत नाफ़ेअ कहते हैं कि रात को ख़ास इस लिए किया कि रात के अंधेरे में अच्छी तरह परदादारी हो सकती है।'

'हज़रत आयशा रज़ि. फ़रमाती हैं कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम सुबह की नमाज़ ऐसे वक़्त पढ़ते थे कि जब औरतें नमाज़ के बाद अपनी ओढ़नियों में लिपटी हुई मस्जिद से पलटतीं, तो अंधेरे की वजह से पहचानी न जाती थीं।'[७९]
(हदीस तिर्मिजी)

दूसरी शर्त यह है कि मस्जिद में ज़ीनत के साथ न आयें और ख़ुश्बू लगा कर न आयें। हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि एक बार हुज़ूर (सल्ल.) मस्जिद में तशरीफ़ रखते थे कि मुज़ैना क़बीले की एक बहुत बनी-संवरी हुई औरत बड़े नाज़ व अदा के साथ मस्जिद में आयी। हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया, लोगो! अपनी औरतों को ज़ीनत और नाज़ व अदा के साथ मस्जिद में आने से रोको।[८०]

---

79 Bgr {df` H$s hXrg|, ~w¼mar, _w{ñb_, A~yXmD$X Am¡a hXrg H$s Xygar {H$Vm~m| _| ^r [adm`V H$s JB© h¢ & BgHo$ gmW hXrg H$s {H$Vm~ _| `h ^r _m¡OyX h¡ {H$ Z_mµO n‹TmZo Ho$ ~mX Z~r (gëb.) Am¡a V_m_ _X© Z_mµOr ~¡Ro ahVo Wo, Vm{H$ Am¡aV| CR H$a Mbr OmE, CgHo$ ~mX Amn Am¡a g~ bmoJ I‹So hmo OmVo &

80 BãZo _mOm, ~m~ {µ\$ËZVw{ÝZgmB

ख़ुश्बू के बारे में फ़रमाया कि जिस रात तुम को नमाज़ में शरीक होना हो, उस रात को किसी क़िस्म का इत्र लगा कर न आओ, न बख़ूर इस्तेमाल करो। बिल्कुल सादा कपड़े में आओ। जो औरत ख़ुश्बू लगा कर आएगी, उसकी नमाज़ न होगी।[८१]

तीसरी शर्त यह है कि औरतें जमाअत में मर्दों के साथ मिलें नहीं और न आगे की सफ़ों में आएं। उन्हें मर्दों के पीछे खड़ा होना चाहिए। फ़रमाया कि 'मर्दों के लिए बेहतरीन जगह आगे की सफ़ों में है और सबसे बुरी जगह पीछे की सफ़ों में और औरतों के लिए सबसे बेहतर जगह पीछे की सफ़ों में है और सब से बुरी जगह आगे की सफ़ों में।'

जमाअत के बारे में हुज़ूर (सल्ल.) ने यह क़ायदा ही मुक़र्रर कर दिया था कि औरत और मर्द पास-पास खड़े हो कर नमाज़ न पढ़ें, चाहे वे शौहर और बीवी या मां और बेटे ही क्यों न हों। हज़रत अनस (रज़ि.) का बयान है कि मेरी नानी मुलैका (रज़ि.) ने नबी सल्ल. की दावत कीऽ। खाने के बाद आप नमाज़ के लिए उठे। मैं और यतीम (यह शायद हज़रत अनस (रज़ि.) के भाई का नाम था) हुज़ूर (सल्ल.) के पीछे खड़े हुए और मुलैका हमारे पीछे खड़ी हुई।[८२] हज़रत अनस (रज़ि.) की दूसरी रिवायत है कि हुज़ूर (सल्ल.) ने हमारे घर में नमाज़ पढ़ी। मैं और यतीम आपके पीछे खड़े हुए और मेरी मां उम्मे-सुलैम मेरे पीछे खड़ी हुई।[८३]

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि.) की रिवायत है कि एक बार हुज़ूर (सल्ल.) नमाज़ के लिए उठे। मैं आपके पहलू में खड़ा हुआ और हज़रत आइशा (रज़ि.) हमारे पीछे खड़ी हुई।[८४]

---

81 _wAÎmm B_m_ _m{bH$, _w{ñb_, BãZo _mOm
82 {V{_©µOr, ~m~ _m Om-A {µ\$aOw{b `wgëbr d _-Ahy [aOmbwZ d {Zgm
83 ~w¼mar, ~m~wb _a-A{V dhXwhm VHy$Zw gµâµ\$Z
84 ZgB©, ~m~ _m¡µH$µ\w$b B_m_ BµOm H$m-Z _-Ahyg~r`wZ d_-a-AVwZ

चौथी शर्त यह है कि औरतें नमाज़ में आवाज़ बुलन्द न करें। नियम यह बनाया गया कि आगर नमाज़ में इमाम को किसी चीज़ पर तंबीह करनी हो, तो मर्द सुब्हानल्लाह कहें और औरतें दस्तक दें।[८५]

इन तमाम हदों और पाबंदियों के बावजूद जब हज़रत उमर (रज़ि.) को अपने शासन-काल में जमाअत में मर्दों और औरतों के मेल-जोल का डर हुआ तो आपने मस्जिद में औरतों के लिए एक दरवाज़ा ख़ास फ़रमा दिया और मर्दों को इस दरवाज़े से आने-जाने से रोक दिया।[८६]

हज में औरतों का तरीक़ा

इस्लाम का दूसरा सामूहिक फ़र्ज़ हज है। यह मर्दों की तरह औरतों पर भी फ़र्ज़ है, मगर मुम्किन हद तक औरतों को तवाफ़ के मौक़े पर मर्दों के साथ मिले-जुले होने से रोका गया है। बुख़ारी में 'अता' से रिवायत है कि नबी (सल्ल.) के ज़माने में औरतें मर्दों के साथ तवाफ़ करती थीं, पर मिल-जुल कर नहीं।[८७] फ़त्हुल-वारी में इब्राहीम नख़ई से रिवायत है कि हज़रत उमर (रज़ि.) ने तवाफ़ में औरतों और मर्दों को गड्ड-मड्ड होने से रोक दिया था। एक बार एक मर्द को आपने औरतों के मज्मे में देखा, तो पकड़ कर कोड़े लगाये।[८८]

मुअत्ता में है कि हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि.) अपने बाल-बच्चों को मुज़दल्फ़ा से मिना आगे रवाना कर दिया करते थे, ताकि लोगों के आने से पहली सुबह की नमाज़ और रमी से फ़ारिग़ हो जाएं। साथ ही हज़रत अबूबक्र की पुत्री हज़रत अस्मा (रज़ि.) सुबह अंधेरे-मुंह मिना तशरीफ़ ले जाती थीं कि नबी (सल्ल.) के ज़माने में औरतों के लिए यही चलन था।
(हदीस-मुअत्ता)

---

85 ~w¼mar, ~m~wÎmñµ\$s{µH$ {b{ÝZgmB, A~yXmD$X, ~m~wÎmñµ\$s{µH$ {µ\$ñgbm{V

86 A~yXmD$X, ~m~ EVµOmbw{ÝZgmB {µ\$b _gm{OXr A{Z[a©Om{b

87 ~m~ V`mµ\w$ {ÝZgmB _A[a©Omb

88 µ\$Ëhwb ~mar, ^mJ 3, n¥. 312

जुमा और दोनों ईद की नमाज़ो में औरतों की शिर्कत

जुमा और दोंनों ईद की नमाज़ों के इज्तिजाअ़ (जन-सभा) इस्लाम में जैसी अहमियत रखते हैं, बयान से बाहर है। इनकी अहमियत ही को नज़र में देख कर शारेअ़ ने ख़ास तौर पर इन सभाओं के लिए वह शर्त समाप्त कर दी, जो आम नमाज़ों के लिए थी यानी यह कि दिन में जमाअत के साथ शरीक न हों। अगरचे जूमा के बारे में यह स्पष्ट किया गया है कि औरतें जुमा के फ़र्ज़ का अपवाद हैं, (अबूदाऊद)। और ईद की नमाज़ों में भी औरतों की शिर्कत ज़रूरी नहीं, लेकिन अगर वह चाहें तो जमाअत के साथ नमाज़ की दूसरी शर्तों की पाबन्दी करते हुए इन सामूहिक नमाज़ों में शरीक हो सकती हैं। हदीस से साबित है कि रसूलुल्लाह (सल्ल.) ख़ुद अपनी औरतों को ईद की नमाज़ों में ले जाते थे।

> 'उम्मे अतीया (रज़ि.) की रिवायत है की अल्लाह के रसूल (सल्ल.) कुंवारी और जवान लड़कियों और घर-गिरहस्तिनों और माहवारी वाली औरता को ईद की नमाज़ों में ले जाते थे, जो औरतें नमाज़ के क़ाबिल न होतीं, वे जमाअत से अलग रहतीं और (नमाज़ के बाद होने वाली) दुआ में शरीक हो जाती थीं।'
> (तिर्मिज़ी)

> 'इब्ने-अब्बास (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) अपनी बेटियों और बीवीयों को ईद की नमाज़ों में ले जाते थे।'
> (इब्ने माजा)

क़ब्रों की ज़ियारत और जनाज़ों में शिर्कत

मुसलमान के जनाज़े में शरीक होना शरीअत में फ़र्ज़े किफ़ाया[८९] क़रार दिया गया है और उसके बारे में जो ताकीदी हुक्म है, जानकारों से छिपा हुआ नहीं, पर वह सब मर्दों के लिए है। औरतों को जनाज़ों मे शिर्कत से मना किया गया है। अगरचे इस रोक में सख़्ती नहीं है और कभी-कभी इजाज़त भी दी गयी है,

---

89 \$µO}-{H$µ\$m`m AWm©V² ~ñVr Ho$ Hw$N bmoJ$Adí`H$ earH$ hm| & `h, ~mµH$s Am~mXr H$s Amoa go H$mµ\$s hmoJr &
(nŒHmeH)

लेकिन शारेअ़ के कथनों से साफ़ मालूम होता है कि औरतों का जनाज़े में जाना कराहत से ख़ाली नहीं। बुख़ारी में उम्मे-अतीया (रज़ि.) की हदीस है कि 'हमको जनाज़ों के साथ चलने से मना किया गया था, पर सख़्ती के साथ नहीं।'

(बाब इत्तिबाअुन्निसाइअ जनाज़ति)

इब्ने-माजा और नसई में रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) एक जनाज़े में शरीक थे। एक औरत नज़र आई। हज़रत उमर ने उसको डांटा, हुज़ूर (सल्ल.) ने फ़रमाया, 'ऐ उमर! इसे छोड़ दो! मालूम होता है कि वह औरत मैयत की कोई क़रीबी रिश्तेदार होगी। ग़म की ज़्यादती से मजबूर हो कर साथ चली आयी होगी। हुज़ूर (सल्ल.) ने उसकी भावनाओं की रियायत करके हज़रत उमर (रज़ि.) को मना कर दिया।

ऐसा ही मामिला क़ब्रों की ज़ियारत की भी है। अैरतें नर्म-दिल होती हैं। अपने मुर्दा रिश्तेदारों की याद उनके दिलों में ज़्यादा गहरी होती है। उनकी भावनाओं को बिल्कुल कुचल देना शारेअ़ ने पसन्द न फ़रमाया, पर यह साफ़ कह दिया कि अैरतों का क़ब्रों पर ज़्यादा जाना मना है।

तिर्मिज़ी में हज़रत अबूहुरैरह (रज़ि.) की हदीस है, 'अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने क़ब्रों पर बहुत ज़्यादा जाने वालियों पर लानत फ़रमायी है। (बाब मा जा-अ फ़ी कराहियति ज़ियारतिल क़ुबूरि लिन्निसाइ)[९०]

हज़रत आइशा (रज़ि.) अपने भाई अब्दुर्रहमान-बिन-अबीबक्र की क़ब्र पर तशरीफ़ ले गयीं, तो फ़रमाया, 'ख़ुदा की क़सम ! अगर मैं तुम्हारी वफ़ात मौजूद होती तो अब तुम्हारी क़ब्र की ज़ियारत को न आती।[९१]

अनस-बिन-मालिक (रज़ि.) की रिवायत है कि नबी (सल्ल.) ने एक औरत को क़ब्र के पास बैठा रोते देखा तो उसे मना फ़रमाया, बल्कि सिर्फ़ 'अल्लाह से डरो और सब्र करो' फ़रमा दिया।[९२]

---

[90] BãZo _mOm _| `hr {df` hµOaV BãZo Aã~mg Am¡a Cñ_mZ {~Z gm{~V go ^r ZµH$b {H$`m J`m h¡ &

[91] {V{_©µOr, ~m~ _m-Om-A µ\$s {µO`ma{Vb µHw$~y[a {b{ÝZgmB

[92] ~w¼mar, ~m~ {µO`ma{Vb µHw$~y[a

इन हुक्मों पर ग़ौर कीजिए। नमाज़ एक मुक़द्दस इबादत है। मस्जिद एक पाक जगह है। हज में इंसान इंतिहाई पाक विचारों के साथ ख़ुदा के दरबार में हाज़िर होता है। जनाज़ों और क़ब्रों की हाज़िरी में हर आदमी के सामने मौत का नक़्शा होता है और दुख और ग़म के बादल छाए हुए होते हैं। ये सब मौक़े ऐसे होते हैं जिनमें यौन भावनाएं या तो बिल्कुल ख़त्म होती हैं या रहती भी हैं तो दूसरी पवित्र भावनाओं से दबी हुई होती हैं, पर इसके बावजूद शारेअ ने ऐसी सभाओं में भी मर्दों और औरतों का मिला-जुला होना पसन्द न किया। मौक़े की पाकीज़गी, मक़्सदों की पाकी और औरतों की भावनाओं की रियायत में उन्हें घर से निकलने की इजाज़त तो दे दी, कुछ मौक़ों पर ख़ुद भी साथ ले गए, लेकिन परदे की इतनी पाबंदियाँ लगा दीं कि फ़ित्ने के मामूली ख़तरे भी बाक़ी न रहें। फिर हज के सिवा तमाम दूसरे मामलों के बारे में फ़रमा दिया कि इनमें औरतों का शरीक न होना ज़्यादा बेहतर है।

जिस क़ानून का यह रूझान हो, क्या उससे आप यह उम्मीद रखते हैं कि वह स्कूलों और कालेजों में, दफ़्तरों और कारख़ानों में पार्टियों और मनोरंजन-स्थलों मे, थिएटरों और सिनेमाओं में, चाय-घरों और नाच-घरों में मर्दों-औरतों के मेल-जोल को जायज़ रखेगा।

युद्ध में औरतों की शिर्कत

परदे की हदों की सख़्ती आपने देख ली। अब देखिए कि इन में नर्मी कहाँ और किस ज़रूरत से की गई है ?

मुसलमान युद्ध में होते हैं। आम मुसीबत का वक़्त है। हालात मांग कर रहे हैं कि क़ौम की पूरी सामूहिक शक्ति रक्षा के काम में लगा दी जाए, ऐसी हालत में इस्लाम क़ौम की औरतों को आम इजाज़त देता है कि वे युद्ध-सेवाओं में हिस्सा लें, पर इसके साथ यह सच्चाई भी उसके नज़र में है कि जो मां बनने के लिए बनायी गयी है, वह सर कटाने और ख़ून बहाने के लिए नहीं बनाई गयी, उसके हाथ में तीर और ख़ंजर देना उसकी प्रकृति को तोड़ना-मरोड़ना है, इस लिए वह औरतों को अपनी जान व आबरू की हिफ़ाज़त के लिए हथियार उठाने की इजाज़त तो देता है, पर आम तौर से औरतों को युद्ध-सेवा लेना और उन्हें फ़ौजों में भर्ती करना उसकी पालिसी से बाहर है। वह लड़ाई में उनसे सिर्फ़ यह सेवा लेता है कि घायलों की मरहम-पट्टी करें, प्यासों को पानी पिलाएं,

सिपाहियों के लिए खाना पकाएं और मुजाहिदों के पीछे कैम्प की हिफ़ाज़त करें। इन कामों के लिए परदे की पाबंदियाँ बहुत कम कर दी गई हैं, बल्कि इन सेवाओं के लिए थोड़ी घट-बढ़ के साथ वही पहनावा पहनना शरीअत में जायज़ है जो आजकल ईसाई ननें पहनती हैं।

तमाम हदीसों से साबित है कि लड़ाई में नबी (सल्ल.) की बीवीयां और मुसलमान औरतें हुज़ूर (सल्ल.) के साथ जातीं और मुजाहिदों को पानी पिलाने और घायलों की मरहम-पट्टी करने की सेवांए पूरी करती थीं। यह अमल परदे के हुक्म के उलरने के बाद भी जारी रहा।[९३]

तिर्मिज़ी में है, उम्मे-सुलेम और अंसार की कुछ दूसरी औरतें ज़्यादातर लड़ाइयों में हुज़ूर सल्ल. के साथ गई हैं।[९४]

बुख़ारी में है कि एक औरत ने हुज़ूर (सल्ल.) से अर्ज़ किया, मेरे लिए दुआ फ़रमाइए कि 'मैं भी समुद्री लड़ाई में जाने वालों के साथ रहूं।' आपने फ़रमाया, 'अल्लाह ! इसे भी उनमें बना'।[९५]

उहुद की लड़ाई के मौक़े पर जब मुजाहिदों के पांव उखड़ गए थे, हज़रत आइशा और उम्मे सुलैम अपनी पीठ पर पानी की मश्कें लाद-लाद कर लाती थीं और लड़ने वालों को पानी पिलाती थीं। हज़रत अनस कहते हैं कि इस हाल में मैंने उनको पांयचे उठाये दौड़-दौड़ कर आते-जाते देखा।[९६]

एक दूसरी औरत उम्मे-सलैत के बारे में हज़रत उमर (रज़ि.) ने ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का यह कथन नक़ल किया है कि 'उहुद की लड़ाई में दाएं और बाएं जिधर मैं देखता था, उम्मे-सुलैत मेरी हिफ़ाज़त के लिए जान लड़ाती हुई नज़र आती थीं।

---

93 ~w¼mar, ~m~ h_bwa© Ow{bb _a-A-V {µ\$b µJ{µÁd
94 {V{_©Or, ~m~, _m Om-A µ\$s ¼wê${O{ÝZgmB {µ\$b µJ{µÁd,
95 ~w¼mar,
96 ~w¼mar, _w{ñb_

उसी लड़ाई में रूबैअ़-बिन्त-मुअव्वज़ और उनके साथ औरतों की एक टोली घायलों की मरहम-पट्टी में लगी हुई थी और यही औरतें घायलों को उठा-उठा कर मदीना ले जा रहीं थीं।[९७]

हुनैन की लड़ाई में उम्में-सुलैम एक ख़ंजर हाथ में लिए रही थीं। हुज़ूर (सल्ल.) ने पूछा, 'यह किस लिए है?' कहने लगीं कि 'अगर कोई मुश्रिक मेरे क़रीब आया तो उसका पेट फाड़ दूंगी।'[९८]

उम्मे-अतीया सात लड़ाइयों में शरीक हुई। कैम्प की हिफ़ाज़त, सिपाहियों के लिए खाना पकाना, घायलों और बीमारों की देख-भाल का काम उनके सुपुर्द था।[९९]

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि.) का बयान है कि जो औरतें लड़ाई की ऐसी सेवाएं पूरी करती थीं, उनको ग़नीमत[१००] के मालों में से इनाम दिया जाता था।[१०१]

इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इस्लामी परदे का अंदाज़ किसी जाहिली रस्म जैसा नहीं है, जिसमें मस्लहतों और ज़रूरतों के हिसाब से कमी-बेशी न हो सकती हो। जहां उचित ज़रूरतें पेश आ जाएं, वहां उसकी पाबंदियी कम भी हो सकती हैं। न सिर्फ़ चेहरा और हाथ खोले जा सकते हैं, बल्कि जिन अंगों को सत्र में शामिल किया गया है, उन के भी कुछ हिस्से अगर ज़रूरत भर खुल जायें तो हरज नहीं। जब ज़रूरत पूरी हो जाए तो परदे के लिए उन्हीं हदों पर क़ायम हो जाना चाहिए जो आम हालात के लिए मुक़र्रर किए गए हैं। जिस तरह यह परदा जाहिली परदा नहीं है, उसी तरह इस में कमी जाहिली आज़ादी की तरह नहीं। मुसलमान औरत का हाल यूरोप में औरत की तरह नहीं है कि जब वह

---

[97] ~w¼mar, ~m~, _XmaVw{ÝZgmBb Owahm {µ\$b µJ{µÁd

[98] BãZo _mOm,

[99] _w{ñb_, ~m~, µJµÁdVw{ÝZgmB _A[a©Om{b,

[100] "µJZr_V' = eÌw-goZm Ûmam Nmo‹Sr JB© gm_JŒr (nŒHmeH)

[101] _w{ñb_

लड़ई की ज़रूरत के लिए अपनी हदों से बाहर निकली, तो उसने लड़ाई ख़त्म होने के बाद अपनी हदों में जाने से इंकार कर दिया।

अन्त

यह है वह न्याय-बिन्दु और बीच का रास्ता जिस की, दुनिया अपनी तरक़्क़ी, ख़ुशहाली और अख़्लाक़ी अम्न के लिए मुहताज और सख़्त मुहताज है। जैसा कि शुरू में बयान किया जा चुका, दुनिया हज़ारों साल से संस्कृति में औरत का यानी इंसानी दुनिया के पूरे आधे हिस्से का स्थान तै करने में ठोकरें खा रही है, कभी एक अति की ओर जाती है, कभी दूसरी अति की ओर। ये दोनों अतियां उसके लिए नुक़्सानदेह साबित हुई हैं। तजुर्बे इस नुक़्सान पर गवाह हैं। इन अतियों के बीच न्याय और बीच के सास्ते की जगह, जो बुद्धि व प्रकृति के ठीक मुताबिक़ और इंसानी ज़रूरतों के ठीक मुनासिब है, वही है, जो इस्लाम बताता है। पर अफ़सोस है कि आज के ज़माने में बहुत-सी ऐसी रूकावटें पैदा हो गयी हैं जिनकी वजह से लोगों के लिए उस सीधे रास्ते को समझना और उसकी क़द्र करना मुश्किल हो गया है।

इस रूकावटों में सबसे अहम रूकावट यह है कि आज के ज़माने का इंसान आम तौर से 'पीलिया' का शिकार हो गया है और, पाश्चात् सभ्यता में रंगे, पूर्ववासी लोगों पर इस पीलीया का एक और ख़तरनाक क़िस्म का हमला हुआ है, जिसे मैं 'सफ़ेद पीलिया' कहता हूं। मैं अपने इस साफ़-साफ़ कहने पर अपने दोस्तों और भाइयों से माफ़ी चाहता हूं, पर जो बात सच्ची है, उसके ज़ाहिर करने में कोई मुरव्वत, रूकावट न होनी चाहिए।

यह एक सच्चाई है कि इस्लाम का कोई हुक्म और मस्अला ऐसा नहीं जो साबित इल्मी हक़ीक़तों के ख़िलाफ़ हो, बल्कि ज़्यादा सही यह है कि जो कुछ इल्मी हक़ीक़त है, वही ठीक इस्लाम है, पर इसको देखने के लिए बे-रंग निगाह की ज़रूरत है, ताकि हर चीज़ को उसके असली रंग में देख सके। विशाल दृष्टि की ज़रूरत है, ताकि हर चीज़ के तमाम पहलुओं को देख सके। खुले दिल और अच्छे स्वभाव की ज़रूरत है, ताकि हक़ीक़तें जैसी कुछ भी हों, उनको वैसा ही मान ले और अपनी भावनाओं के आधीन बनाने के बजाए अपनी भावनाओं को उनके आधीन कर दे। जहां यह चीज़ न हो, वहां अगर इल्म हो तो बेकार है, रंगीन निगाह जो कुछ देखेगी, उसी रंग में देखेगी जो उस पर चढ़ा हुआ है। बंधी नज़र मस्अलों और मामलों के सिर्फ़ उन्हीं हिस्सों तक जा सकेगी जो उसके सामने हों, जिधर वह देख रही है, फिर उन सबके बावजूद जो इल्मी हक़ीक़तें

अपनी असली हालत में अन्दर तक पहुंच जाएंगी, उन पर भी दिल की तंगी और प्रकृति की टेढ़ अपना अमल करेगी। वह हक़ीक़तो से मांग करेगी कि वे उसके मन के तकाज़ो और उसकी भावनाएं और रूझान के मुताबिक़ ढल जाएं और अगर वे न ढलेंगे, तो वह उनकी हक़ीक़त जानने के बावजूद उनको नज़रंदाज़ कर देगी और अपनी ख़्वाहिशों की पैरवी करेगी। ज़ाहिर है कि इस रोग में जब इंसान गिरफ़्तार हो, तो ज्ञान, तजुर्बा वग़ैरह कोई चीज़ भी उसकी रहनुमाई नहीं कर सकती। और ऐसे रोगी के लिए बिल्कुल नामुम्किन है कि वह इस्लाम के किसी हुक्म को ठीक-ठीक समझ सके, क्योंकि इस्लाम पाकृतिक दीन, बल्कि प्रकृति ही है। पाश्चात्य जगत के लिए इस्लाम का समझना इसी लिए मुश्किल हो गया है कि वह इस बीमारी में फंस गया है। उसके पास जितना भी ज्ञान[१०२] है, वह सब का सब 'इस्लाम' है, पर खुद उसकी अपनी निगाह रंगीन है, फिर यही रंग 'सफ़ेद पीलिया' बन कर पूरब के नए पढ़े-लिखे लोगों की निगाह पर छा गया है और यह बीमारी उनको भी ज्ञानात्मक सच्चाइयों से सही नतीजा निकालने और ज़िंदगी के मस्अलों को प्राकृतिक दृष्टि से देखने में रोक बनती है। इनमें से जो मुसलमान हैं, वे, हो सकता है कि इस्लाम धर्म पर ईमान रखते हों, उसकी सच्चाई भी मानते हों, दीन की पैरवी की भावना से भी ख़ाली न हों, पर वे बेचारे अपनी आंखों की पीलिया को क्या करें, कि जो कुछ इन आँखों से देखते हैं, उसका रंग ही उन्हें 'अल्लाह के रंग' के ख़िलाफ़ नज़र आता है।

दूसरी वजह जो सही समझ में रोक बनती है, यह है कि आम तौर पर लोग जब इस्लाम के किसी मस्अले पर विचार करते हैं, तो उस व्यवस्था और सिस्टम पर सामूहिक रूप से निगाह नहीं डालते, जिससे वह मस्अला मुताल्लिक़ होता है, बल्कि व्यावस्था से अलग करके सिर्फ़ उस ख़ास मस्अले को बहस में ले आते हैं। नतीजा यह होता है कि वह मस्अला तमाम हिक्मतों से ख़ाली नज़र आने लगता है और उस में तरह-तरह के शक होने लगते हैं। सूद के मस्अले में यही हुआ कि उसको इस्लाम (यानी प्रकृति) के आर्थिक नियम और अर्थ-व्यवस्था से अलग करके देखा गया, सूद-संबंधी इसलामी कानून में हज़ारों कमज़ोरियां नज़र आने लगीं, यहां तक कि बड़े-बड़े (मुस्लिम) विद्वानों को भी शरीअत के मक़्सदों के ख़िलाफ़ उसमें कांट-छांट की ज़रूरत महसूस हुई।

---

[102] kmZ `mZr gƒmB© H$m kmZ, Z {H$ {gÕmVm| Am¡a gƒmB`m| go {ZH$mbo J`o ZVrOo

ग़ुलामी, बहुपत्नी-विवाह, दम्पति-अधिकार और ऐसे ही बहुत से मस्अलों में इस बुनियादी ग़लती को दोहराया गया है और परदे का मस्अला भी इसका शिकार हुआ है। अगर आप पूरी इमारत को देखे बिना सिर्फ़ उसके किसी एक खम्भे को देखेंगे, तो निश्चय ही आप को हैरत होगी कि यह आख़िर क्यों लगाया गया है ? आपको इसका क़ायम किया जाना उद्देश्यहीन नज़र आएगा। आप कभी न समझेंगे कि इंजीनियर ने इमारत को संभालने के लिए किस अनुमान और सोच-विचार के साथ उसको लगाया है और उसको गिरा देने से पूरी इमारत को क्या नुक़्सान पहुंचेगा। बिल्कुल ऐसी ही मिसाल परदे की है, जब वह रहन-सहन की उस व्यवस्था से अलग कर लिया जाएगा, जिसमें वह इमारत के सतंभ की तरह एक ज़रूरत और सोच-विचार के साथ लगाया गया है, तो वे तमाम हिक्मतें निगाहों से ओझल हो जाएंगी जो उससे जुड़ी हुई हैं और यह बात किसी तरह समझ में न आ सकेगी कि मानव-जाति दोनों लिंगों (त्र्शापवशीी) के बीच ये अन्तर करने वाली रेखाएं क्यों खींच दी गई हैं ? अत: सतंभ की हिक्मतों को ठीक-ठीक समझने के लिए यह ज़रूरी है कि उस पूरी इमारत को देख लिया जाए, जिस में वह लगाया गया है।

अब इस्लाम का हक़ीक़ी 'परदा' आपके सामने है। रहन-सहन की वह व्यवस्था आपके सामने सामने है, जिसकी हिफ़ाज़त के लिए परदे के नियम बनाए गए हैं। इस व्यवस्था के वे तमाम स्तंभ भी आप के सामने हैं, जिन के साथ एक ख़ास सन्तुलन सामंजस्य से परदे का स्तंभ खड़ा किया गया है, वे तमाम प्रामाणिक ज्ञानात्मक सच्चाइयां भी आपके सामने हैं, जिन पर रहन-सहन की इस पूरी व्यवस्था की इमारत की बुनियाद रखी गई है। इन सब को देख लेने के बाद फ़रमाइए कि इसमें कहां आप कोई कम-ज़ोरी पाते हैं ? किस जगह असन्तुलन का कोई छोटा सा भी हिस्सा नज़र आता है? कौन-सी जगह ऐसी है जहां किसी ख़ास गिरोह के रूझान से हट कर सिर्फ़ इल्मी व अक़्ली बुनियादों पर कोई सुधार तज्वीज़ किया जा सकता हो ? मैं पूरे यक़ीन के साथ कहता हूं कि ज़मीन और आसमान जिस सन्तुलन पर क़ायम है, सृष्टि की व्यवस्था में जो कमाल दर्जे का सन्तुलन पाया जाता है, अणु और परमाणु की बनावट में और सौर-मंडल की जकड़न में जैसा पूर्ण सन्तुलन आप देखते हैं, वैसा ही सन्तुलन और न्याय रहन-सहन की उस व्यवस्था में भी मौजूद है। अतिवाद और यकरूख़ापन जो इन्सानी कामों की निश्चित कमज़ोरी है, उससे यह व्यवस्था

बिल्कुल ख़ाली है। उसमें परिवर्तन और सुधार तज्वीज़ करना इंसान की क़ुदरत से बाहर है। इन्सान अगर कभी अपनी अक़्ल के हस्तक्षेप से उसमें कोई छोटी-सी तब्दीली भी करेगा, तो उसमें सुधार न करेगा, बल्कि उसका सन्तुलन बिगड़ जाएगा।

अफ़सोस, मेरे पास ऐसे साधन नहीं हैं कि अपने उन इन्सानी भाइयों तक अपनी आवाज़ पहुंचा सकू जो यूरोप, अमरीका, रूस और जापान में रहते हैं, वह एक सही और सन्तुलित संस्कृति व्यवस्था न पाने ही की वजह से अपनी ज़िंदगी को तबाह कर रहे हैं और दुनिया की दूसरी क़ौमों की तबाही की भी वजह बन रहे हैं। काश ! मैं उन तक वह अमृत पहुंचा सकता, जिसके वे हक़ीक़त में प्यासे हैं, चाहे वे इस प्यास को न महसूस करते हों। फिर भी मेरे अपने देश के हिन्दू, सिख, ईसाई, पारसी जो मेरे क़रीब और पड़ोस में रहते-सहते हैं, उन्हें मैं दावत देता हूं कि मुसलमानों के साथ तारीख़ी और सियासी झगड़ों की वजह से जो तास्सुब उनके दिलों में इस्लाम के ख़िलाफ़ पैदा हो गया है, उससे अपने दिलों को साफ़ करके सिर्फ़ सत्य के खोजी होने की हैसियत से इस्लामी रहन-सहन की उस व्यवस्था को देखें, जिसे मैंने पूरे का पूरा इस किताब में बयान कर दिया है। फिर उस पश्चिमी रहन-सहन की व्यवस्था से इस का मुक़ाबला करें, जिस की ओर वे बे-तहाशा दौड़े चले जा रहे हैं और आख़िर में मेरे या किसी और के लिए नहीं, बल्कि ख़ुद अपनी भलाई के लिए फ़ैसला करें कि उन का वास्तविक हित किस तरीक़े में है।

इसके बाद मैं आम पाठकों की ओर से रूख़ फेर कर कुछ शब्द अपने ऐसे भटके हुए भाइयों से कहूंगा, जो मुसलमान कहलाते हैं।

हमारे कुछ नये पढ़े-लिखे मुसलमान भाई उन तमाम बातों को मानते हैं, जो ऊपर बयान की गई हैं, पर वे कहते हैं कि इस्लाम के क़ानूनों में वक़्त के हालात के लिहाज़ से कमी-ज़्यादती की तो गुंजाइश है, जिस से तुम ख़ुद भी शायद इंकार नहीं कर सकते, इसलिए हमारी ख़्वाहिश तो सिर्फ़ इतनी है कि इस गुंजाइश से फ़ायदा उठाया जाए। आज के ज़माने के हालात परदे में कमी की मांग कर रहे है। ज़रूरत है कि मुसलमान औरतें स्कूलों और कालेजों में जाएं, ऊंची शिक्षा हासिल करे, ऐसी तर्बियत हासिल करें, जिससे वे देश के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को समझने और उन को हल करने के क़ाबिल हो सकें। इसके बिना मुसलमान ज़िंदगी की दौड़ में पड़ोसी

क़ौमों से पीछे रहे जाते हैं और भविष्य में डर है कि और ज़्यादा नुक़्सान उठाएंगे। देश के राजनीतिक जीवन में औरतों को जो हक़ दिए जा रहे हैं, अगर उससे फ़ायदा उठाने की क्षमता मुसलमान औरतों में नहीं पैदा हुई और परदे की क़ैद की वजह से वे फ़ायदा न उठा सकीं, तो देश की राजनीतिक तराज़ू में मुसलमानों का वज़न बहुत कम रह जाएगा। देखो, इस्लामी दुनिया की उन्नतिशील क़ौमें, जैसे तुर्की और ईरान ने भी ज़माने के हालात को देख कर इस्लामी परदे में बहुत कुछ कमी[१०३] कर दी है और इस से कुछ ही साल के भीतर खुले फ़ायदे हासिल हुए हैं। अगर हम भी उन्हीं के रास्ते पर चलें तो आख़िर इसमें क्या परेशानी है?

ये जितने ख़तरे बयान किए जाते हैं हम उन सब को ज्यों का त्यों मान लेते हैं, बल्कि अगर ख़तरों की सूची में इससे दस गुना और बढ़ौत्तरी कर दी जाए, तब भी कोई हरज नहीं। बहरहाल इस क़िस्म के किसी ख़तरे की वजह से भी इस्लाम के क़ानून में कमी-बेशी या कांट-छांट जायज़ नहीं हो सकती। असल में ऐसे तमाम ख़तरों की मिसाल ऐसी है जैसे आप जान-बूझ कर अपनी मूर्खता से या मजबूरी की वजह से एक प्रदूषित और सेहत के लिए नुक़्सानदेह माहौल में रहते हों और वहां स्वास्थ-सुरक्षा के उसूलों पर अमल करना आप के लिए न सिर्फ़ मुश्किल हो रहा हो, बल्कि गन्दे लोगों की बस्ती में आप के लिए गन्दगी अपनाये बिना जीना तक मुश्किल हो। ऐसी हालत में ज़ाहिर है कि सेहत बचाने के उसूलों को घटाने-बढ़ाने या काँटने-छांटने का कोई सवाल पैदा नहीं हो सकता। अगर आप इन उसूलों को सही समझते हैं, तो आप का फ़र्ज़ है कि अपने माहौल से लड़ कर उसे पाक बनाए। अगर लड़ने की हिम्मत नहीं, और अपनी कमज़ोरी की वजह से आप अपने हालात से दबे हुए हैं, तो जाइए और जो-जो गंदगियां आप पर मुसल्लत हैं, उनमें अपने को सान लीजिए। आख़िर आप के लिए सेहत के क़ानूनों में कांट-छांट या कमी क्यों की जाए और अगर आप इन क़नूनों को ग़लत समझते हैं और इस गन्दगी से आप की अपनी तबियत भी लगाव रखने लगी है, तो आप अपने लिए जो चाहे क़ानून बना लीजिए। पाकी और स्वच्छता

103 H$_r? `h eãX {gµ\©$ ~hg Ho$ {bE BñVo_mb {H$`m OmVm h¡, daZm Agb _| dhm§ H$_r Zht H$s JB© h¡ ~{ëH$ Cgo {~ëHw$b aÔ Am¡a {VañH¥$V hr H$a {X`m J`m h¡ &

के क़ानून में तो उन लोगों की ख़्वाहिश के लिए कोई गुंजाइश नहीं हो सकती, जो गन्दगी की ओर झुकाव रखते हैं।

इसमें शक नहीं कि हर क़ानून की तरह इस्लामी क़ानून में भी हालात के लिहाज़ से कमी और बेशी की गुंज़ाइश है, पर हर क़ानून की तरह इस्लामी क़ानून भी इस बात पर आग्रह करता है कि कमी या बेशी का फ़ैसला करने के लिए हालात को उसी नज़र से और उसी स्प्रिट में देखा जाए, जो इस्लाम की नज़र और इस्लाम की स्प्रिट है। किसी दूसरी दृष्टि से हालात को देखना और फिर कमी की क़ैंची लेकर क़ानून की धाराओं पर हमलावर हो जाना कमी की परिभाषा में नहीं आता, बल्कि यह सादा और खुला बिगाड़ है। जिन हालात को ग़ैर-इस्लामी दृष्टि से देख कर इस्लामी क़ानून में कमी करने की मांग की जा रही है, उनको अगर इस्लामी दृष्टि से देखा जाए, तो यह फ़ैसला करना पड़ेगा कि ऐसे हालात में कमी की नहीं, बल्कि ज़्यादा कड़ाई की ज़रूरत है। कमी सिर्फ़ उस वक़्त की जा सकती है, जबकि क़ानून के मक़्सद दूसरे तरीक़ों से आसानी से पूरे हो जाते हों और रक्षात्मक विधियों में ज़्यादा सख़्ती की ज़रूरत न हो। पर जबकि क़ानून के मक़्सद दूसरे साधनों से पूरे न हो रहे हों, बल्कि दूसरी तमाम ताक़तें उनको बर्बाद करने में लगी हुई हों और उनके मक़्सदों के हासिल करने का पूरे का पूरा आश्रय सिर्फ़ कानून के संरक्षण पर ही आ ठहरा हो, तो ऐसे हालात में सिर्फ़ वही आदमी क़ानून में कमी का ख़्याल कर सकता है, जो क़ानून की स्प्रिद को बिल्कुल न जानता हो।

पिछले पन्नों में हम विस्तार के साथ बयान कर चुके हैं कि इस्लामी रहन-सहन के क़ानून का मक़्सद दाम्पत्य-नियमों की हिफ़ाज़त, यौन-विघटन की रोकथाम और असन्तुलित वासनामय उत्प्रेरकों में रूकावट पैदा करना है। इस उद्देश्य के लिए शारेअ़ ने तीन तद्बीरें अपनाई हैं। एक: इस्लामी चरित्र, दूसरे: ताज़ीरी क़ानून, तीसरे: रोक-थाम के उपाय, यानी सत्र व परदा। ये मानो तीन स्तंभ हैं, जिन पर यह इमारत खड़ी की गई है, जिनकी मज़बूती पर इस इमारत की मज़बूती टिकी हुई है और जिन का गिरा देना असल में इस पूरी इमारत का गिरा देना है। आइए, अब अपने देश के मौजूदा हालात पर एक नज़र डाल कर देखिए कि इन तीनों स्तंभों का आप के यहां क्या हाल है ?

पहले अपने नैतिक माहौल को लीजिए। आप उस देश में रहते हैं जिस की काफ़ी बड़ी आबादी आप ही की अगली-पिछली कोताहियों की वजह से अब

तक इस्लाम को नहीं जानती। ग़ैर-इस्लामी सभ्यता आंधी-तूफ़ान की तरह छाती जा रही है। प्लेग और हैज़े के कीटाणुओं की तरह ग़ैर-इस्लामी चरित्र के नियम और ग़ैर-इस्लामी सभ्यता के विचार पूरे माहौल में फैल गए हैं। वातावरण उनके ज़हर से भर उठा है। उन की ज़हरनाकी ने हर ओर से आप को घेर लिया है। गन्दगी और बेहयाई की जिन बातों के ख़्याल से भी कुछ साल पहले तक आपके रौंगटे खड़े हो जाते थे, वह अब इतनी आम हो चुकी हैं कि आप उन्हें दिन-प्रतिदिन की सामान्य स्थिति समझ लीजिए। आप के बच्चे तक अख़बारों और पत्र-पत्रिकाओं और इश्तिहारों में नंगी तस्वीरें रोज़ देखते हैं और बेहयाई के आदी होते जाते हैं। आप के बूढ़े और जवान और बच्चे सब के सब सिनेमा देख रहे है, जहां नंगापन और बे-हयाई और यौन-प्रेम से ज़्यादा दिलचस्प चीज़ और कोई नहीं। बाप और बेटे, भाई और भाई, माएं और बेटियां, सब एक दूसरे के पहलू में बैठे एलानिया चूमा-चाटी और छेड़खानी के दृश्य देखते हैं और कोई शर्म महसूस नहीं करते। अत्यंत गन्दे और उत्तेजक गीत घर-घर और दुकान-दुकान बज रहे हैं और किसी के कान इन आवाज़ों से बचे नहीं। भारतियों और अंग्रेज़ों की ऊंची सोसाइटी की औरतें अधनंगे पहनावों के साथ फिर रही हैं और निगाहें इन पहनावों की इतनी आदी हो चुकी हैं कि कोई आदमी इनमें किसी क़िस्म की बेहयाई महसूस नहीं करता। चरित्र के जो विचार पाश्चात् शिक्षा-दीक्षा के साथ फैल रहे हैं, उनकी बदौलत विवाह को एक पुरानी रस्म, ज़िना को एक सैर, मर्दों और औरतों के मेल-जोल को एक उचित..... बल्कि पसन्दीदा चीज़, तलाक़ को एक खेल, पति-पत्नी की ज़िम्मेदारियों को असह्य/असहय बन्धन, नस्ल बढ़ाने को एक मूर्खता, शौहर आज्ञापालन को एक क़िस्म की गुलामी, पत्नीत्व को एक मुसीबत और प्रेमिका व प्रेयसी (ऋळीश्र ऋीळशपव) बनने को एक ख़्याली जन्नत समझा जा रहा है।

फिर देखिए कि इस माहौल के प्रभाव आप की क़ौम पर क्या पड़ रहे हैं ? क्या आप के समाज में अब 'आंखें नीची रखने का' कहीं वजूद है ? क्या लाखों में एक आदमी भी कहीं ऐसा पाया जाता है, जो अजनबी औरतों के हुस्न से आंखें सेंकने में शर्म खाता हो? क्या एलानिया आंख और ज़ुबान की ज़िना नहीं की जा रही है ? क्या आप की औरतें भी जाहिलियत का दिखावा, ज़ीनत के ज़ाहिर करने और हुस्न की नुमाइश से परहेज़ कर रही हैं ? क्या आज आपके घरों में ठीक वही पहनावे नहीं पहने जा रहे हैं, जिनके बारे में प्यारे नबी सल्ल. ने फ़रमाया था कि 'निसाउन कासियातुन आरियातुन मुमीलातुन माइलातुन'? (जो

औरतें कपड़े पहन कर भी नंगी रहें, दूसरों को रिझाएं और ख़ुद दूसरों पर रीझें ......) क्या आप अपनी बहनों, बेटियों और माओं को वह पहनावा पहने नहीं देख रहे हैं, जिन को मुसलमान औरत अपने शौहर के सिवा किसी के सामने नहीं पहन सकती ? क्या आप की सोसाइटी में गन्दी कहानियां और इश्क़ व मुहब्बत के गन्दे वाक़िए बे-तकल्लुफ़ी के साथ कहे और सुने नहीं जाते ? क्या आप की महफ़िलों में लोग ख़ुद अपने बदकारी के हालात बयान करने में भी कोई शर्म महसूस करते हैं ? जब हाल यह है तो फ़रमाइए कि अख़्लाक़ की पाकी का यह पहला और सबसे ज़्यादा मज़बूत स्तंभ कहा बाक़ी रहा, जिस पर इस्लामी रहन-सहन का महल बनाया गया था ? इस्लामी शर्म तो अब इस हद तक मिट चुकी है कि मुसलमान औरतें सिर्फ़ मुसलमानों ही के नहीं, ख़ुदा के इन्कारियों के भी नाजायज़ क़ब्ज़े में आ रही हैं। अंग्रेज़ी हुकूमत में नहीं, मुसलमान राज्यों तक में इस क़िस्म के वाक़िए खुले आम हो रहे हैं। ऐसे बे-ग़ैरत मुसलमान इन वाक़ियों को देखते हैं और उनके ख़ून हरकत में नहीं आते। ऐसे बे-ग़ैरत मुसलमान भी देखे गए हैं जिनकी अपनी बहनें किसी ग़ैर-मुस्लिम के इस्तेमाल में आई और उन्होंने शान के साथ इसे ज़ाहिर भी किया कि हम फ़लां बड़े काफ़िर के बहनोई हैं।[१०४] क्या इसके बाद भी बेहयाई और नैतिक गिरावट का कोई दर्जा बाक़ी रह जाता है ?

अब तनिक दूसरे स्तंभ का हाल भी देखिए। तमाम भारत से इस्लामी ताज़ीरात का पूरा क़ानून मिट चुका है। ज़िना और कोड़े लगाने की सज़ा न

---

104 `h dm{µH$`m X{jUr ^maV H$m h¡ & _oao EH$ XmoñV Zo _wPo EH$ Am¡a Bggo µÁ`mXm Aµ\$gmoggZmH$ dm{µH$`m gwZm`m & nydu ^maV _| EH$..... Zm_ H$s _ehya Am¡aV EH$ ~‹So Xm¡bV_§X µJ¡a-_w{ñb_ Ho$ gmW Ebm{Z`m VmëbwµH$ aIVr h¡ Am¡a CgHo$ ZVrOo _| CgZo ~‹Sr Om`XmX hm{gb H$s h¡ & _oao XmoñV H$m ~`mZ h¡ {H$ CÝhm|Zo H$B© ~ma dht Ho$ _wgb_mZm| H${WV _wgb_mZm| H$mo Bg ~mV na ¼wer µOm{ha H$aVo XoIm h¡ {H$ µJ¡a-_w{ñb_ Ho$ nmg go "_wgb_mZm|' _| BVZr ~‹Sr Xm¡bV Am JB© &

इस्लामी देशों में जारी होती है, न ब्रिटिश इंडिया में। सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि जो क़ानून इस वक़्त देश में लागू है, वह सिरे से ज़िना को जुर्म ही नहीं समझता। अगर किसी शरीफ़ बहू-बेटी को कोई आदमी बहका कर बदकार बनाना चाहे तो आप के पास कोई क़ानूनी ज़रिया ऐसा नहीं है जिससे उसकी पाकदामनी बाक़ी रख सकें।

अगर कोई आदमी किसी नाबालिग़ औरत को उस की रज़ामंदी से नाजायज़ इस्तेमाल करे, तो आप किसी क़ानून के ज़रिए से उसे सज़ा नहीं दिलवा सकते। अगर कोई औरत एलानिया बे-हयाई पर उतर आए तो आपके पास कोई ताक़त ऐसी नहीं, जिससे आप उसे रोक सकें। क़ानून सिर्फ़ बलात्कार को जुर्म ठहराता है, पर जो लोग क़ानूनपेशा हैं, उनसे पूछिए कि बलात्कार का सबूत कितना मुश्किल है। विवाहित औरत को भगा ले जाना भी जुर्म है, पर अंग्रेज़ी क़ानून जानने वालों से मालूम कीजिए कि अगर विवाहिता ख़ुद अपनी रज़ामंदी से किसी के घर जा पड़े तो उसके लिए आपके हाकिमों की अदालत में बचाव का क्या रास्ता है ?

ग़ौर कीजिए ! ये दोनों सतंभ ढह चुके हैं। अब आपके रहन-सहन की व्यवस्था की पूरी इमारत सिर्फ़ एक स्तंभ पर क़ायम है। क्या आप इसे भी ढा देना चाहते हैं ? एक ओर परदे के वे नुक़्सान हैं; जिन्हें आपने ऊपर गिनाया है, दूसरी ओर परदा उठा देने में चरित्र और रहन-सहन की व्यवस्था की पूरी तबाही है। दोनों के बीच मुक़ाबला कीजिए। मुसीबतें दोनों हैं और एक को बहरहाल क़ुबूल करना है। अब आप ख़ुद ही दिल से फ़त्वा तलब कीजिए कि इनमें कौन-सी मुसीबत हल्की है ?

इसलिए अगर ज़माने के हालात ही पर फ़ैसला निर्भर है, तो मैं कहता हूं कि भारत के हालात परदे में कमी के नहीं और ज़्यादा एहतियात का तक़ाज़ा करते हैं। क्योंकि आपके रहन-सहन की व्यवस्था की हिफ़ाज़त करने वाले दो स्तंभ गिर चुके हैं और पूरा आश्रय सिर्फ़ एक ही स्तंभ पर है। सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याएं आप को हल करनी हैं, तो सिर जोड़ कर बैठिए, विचार कीजिए, इस्लामी हदों के भीतर उसके हल की दूसरी शक्लें भी निकल सकती हैं, पर इस बचे-खुचे स्तंभ को, जो पहले ही काफ़ी कमज़ोर हो चुका है, और ज़्यादा कमज़ोर न बनाइए। इसमें कभी करने से पहले आप को कम से कम इतनी ताक़त पैदा करनी चाहिए कि अगर कोई मुसलमान औरत बे-निक़ाब हो, तो जहाँ उसे

घूरने के लिए दो आंखें मौजूद हों, वहीं उन आंखों को निकाल लेने के लिए पचास हाथ भी मौजूद हों।

ढक्ए एछऊ